॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 7

भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन
श्रीमुकुन्ददास अधिकारी
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण व अन्य चित्रों के लिए
Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506-29044, 01421-217059

प्रथम संस्करण-2000 प्रतियाँ
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, 15 अगस्त 2017

मुद्रण-संयोजन एवं ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन-281121 - मोबाइल : 07500 987654

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 7

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी
श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्धदास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।1।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मँझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न, इस संसार में।।2।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और भरा अभिमान है।।3।।
पाप बोझे से लदी, नैया भँवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।4।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दुःख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।5।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।6।।

हे मेरे गुरुदेव करुणा सिन्धु करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।
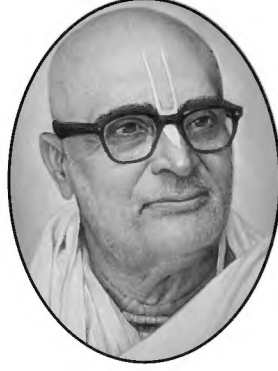
समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है

विषय-सूची

भाग– 7

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। "**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**" के सातवें भाग का प्रथम संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं सभी को इसकी बधाई देता हूँ।

"**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**" नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी–यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा-ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँच भागों के प्रकाशन का काम मेरे श्रीगुरुदेव, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की 108वीं आविर्भाव तिथि, उत्थान एकादशी (24 नवम्बर 2012) को पूरा हो गया था किन्तु इसके सभी भाग अलग–अलग प्रेसों में छपे थे। जो भी भाग छपता, वह कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता। भक्तों की माँग निरन्तर बढ़ रही थी और हमारे पास सभी भाग एक साथ

उपलब्ध नहीं थे। मेरी इच्छा थी कि इस ग्रंथ के पाँचों भाग एक ही जगह उपलब्ध हों। इन ग्रंथों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार हो इसलिये हमने श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन से संपर्क किया।

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन के संस्थापक व्रजविभूति श्रीश्यामदास (श्रीश्यामलालजी हकीम) की मुझ पर बड़ी कृपा रही। मैं जब भी वृन्दावन जाता था, उनके दर्शन जरूर करता था। श्रीश्यामलाल हकीम जी ने ग्रंथ सेवा का जो महान् कार्य किया है, उसके लिये आज पूरा वैष्णव समाज उनका ऋणी है। उनके द्वारा श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना सन् 1969 में हुई थी। आज श्रीहरिनाम प्रेस की अपनी एक अलग पहचान है। जिस काम को श्रद्धेय श्रीश्यामलाल हकीम जी ने शुरु किया था उसी महान् कार्य को उनके सुपुत्र दासाभास डा. गिरिराजकृष्ण एवं डा. भागवतकृष्ण नांगिया जी बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमने इनसे अपने मन की बात कही तो वे सहर्ष इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गये और अपना सौभाग्य माना।

'एक शिशु की विरह वेदना' 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के सभी भाग नियमित रूप से श्रीहरिनाम प्रेस में निरन्तर छप रहे हैं और उनका वितरण भी बहुत ही सुचारु रूप से वहाँ से ही चल रहा है।

अन्त में मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्रीगुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूँगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

प्रस्तावना

पाठकगण सुहृद!

आपके हाथ में यह ग्रन्थ है, इसका अर्थ है कि आपको **'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति'** करने का सुदुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है। इस दुर्लभ मनुष्य जीवन में इस सुअवसर को खोने न दे। इस ग्रन्थ को पढ़कर उसके अनुसार आचरण करने की आपकी इच्छा ही आपके परम सौभाग्य का प्रमाण दर्शाती है। इस ग्रन्थ का यह 7 वाँ भाग है। इस भाग में ग्रन्थकार ने विशेषकर **'सम्बन्ध ज्ञान'** इस गम्भीर विषय को बड़ी सरलता से प्रस्तुत कर हमारी गलत धारणाओं को स्पष्ट करने का पूरा प्रयास किया है। क्लिष्ट–अति क्लिष्ट विषय को सरल शब्दों में समझाना उनकी विशेषता है। यह ग्रन्थ उनके द्वारा लिखे गए पत्रों का संकलन है। उनके पत्रों में तथा इस ग्रन्थ के सारे भागों में, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण, श्रीचैतन्यचरितामृत, चैतन्य भागवत, उपनिषद्, पुराण, संहिता, जैवधर्म आदि महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक शास्त्र तथा ग्रन्थों का सार भरा पड़ा है। जिसे पढ़ने से हम भगवद्तत्त्व तथा भगवद्धाम को तात्त्विक रूप से भलीभाँति समझ सकते हैं। इससे हम भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपना नित्य सम्बन्ध प्रस्थापित करने हेतु गम्भीरतापूर्वक प्रयास करने का विचार कर सकते हैं।

संसार में हम किसी वस्तु अथवा व्यक्ति से विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्बन्ध प्रस्थापित करते हैं, परन्तु उद्देश्य पूर्ति होते ही यह सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। कुछ सम्बन्ध ऐसे होते हैं, जो हमें हमारे जन्म के साथ ही प्राप्त होते हैं, जिन्हें हम बिना किसी उद्देश्य के स्नेह तथा आसक्ति वश कायम रखना चाहते हैं। परन्तु, हम यह भूल जाते हैं कि, काल के प्रभाव से यह सम्बन्ध भी नष्ट हो

जाते हैं, जो अन्त में हमारे पीड़ा, दुःख तथा शोक का कारण बन जाते हैं।

परन्तु, प्रेमसागर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ एकबार सम्बन्ध प्रस्थापित हो जाने के बाद वह सम्बन्ध कभी नहीं टूटता। भगवान् नित्य हैं तथा हम भगवान् के नित्य अंश होने के नाते हमारा भगवान् के साथ जो दिव्य सम्बन्ध है, वह भी नित्य ही है। यह सम्बन्ध काल के प्रभाव के परे होने के कारण हमारे पीड़ा का कारण नहीं बनता, बल्कि भगवान् के प्रति हमारी आसक्ति जितनी अधिक गाढ़ी होती है, वह आसक्ति उतनी ही हमारे आनन्द की वृद्धि का कारण बनती है।

भगवान् के साथ हमारा अनेक प्रकार के रसों में, भाव में सम्बन्ध प्रस्थापित हो सकता है, परन्तु शान्त रस, दास्य रस, सख्य रस, वात्सल्य रस तथा माधुर्य (मधुर) रस – यह पाँच प्रकार के मुख्य रस हैं। उदाहरण स्वरूप – ग्रन्थकार श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी का भगवान् के साथ वात्सल्य रस में एक डेढ़ साल के शिशु के रूप में सम्बन्ध तथा भाव है। वह आध्यात्मिक जगत् में भगवान् के पोते हैं। इसी स्थिति को सम्बन्धज्ञान तथा स्वरूपज्ञान कहते हैं। और इसी कारण से इस ग्रन्थ में छापे हुए अनेक पत्रों में उनका शिशुभाव झलकता है। अतः उन्होंने इस भाव को सर्वोत्तम भाव बताया है।

परन्तु, ग्रन्थकार का कहना है कि– चाहे कोई भी भाव हो, वह अपने मन से प्रस्थापित नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह ज्यादा समय तक टिकेगा भी नहीं तथा वह घोर अपराध का कारण भी बनेगा। आरम्भ में हमें भगवान् के प्रति दास्यत्व का भाव रखकर (जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास) ही साधन–भजन करना चाहिए, इसी में हमारा कल्याण है। उनका कहना है कि– इस ग्रन्थ को पढ़कर हमें एकदम शिशुभाव में सम्बन्ध रखने का अधिकार नहीं है, परन्तु श्रीहरिनाम जप करते समय एक शिशु की तरह विरह में रोने का हमें अधिकार है।

केवल मात्र विरहयुक्त श्रीनामभजन के प्रभाव से ही हमें अपना निजी सम्बन्ध तथा भाव किसी नामनिष्ठ सद्गुरु की कृपा द्वारा प्राप्त होगा अथवा स्वयं भगवान् ही हमारे नामभजन से प्रसन्न होकर हमारा वास्तविक भाव हमारे हृदय में स्फुरित कर देंगे। इस दुर्लभ उपलब्धि के पश्चात् ही दिव्य गोलोक धाम को अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

एक बार श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी के गुरुदेव श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज को एक गृहस्थ अनुयायी ने सिद्ध प्रणाली दीक्षा के लिए निवेदन किया। तब श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज ने कहा– **"हरे कृष्ण महामन्त्र"** ही सिद्ध मन्त्र है। इस मन्त्र में परम भगवान् श्रीकृष्ण का सिद्ध रूप तथा सब जीवात्माओं के सिद्ध रूप समाविष्ट हैं। यदि तुम शुद्ध भाव से इस महामन्त्र को जपोगे, तो महामन्त्र के अक्षर धीरे–धीरे श्रीकृष्ण का दिव्य रूप, गुण, लीलाएँ तथा धाम को प्रकाशित कर देंगे। तथा यह जप आपकी नित्य दिव्य देह, सेवा तथा आपके सिद्ध स्वरूप के ग्यारह लक्षण भी प्रकट कर देगा।

इन लक्षणों को प्रकट करने के लिए हरिनाम किसी पर निर्भर नहीं है, वह स्वयं में पर्याप्त तथा पूर्णतया स्वतंत्र है। जिस प्रकार अग्नि को स्पर्श करते ही वह बिना किसी प्रतीक्षा के तुरन्त फल दर्शाती है, ठीक उसी प्रकार पवित्र हरिनाम केवल उच्चारण मात्र से ही तुरन्त फल प्रदान करता है। इसके लिए वह किसी प्रकार की प्रतीक्षा नहीं करता।

इसकी पुष्टि हेतु साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि–

दीक्षा–पुरश्चर्या–विधि अपेक्षा ना करे।
जिव्हा–स्पर्शे आ–चण्डाल सबारे उद्धारे।।
आनुषंग–फले करे संसारेर क्षय।
चित्त आकर्षिया कराय कृष्णे प्रेमोदय।।

श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला 15.108,109

"न तो दीक्षा विधि की आवश्यकता है न ही दीक्षा के पूर्व के आवश्यक कृत्य (पुरश्चर्या) करने की। मनुष्य को केवल अपने होठों पर पवित्र नाम लाना होता है। इस प्रकार अधम से अधम व्यक्ति (चण्डाल) का भी उद्धार हो जाता है। भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा मनुष्य संसार तथा माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसके बाद वह कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट होता है और इस तरह से हृदय में सुप्त **कृष्ण-प्रेम** का उदय होता है।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, महर्षि वाल्मीकि। नारदजी के द्वारा केवल नाम-भजन की शिक्षा प्राप्त कर डाकू रत्नाकर त्रिकालदर्शी महर्षि वाल्मीकि बने और रामावतार होने से पहले ही उन्होंने रामायण की रचना कर डाली। यह है नाम का प्रभाव!

इसी नाम से नामनिष्ठ सन्त (शुद्ध भक्त) का संग मिलेगा, इसी नाम से वैकुण्ठ मिलेगा, इसी नाम से सम्बन्ध बनेगा, इसी नाम से गोलोक मिलेगा तथा इसी नाम से दुर्लभ कृष्णप्रेम प्राप्त होगा।

केवल इस ग्रन्थ को बार-बार पढ़ते रहने से हमें प्रेरणा, शक्ति, शिक्षा तथा कृपा मिलेगी जो हमें नामभजन में वृद्धि के लिए सहायता करेगी और 6 वें भाग के अन्त में दिये हुए '**हरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग**' नामक लेख के अनुसार हरिनाम करने से अनायास ही श्रीचैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में रूपानुग वैष्णव बनने का सौभाग्य हमें प्राप्त होगा! और हमारा जीवन धन्य हो जाएगा!

सही समय पर, सही सलाह सबको नहीं मिलती। हम बहुत सौभाग्यवान हैं, क्योंकि लोगों को अक्सर यह बहुत देर से पता चलता है-

बालपन में बताया धराधाम सत्य है
जवानी में बताया अर्थ काम सत्य है
जब पंछी पिंजडे से उड़कर चला तो
लोगों ने बताया राम नाम सत्य है...

अतः निरन्तर हरिनाम जपिये–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी

–मुकुन्द दास

भज गोविन्द, भज गोविन्द, भज गोविन्द का नाम रे।
गोविन्द के नाम बिना, तेरे कोई न आवे काम रे।।
ये जीवन है सुख दुःख का मेला,
दुनियादारी स्वप्न का खेला।
जाना तुझको पड़ेगा अकेला,
भज ले हरि का नाम रे।।
गोविन्द की महिमा गाके,
प्रेम से उस पर फाग लगाके।
जीवन अपना सफल बना ले,
चल ईश्वर के धाम रे।।

व्रज का खेल कुलेल-मगन-मन।
नदिया का रज-लुण्ठित-तन।।
व्रज का खेल मुरलिका वादन।
नदिया का हरिनाम भजन।।
व्रज का खेल कुसुम वन विहरण।
नदिया का दृग-जल-वर्षण।।

व्रज में कृष्ण का खेल है ग्वाल-बालों के साथ ऊधम मचाना पर नदिया में श्रीगौर का तन रज में लोट पोट होता है। व्रज में कृष्ण मुरली बजाकर खेल करते हैं पर नदिया में श्रीगौर हरिनाम का भजन करते हैं। व्रज में कृष्ण बाग-बगीचों में विहार करते हैं पर नदिया में श्रीगौर के नेत्रों से श्रीकृष्ण प्रेम के अश्रु बहते रहते हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, **''इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति'' भाग सात का प्रथम संस्करण** सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' नामक ग्रन्थ श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के प्राण हैं। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु-निष्ठा, श्रीनाम-निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा-वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा-सदा के लिये श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? – इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन-निष्ठा, नामनिष्ठा तथा बिना गृहत्याग किये केवल हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन-मयूर नाच उठेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' ग्रन्थ में श्री अनिरुद्ध प्रभु के संक्षिप्त जीवन-चरित्र के साथ-साथ उनके श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **5000 प्रतियाँ**
दूसरा संस्करण, श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2012
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **1000 प्रतियाँ**
श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगोपाष्टमी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1–2) **2000 प्रतियाँ**
श्रीरामनवमी, 2013

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3–4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगौर पूर्णिमा, 2014
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **3000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **1000 प्रतियाँ**
श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 1 से 4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2016
अहैतुकी कृपा **2000 प्रतियाँ**
उत्थान एकादशी, 2016
अनन्त कृपा (पूर्ण रंगीन) **3000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2017
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 6) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगुरुपूर्णिमा, 2017
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–7) **2000 प्रतियाँ**
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, 2017

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से विगत वर्षों में पैंतीस हजार (35,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग तीस हजार (30,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कॅनडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, वेबसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुँच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

कार्तिक मास, 2012 में श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने 12 दिन तक श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) के पावन स्थल में सैकड़ों भक्तों को श्रीहरिनाम की महिमा सुनाई जिससे भक्तों की नाम-संख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। कई भक्तों को तो अप्रत्यक्ष (indirect) रूप से दर्शन भी हुये हैं।

इन पैंतीस हजार (35,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्रीश्रीराधागोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे-ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठको! इन पत्रों में कई बातों को बार-बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें।

अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रन्थों को बार-बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्णप्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' के इस सातवें भाग का सम्पादन मुख्य रूप से, श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी के शिष्य श्रीमुकुन्ददास ने किया है। उन्होंने बड़ी निष्ठा और एकाग्रता से प्रभु जी के पत्रों के विशाल संग्रह में से चुनकर इन्हें इस भाग में बड़े परिश्रम से संगृहीत किया है और डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया के सहयोग से इसे मूर्तरूप प्रदान किया है। इसके लिए वे दोनों बधाई के पात्र हैं।

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्रीपादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णव दासानुदास

–हरिपद दास

अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‍यो वैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ीं सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधै जाके पाँव।
स्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै।
गौरकृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै।।

सर्वव्यापक – सर्वज्ञ
सर्वान्तर्यामी – सर्वशक्तिमान

OMNIPRESENT • OMNIFICENT • OMNISCIENT • OMNIPOTENT

भगवान् सर्वव्यापी होने के कारण यहाँ पर भी उपस्थित हैं।
हर समय होने के कारण इस समय में भी उपस्थित हैं।
सबके हृदय में होने के कारण हमारे हृदय में भी हैं।
और सबके होने के कारण वे हमारे भी हैं।
इसलिए भगवान् के यहाँ पर उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है।
इस वक्त उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए भविष्य की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।
हमारे अन्दर होने के कारण उन्हें बाहर कहीं भी ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है।
आवश्यकता है तो सिर्फ और सिर्फ
हरिनाम के बल से उनका साक्षात्कार करने की।
इस भाव से हरिनाम जपोगे तो
प्रत्यक्ष रूप में भगवान् को अपने पास में पाओगे!

श्रीसूरदास जी भजन कर रहे हैं और श्रीकृष्ण उसे सुन रहे हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

भगवान् के साक्षात् दर्शन

परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास जी अधिकारी (प्रभुजी) ने 13 मार्च से 30 मार्च 2013 तक ब्रज में वास किया। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन में चार दिन तक श्रीहरिनाम की महिमा सुनाकर 17 मार्च को उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने दिव्यातिदिव्य श्रीराधाकुण्ड का दर्शन किया।

अगले दिन 18 मार्च, 2013 को पूज्यपाद श्रीविष्णुदैवत स्वामी, श्रीदाऊदयाल दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्राणेश्वरी दासी, जयपुर के श्रीरमेश गुप्ता व उनकी पत्नी डा. कनिका, सुश्री रसमंजरी देवी एवं श्रीहरिपददास जी के साथ श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी चन्द्र सरोवर गये। वहाँ पर महात्मा सूरदास की समाधि व भजनकुटीर के दर्शन किये। ज्यों ही सभी भक्त भजनकुटीर के द्वार पर खड़े दर्शन कर रहे थे तभी श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुये। उन्होंने अपने साथ आये सभी भक्तों को दर्शन करने के लिये कहा, पर उन सबको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हुए। अब तो श्रीअनिरुद्धप्रभु जी भावावस्था में चले गये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे सभी भक्तों को भी दर्शन दें।

देखते ही देखते भजनकुटीर में दीवार पर टँगे हुये सफेद रंग के परदे पर भगवान् श्रीकृष्ण की आकृति अंकित हो गई और सभी भक्तों ने उसके दर्शन किये और गद्गद् हो गये। यह सब श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की कृपा से ही हो सका। यह अप्रत्यक्ष दर्शन था जो भक्तों को हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण • जय महात्मा सूरदास।।

श्रीहरिनाम

आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

1. रसना मेरी अति दुर्भागिनी, कटु वाचिनी और पापमयी।
अब-अवगुण बिसराओ इसके, आ जाओ प्रभु आ जाओ।।

2. कण्ठ मेरा अति कर्कश वाणी, नाम मधुरिमा नहीं जानी।
अपनी मधुरता आप बिखेरो, नाम-सुधा-रस बरसाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

3. चित्त मेरा अति मूल मलीना, अंधकूप सम सब दुःखदीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अंतर ज्योति जला जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

4. तन-मन में और श्वांस-श्वांस में, रोम-रोम में बस जाओ।
रग-रग में झनकार उठे प्रभु अंतर बीन बजा जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

5. पुत्र की जीवन नैया के खिवैया, भव डूबत को पार लगैया।
जीवन नैया पार लगाने, आ जाओ प्रभु आ जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

इस ग्रंथ के लेखक
परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

प्रस्तुति : श्री हरिपददास अधिकारी

प्रणाम मंत्र

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे।
श्रीहरिगुरु-वैष्णवप्रियमूर्तिं, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 87 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्ध प्रभु आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्-पूर्णिमा (रास-पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी सन्त स्वरूप थे, को अवलम्बन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म-स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्रीजय सिंह शेखावत हुये। गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस

वक्त आपकी उम्र लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधा–गोविन्ददेव जी के श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुन्दर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्‌गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबन्धकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों सन्त–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे ? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असन्तुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्‌गुरु से सद्‌शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना सम्भव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्ददेव जी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करताल इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊँचे, लम्बे कद एवं अलौकिक सौन्दर्य वाले संन्यासी कीर्तन कर रहे थे। श्री श्रीराधा–गोविन्द जी के मन्दिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहे थे और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहे थे। ''ये संन्यासी कौन हैं ? ये रो क्यों रहे हैं ?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

"यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही मुझे भगवान् से मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा"–ये सारे भाव श्रीअनिरुद्ध प्रभु के हृदय में हिलोरें लेने लगे।

श्रीअनिरुद्ध प्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मन्दिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्तिदयितमाधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

"कौन हो तुम ?"–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

"महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।" अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

23 नवम्बर, 1952 को श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र (गोपाल मंत्र) सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र (गोपाल मंत्र) जप कर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधा कृष्ण जी के कुंजों में झाड़ू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का **(हरे कृष्ण महामंत्र का)** ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्ति से कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुए हो गया था, परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्त हों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक-एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति-अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया - रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन-काल बहुत बढ़िया बीता। सरकारी नौकरी के साथ-साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। अपनी नेक-कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये (उस जमाने के) श्रील गुरुदेव को भी भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह-सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी-

"While Chanting Harinam Sweetly, Listen by Ears."

यह नाम-संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, सन् 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप

से तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक, अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप अकेले ही उनके शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने स्वेच्छानिवृत्ति (Voluntary Retirement) लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। इनके–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के तत्कालीन आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गाँव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गाँव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के

आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहाँ के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतों के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

> **''अनिरुद्ध ! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बाँटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग–राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो,**

मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी एक अनुभूति-प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों-शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिह्नों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

नाम संकीर्तन

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः॥१॥

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।
गिरिधारी गोपीनाथ मदनमोहन॥२॥

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द श्रीअद्वैत सीता।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता॥३॥

जय रूप सनातन भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास-रघुनाथ॥४॥

एइ छय-गोसाञिर करि चरण-वन्दन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट-पूरण॥५॥

एह छय-गोसाञि याँर-मुञि ताँर दास।
ताँ' सबार पदरेणु मोर पञ्च-ग्रास॥६॥

ताँदेर चरण सेवि भक्तसने वास।
जनमे-जनमे हय एइ अभिलाषा॥७॥

एइ छय गोसाञि जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण-नित्यलीला करिला प्रकाश॥८॥

आनन्दे बलह हरि, भज वृन्दावन।
श्रीगुरु-वैष्णव-पदे मजाइया मन॥९॥

श्रीगुरु-वैष्णव-पादपद्म करि आश।
नाम-संकीर्त्तन कहे नरोत्तमदास॥१०॥

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुति : श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्रीरूपगोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म-स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद्-भक्तिदयित माधव महाराज नाम वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणा-वरुणालय-स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु-देव-भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु-प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म-स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी-गुरुदेव को नमस्कार है।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त

सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्ण-चैतन्य-आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन-पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप-लावण्य युक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्‌भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृभक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र-ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते-करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त

करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ आकाशवाणी हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में आपने अपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्ति संगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्तसेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था-भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुए श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा-

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोपीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु-निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थिति में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख-दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर

(आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह-ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा-आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न-भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर-नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति-सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम जगन्नाथ पुरी में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

प्रभुपाद जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्ड़ीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों अद्‌भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुए हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव, श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इसमें किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं है, बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

–Srila Prabhupada

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

नित्य प्रार्थना

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

श्रीमद्‌भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग महाराज को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो
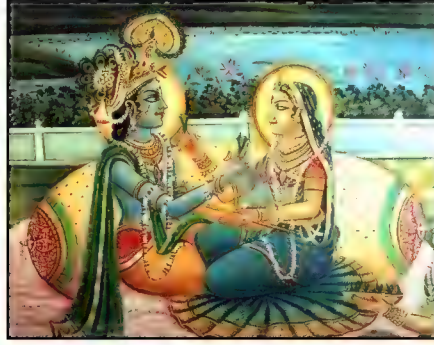
मिनट का समय लगता है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आये और मेरे अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।''

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण-कण तथा प्राणिमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

● तीनों प्रार्थनाओं के अन्त में 'भूल मत करना' यह वाक्य इसलिए कहा गया है, क्योंकि हम भूल सकते हैं, लेकिन भगवान् कभी नहीं भूलते। इसप्रकार 'भूल मत करना' इस सम्बोधन से हमने भगवान् को बाँध लिया। अब आगे वह भगवान् की जिम्मेदारी बन गयी और हम निश्चिन्त हो गए। इसलिए भगवान् को इस प्रार्थना के अनुसार बाध्य होकर हमारे जीवन में बदलाव लाकर हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। और हमें **इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति** हो जायेगी।

● **नित्य प्रार्थनाओं के साथ हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करना परमावश्यक है।**

नित्य प्रार्थनाओं का भगवद्‌गीता में उल्लिखित शास्त्रीय प्रमाण

– पहली प्रार्थना –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(8.6)

भाषांतर : हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता है, मृत्यु के पश्चात् वह उस-उस भाव के अनुसार निश्चित रूप से पुनः शरीर प्राप्त करता है।

तात्पर्य : महाराज भरत ने मृत्यु के समय हिरन का चिन्तन किया, अतः अगले जन्म में उन्हें हिरण का शरीर प्राप्त हुआ। इसलिए मृत्यु के समय में दूसरे विषयों का स्मरण न हो, केवल भगवान् का ही स्मरण हो।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(8.5)

भाषांतर : और जीवन के अंतिम समय में जो केवल मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करते हैं, वे तुरन्त ही मेरे भाव को प्राप्त होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तात्पर्य : अतः मनुष्य को निरन्तर हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ इस महामंत्र का जप करना चाहिए ताकि मृत्यु के समय इसके उच्चारण मात्र से ही भगवद्प्राप्ति हो जाये।

● पहली प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्कृपा से इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाएगी।

– दूसरी प्रार्थना –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9.27)

भाषांतर : हे कौन्तेय! तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ भोजन करते हो, जो कुछ अर्पित करते हो या दान देते हो तथा जो भी तपस्या करते हो, उन सबको मुझे समर्पित करते हुए करो।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ (9.28)

भाषांतर : इस प्रकार तुम शुभ तथा अशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त हो सकोगे तथा इस कर्मफलत्यागरूप योग में अपने चित्त को स्थिर करके तुम मुक्त होकर मेरे पास आओगे।

उदाहरण : अर्जुन क्षत्रिय तथा गृहस्थ होते हुए भी उसने भगवान् को प्रसन्न किया।

● दूसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्भावना से युक्त कर्म हो जायेगा।

– तीसरी प्रार्थना –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (6.29)

भाषांतर : वास्तविक योगी समस्त जीवों में मुझको तथा मुझमें सबको देखता है। निस्सन्देह स्वरूपसिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत्र देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (6.30)

भाषांतर : जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबकुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है।

● तीसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही शुद्ध भक्ति, शुद्ध नाम तथा भगवद्दर्शन प्राप्त होंगे।

वैष्णव प्रार्थना !

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन

प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरूप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी। नित्य कम से कम 11 बार यह प्रार्थना बोलने से समस्त प्रकार की बाधाओं से व अपराधों से मुक्त होकर भक्ति में शीघ्र उन्नति होगी।

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति
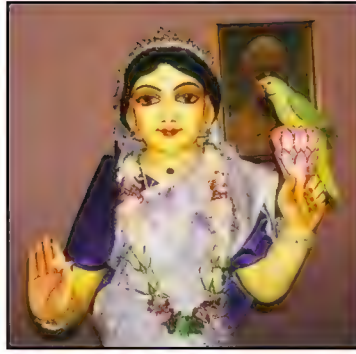
जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियाँ हैं, वे गोपियाँ हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ? अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की अमर माँ है। वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। फिर पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला–झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढ़ना पड़ेगा। माला को जप करने के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

ग्रंथकार की प्रार्थना.....

हे मेरे गुरुदेव! हे मेरे प्राणनाथ!
हे गौर हरि!

आप कहाँ हो ?

कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ ?
आपके चरणारविंद!

हे हरिदास!

नाम की भूख जगा दो मन को,

नाम का अमृत पिला दो हम को,

तुम सा कोई नामनिष्ठ नहीं है,

नाम का रस पिला दो हमको,

अलमस्त रहें हम, नाम के बल पर,

ऐसी कृपा करो, न टालो कल पर।

हे गुरुदेव! हे पतितपावन! हे भक्तवत्सल गौरहरि! हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आपका दासानुदास, नराधम, अधमाधम, अनिरुद्धदास, आपके श्रीचरणों में बैठकर रात-दिन आपके वियोग में रोता रहता है। आपकी कृपा से, आपके आदेश से, जिस दिन से आपका यह दास श्रीहरिनाम की महिमा लिख रहा है, उसी दिन से वह रो रहा है। आप जो कुछ करवाते हो, वही करता है। हे नाथ! आप इच्छामय हो। आपकी जो इच्छा होगी, वही होगा। इस जगत का उद्धार कैसे होगा, यह आप भली भाँति जानते हो। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आपकी लीला परम स्वतंत्र है। आप जो चाहोगे, निश्चयपूर्वक वही होगा। फिर भी आपसे मेरा अनुरोध है कि आप

मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करना जिसे प्राप्त करके मैं अपने मन का भाव सब भक्तों के सामने खोलकर रख सकूँ।

हे मेरे प्राणनाथ! हरिनाम करते-करते आपके नाम की महिमा लिखते-लिखते मेरा कठोर हृदय द्रवित हो गया है। मेरे दोनों नेत्रों से अविरल, अश्रुधारा बहती रहती है, कण्ठ-स्वर अवरुद्ध हो जाता है। हे प्राणनाथ! मेरे रोने का अंत नहीं है और आपकी कृपा का भी अंत नहीं है। आपका अभागा अनिरुद्ध जब कागज पेन लेकर पत्र लिखने बैठता है तो उसके विरह का समुद्र उछलने लगता है। प्राण-विरह में तड़पने लगते हैं और मन मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। शरीर काँपने लगता है और दोनों आँखों से बहती अश्रुधारा से कागज भीग जाता है पर फिर भी मुझे यह सब लिखना पड़ रहा है क्योंकि यही आपका आदेश है। यह कार्य इतना कठिन था कि मैं इसे कभी भी नहीं कर सकता था आपने कृपा करके, मेरा हाथ पकड़कर जो लिखवाया, वह लिख दिया। जो बुलवाया, वह बोल दिया।

हे गोविंद! मेरे ये आँसू दुःख या शोक के आँसू नहीं है। ये आँसू मेरी मंगलमय अनुभूति के आँसू है। ये आँसू मेरी अमूल्य निधि हैं, मेरी श्रेष्ठतम सम्पत्ति हैं। मेरी आँखों में इन आँसुओं को देखकर, आप भी तो रोने लगते हो। आप अपने भक्तों की आँखों में आँसू देखकर रुक नहीं पाते और उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछने के लिये दौड़े चले आते हो। अपने प्यारे को गले से लगा लेते हो और मंद-मंद मुस्कुराते हो। उस समय आपके दर्शन करके जो परम आनन्द व परम उल्लास होता है वह अकथनीय है। यही है आपकी भक्तवत्सलता। यही है आपका प्रेम।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद! आपका यह प्रेम सबको उपलब्ध नहीं होता। यह प्रेम मिलता है, वैष्णवों की चरणरज को सिर पर धारण करने से। वैष्णवों-संतों की चरण-रज का सेवन करने से, भजन-साधन मार्जित होता है, उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आती।

यह प्रेम मिलता है आपके भक्तों को हरिनाम सुनाने से, उनके संग नाम-संकीर्तन करने से।

हे मेरे नाथ! आपका नाम चिन्तामणि है। हरिनाम करने से कर्मों के बंधन का नाश हो जाता है। आपने हरिनाम करने का जो मार्ग बताया है, उसे करने से, कलिकाल के जीवों का भवबंधन निश्चितरूप से समाप्त हो जायेगा। आपने हरिनाम करने की जो विधि मुझे बताई है, उस विधि द्वारा हरिनाम करने से भक्तजनों की आँखों से अश्रुधारा बहेगी और उन्हें भी आपका प्रेम प्राप्त होगा।

हे गोविन्द! इस कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कठोर हो गया है। इन कठोर हृदय वाले जीवों पर अहैतुकी कृपा करने के लिये ही आपने श्रीहरिनाम की महिमा लिखवाई है और भगवद्-प्राप्ति का सहज, सरल एवं श्रेष्ठतम मार्ग बताया है।

हे दीनानाथ! हे करुणा के सागर! हे भक्तवत्सल! आपकी दासी माया ने हम सबको बुरी तरह जकड़ रखा है। हे नाथ! इस दुर्गम माया से हमें बचाइये। हमारी रक्षा कीजिये। हे प्राणनाथ! हम सब पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब आपके हरिनाम गान में मस्त हो जायें। हमें आपके श्रीचरण कमलों की स्मृति सदा बनी रहे। गुरु, वैष्णवों एवं भगवान् के चरणकमलों में बैठकर हम नित्य-निरंतर हरिनाम करते रहें। उन्हें हरिनाम सुनाते रहें। इसी में हम सबका मंगल है।

हे मेरे प्राणनाथ। मेरे मन में एक इच्छा है कि आपके दर्शन करने तथा आपकी चरण धूलि लेकर मस्तक पर लगाने का एक अवसर, कम से कम एक बार तो आपके सभी भक्तों को मिले और उन्हें इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो।

आपका श्रीचरणरेणु प्रार्थी

अनिरुद्ध दास

आप कहाँ हो ?

हा गौरांग! हा गौरांग ?
कहाँ गौरांग ? कहाँ गौरांग ?
कहाँ जाऊं ?
कहाँ पाऊँ आपका गौरवदन ?
आपका प्रेमस्वरुप ?
हे दयानिधान ? आप कहाँ हो ?
मैं आपको ढूँढ रहा हूँ।
मैं अकेला भटक रहा हूँ।
आप कहाँ हो ?

कहाँ जाऊँ ?
कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?
कहाँ दर्शन पाऊँ – हे कीर्तनानंद ?
दर्शन दो स्वामी ?
इस दीन-हीन गरीब को
दर्शन दो ?

हरे कृष्ण महामंत्र का अर्थ

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

– हरे –

भगवान् श्रीकृष्ण की मूल दैवी प्रकृति परम आह्लादिनी योगमाया अन्तरंगा शक्ति श्रीमती राधारानी। जो हमें भगवान् तक पहुँचने में सहायता करती हैं।

मनो हरित कृष्णस्य कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
ततो हरा श्रीराधैव तस्याः संबोधनं हरे।।

श्रीकृष्ण की आह्लादस्वरूपिणी श्रीराधा श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती हैं, अतः श्रीराधा ही **'हरा'** नाम से कही जाती हैं। **'हरा'** शब्द के सम्बोधन में **'हरे'** रूप बनता है।

– कृष्ण –

अखिल सृष्टि के निर्माता सर्वाकर्षक आदि–पुरुष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण।

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।

'कृष्' धातु आकर्षक सत्तावाचक है और **'ण'** शब्द आनन्दवाचक है। **कृष्** धातु **ण** प्रत्यय से मिलकर आनन्द–स्वरूप आकर्षक परमसत्य परब्रह्म ही **'कृष्ण'** नाम से कहे जाते हैं।

सन्दर्भः महाभारत, उद्योग पर्व 71.4/चैतन्यचरितामृत मध्यलीला 9.30

– राम –

भगवान् श्रीकृष्ण का एक नाम 'राधा–रमण' है।

श्रीराधां रमय नित्यं राम इत्यभिधीयते।।

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को नित्य रमण कराते रहते हैं अर्थात् आनन्दित करते रहते हैं, इसलिए वे **'राम'** कहलाते है।

(ब्रह्माण्डपुराण, उत्तरखण्ड 6.55)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम-पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।।

योगिजन चिन्मय, अनन्त, सत्य और असीम आनन्द के स्रोत जिस परतत्त्व में रमण करते हैं, वह परतत्त्व परं ब्रह्म ही **'राम'** नाम से कहा जाता है जो हर चर-अचर में आत्मा के रूप में रमा रहता है।

(सन्दर्भः पद्मपुराण, शतनाम स्तोत्र 8)

'हरे-कृष्ण-राम' ये तीन शब्द महामन्त्र के दिव्य बीज हैं।

यह महामन्त्र भगवान् के प्रति आत्मा की रुदनयुक्त पुकार हैं.....
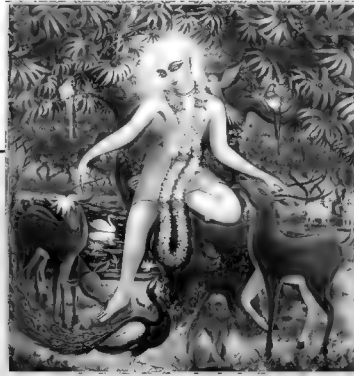
जब भाव की गाढ़ता होती है तो श्रीराधा-कृपा होती है।
जब रस की गाढ़ता होती है तो श्रीकृष्ण-कृपा होती है।
जब भाव और रस दोनों की गाढ़ता होती है तो
श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा होती है।

साभार : श्रीहरिनाम

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

एक लाख हरिनाम जप की अनिवार्यता

– आचार्यों व शास्त्रों के प्रमाण –

शास्त्रों में कहा गया है कि–

एक कृष्णनाम करे सर्वपापक्षय।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश।।
अनायासे भवक्षय, कृष्णेर सेवन।
एक कृष्ण–नामेर फले पाई एत धन।।
हेन कृष्णनाम यदि लय बहुबार।
तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार।।
तबे जानि ताहाते अपराध प्रचुर।
कृष्णनाम–बीज ताहे ना करे अंकुर।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि लीला 8.26,28,29,30)

"एक कृष्ण–नाम समस्त पापों का विनाश कर प्रेम के द्वारा भक्ति का प्रकाश करता है, अनायास रूप में सांसारिक आवागमन को दूरकर कृष्ण की साक्षात् सेवा में नियुक्त कर देता है। एक श्रीकृष्णनाम के फल से इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसे माहात्म्ययुक्त श्रीकृष्णनाम को बारम्बार ग्रहण करने पर भी यदि श्रीकृष्णप्रेम का प्रादुर्भाव नहीं होता और नेत्रों से अविरत अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होती, तो ऐसा समझना चाहिए कि, मेरे प्रचुर अपराध हैं।

अपराध किसे कहते हैं ?

अप– प्रतिकूल, के बिना, दूर करना, विरुद्ध अथवा छोड़ देना।

राध– समृद्धि, सफलता, प्रसन्न करना तथा प्रेमधारा।

अर्थात्, पवित्र नाम से अभिन्न श्रीकृष्ण उस व्यक्ति से अप्रसन्न हो जाते हैं, जो उनके नाम तथा रूप के प्रति अपराध करता है। दूसरे शब्दों में, नाम के प्रति किया गया अपराध हमारी प्रेमधारा को भगवान् से दूर ले जाकर हमारी आध्यात्मिक जीवन की सफलता में बाधा उत्पन्न कर देता है।

अतः अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, हरिनाम तीन स्तर पर अर्थात् तीन प्रकार से लिया जाता है।

1) नामापराध (अपराधयुक्त नाम)

2) नामाभास (आभासयुक्त नाम)

3) शुद्धनाम (वास्तविक हरिनाम)

1) नामापराध–

हरिनाम करने वाला साधक भक्त जब जान बूझकर अपराध करता रहता है, उसे अपराधयुक्त नाम कहते हैं।

2) नामाभास–

साधक जब अनजाने में अपराध करता है, साथ ही साथ हरिनाम भी करता है तब उसे जो नाम का आभास होता है, उसे 'नामाभास' कहते हैं।

3) शुद्धनाम–

जब जाने–अनजाने में किसी भी प्रकार से 10 नामापराध नहीं किये जाते तथा उसकी गंध भी नहीं रहती, ऐसी स्थिति में किया गया नाम **'शुद्ध हरिनाम'** है। ऐसे केवल एक शुद्ध नाम के उच्चारण मात्र से ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति हो जाती है। और उसके बाद अपने आप निरन्तर शुद्ध हरिनाम चलता ही रहता है। इसी के द्वारा दिव्य चिन्मय शरीर की प्राप्ति हो जाती है। तथा स्वरूपसिद्धि प्राप्त होती है।

वैसे हरिनाम कैसे भी किया जाय, पाप कर्म के फल तो तुरन्त भस्म हो जाते हैं तथा समस्त सांसारिक लाभ भी प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु, पाप वासना अर्थात् सांसारिक वासना नष्ट नहीं होती। अतः चित्त शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा पूर्णरूपेण सांसारिक वासना तथा समस्त मायिक संस्कारों का क्षय होने तक निरन्तर हरिनाम का अभ्यास करने मात्र से ही '**शुद्ध हरिनाम**' का उदय हो जाता है।

इसलिए पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड 48 में कहा गया है कि,

नामापराधयुक्तानां नामानि एव हरन्ति अघम्।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तानि एवार्थकराणि च।।

नाम अपराधी के समस्त पापों तथा अपराधों का नाश स्वयं नाम ही करता है। अतः निरन्तर नाम-भजन द्वारा नाम अपराधी व्यक्ति धीरे-धीरे समस्त पापों व अपराधों से मुक्त हो जाएगा। और वह निरपराध जप के स्तर पर पहुँच कर जीवन के चरम लक्ष्य **शुद्ध हरिनाम** तथा **कृष्णप्रेम** को प्राप्त करेगा।

इसी प्रकार निरन्तर हरिनाम स्मरण के विषय में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है-

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः।।

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड 42 अ. 103)

कृष्ण ही भगवान् विष्णु के उद्गम हैं। उनका सतत स्मरण करना चाहिए और किसी भी समय उन्हें भूलना नहीं चाहिए। शास्त्रों में वर्णित सारे सकारात्मक तथा नकारात्मक नियम (अर्थात् विधि और निषेध) तथा समस्त आदेश इन्हीं दो नियमों के दास हैं।

श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी का कहना है कि,
ज्यादा संख्या में लिया गया अपराधयुक्त नाम चुम्बक की तरह कुछ-कुछ नामाभास को आकर्षित करता है तथा खींचता है और ज्यादा संख्या में लिया गया आभास-युक्त नाम (नामाभास) शुद्ध हरिनाम को खींचता है।

अतः केवल एक नाम के उच्चारण से कार्य सिद्ध नहीं होगा। निरन्तर नाम की अनिवार्यता यहाँ सिद्ध होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि निरन्तर हरिनाम कैसे हो ? इस प्रश्न के उत्तर में ही तुलसीमाला पर नित्य एक लाख हरिनाम करने का रहस्य प्रकट हो जाता है।

जाने बिना न होइ परतीति। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।।

(रामचरितामानस 7.89)

"महिमा जाने बिना विश्वास नहीं होता और विश्वास तथा श्रद्धा के बिना प्रीति नहीं होती।"

जब गुरु-साधु-शास्त्र एक ही बात बोलते हैं तब यह प्रमाणित हो जाता है कि, यह सिद्धान्त सही है।

अतः हम यहाँ '**एक लाख हरिनाम की महिमा**' का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे है।

श्रीचैतन्य भागवत ग्रन्थ में यह वर्णन आता है कि, श्रीजगन्नाथ पुरी धाम में कलियुग पावनकारी श्रीचैतन्य महाप्रभु को भिक्षा (भोजन) के लिए ब्राह्मणगण आमन्त्रित करते हैं। महाप्रभु उन्हें कहते हैं कि, 'तुम पहले लक्षेश्वर (लखपति) बनो। मैं लक्षेश्वर के घर में ही भिक्षा स्वीकार करता हूँ।' तबी सभी ब्राह्मण बोले कि, 'हे प्रभु! लाख की बात तो दूर, हमारे पास तो हजार (रुपये) भी नहीं हैं। आपको निमन्त्रित किए बिना तो हमारी गृहस्थी ही बेकार है। उन्हें दुःखी जानकर महाप्रभु ने समझाया-

प्रभु बले- जान, 'लक्षेश्वर' बलि का रे?
प्रतिदिन लक्ष-नाम ये ग्रहण करे।।
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'।
तथा भिक्षा आमार, ना जाई अन्य घर।।

(श्रीचैतन्य भागवत 3.9.121-122)

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जानते हो! मैं किसे 'लक्षेश्वर' कहता हूँ? जो नित्यप्रति लक्ष नाम (एक लाख हरिनाम) ग्रहण करते हैं, उन्हें मैं लक्षेश्वर (लखपति) नाम से पुकारता हूँ। मैं उन्हीं

के घर में भिक्षा (भोजन) स्वीकार करता हूँ, किसी और के घर नहीं जाता।"

उपरोक्त पयार से सम्बन्धित अन्य पयारों का विस्तारपूर्वक वर्णन 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' ग्रन्थ के तीसरे भाग के 'नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करने का शास्त्रीय प्रमाण' इस लेख में द्रष्टव्य है। तथा इन पयारों की 'गौड़ीय भाष्य' टीका में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद एक लाख हरिनाम (हरे कृष्ण महामन्त्र की 64 माला) की महिमा को प्रधान रूप से स्वीकार करने का आग्रह करते हैं। श्रीचैतन्य भागवत के 3.9.127 वें पयार की टीका में श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपाद एक लाख हरिनाम की महत्ता के बारे में कहते हैं कि,

1) "लक्षेश्वर व्यतीत गौरभक्ति (एक लाख हरिनाम के बिना की गई गौरभक्ति) का आदेश कोई भी गौड़ीय सन्त स्वीकार नहीं करता।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु के आश्रित भक्तों का भक्ति का सबसे प्रमुख साधन व आदेश है– एक लाख हरिनाम का जप। जो नित्य कम से कम एक लाख हरिनाम करता है वही महाप्रभु का वास्तविक भक्त है।

2) "अधः पतित जनसमूह एकमात्र भजन–शब्द–वाच्य श्रीनाम भजन में विमुखतावश लक्ष नाम ग्रहण करने के बदले अन्य भजन की छलना करते हैं, अतः वे मंगल प्राप्त करने में पूरी तरह असमर्थ रह जाते हैं। अतः वह पतित है।" भक्ति के सभी अंगों में सर्वश्रेष्ठ व सबमें प्रमुख अंग श्रीनामभजन ही है। श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला 15.107 में भी कहा गया है कि,

नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।

अर्थात् केवल श्रीनाम भजन से ही नौ प्रकार की भक्ति हो जाती है। अतः जो सबसे प्रमुख अंग 'एक लाख हरिनाम जप' को छोड़कर बाकी प्रकार की भक्ति व सेवा को अधिक महत्त्व दे रहा है

वह अपने आप को ही छल रहा है, अतः उसका मंगल होने की सम्भावना नहीं है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु नवद्वीपवासियों को उपदेश कर रहे हैं–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
प्रभु बले – कहिलात्र एइ महामन्त्र।
इहा जप गिया सबे करिया निर्बन्ध।।
इहा हइते सर्व-सिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर।।

(श्रीचैतन्य भागवत मध्य 23.76–78)

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यही महामन्त्र है। तुम सब इसका **निर्बन्ध** में जप किया करो। इसके जप से ही तुम्हें सारी सिद्धियाँ मिल जाएँगी। इस जप का कोई विधि–विधान नहीं है, केवल सब समय इसे बोलते रहो।

'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' ग्रन्थ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर उपरोक्त पयार में उल्लिखित शब्द **निर्बन्ध** का अर्थ निम्नलिखित पयार में इस प्रकार स्पष्ट करते हैं।

चारिबार माला फिरिले एक ग्रन्थ हय।
एक ग्रन्थ नियम करिया क्रमशः वृद्धि करिते–करिते
सोलह ग्रन्थे एक लक्ष नाम निर्बन्ध हइबे।।

(मूल बंगला ग्रन्थ श्रीहरिनाम चिन्तामणि 10.50 फुटनोट 18)

अर्थात्, 'हरे कृष्ण महामन्त्र' की चार माला करने से एक ग्रन्थि होती है। अतः आरम्भ में एक ग्रन्थि नित्य करने का संकल्प करके क्रमशः ग्रन्थियों की संख्या बढ़ाते रहनी चाहिए। सोलह ग्रन्थि (64 माला) करने से एक **निर्बन्ध** यानी कि एक लाख नाम संख्या पूर्ण हो जाती है।

इस विषय को विस्तारपूर्वक इस प्रकार समझें–

एक महामन्त्र =

16 नाम (32 अक्षर)

माला के एक मनके पर एक महामन्त्र का जप होता है। अतः–

एक मनका =

एक महामन्त्र का जप

एक माला =

108 मनके = 108 महामन्त्र X 16 नाम = 1728 हरिनाम

एक ग्रन्थि =

4 माला = 432 महामन्त्र = 6912 हरिनाम

चार ग्रन्थि =

16 माला = 1728 महामन्त्र = 27,648 हरिनाम =
25,000 ग्राह्य हरिनाम

एक निर्बन्ध (16 ग्रन्थि) =

64 माला = 6912 महामन्त्र = 1,10,592 हरिनाम =
1 लाख ग्राह्य हरिनाम

माला पर जप करते समय हरिनाम की गति बढ़ाने के कारण विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की सम्भावना रहती है और मन की गति रुक जाती है। तथापि कुछ नामों का अस्पष्ट उच्चारण हो जाने की सम्भावना के कारण तथा कुछ नाम कानों में सुनाई न देने के कारण 16 माला को 25 हजार हरिनाम तथा 64 माला को एक लाख हरिनाम के रूप में गिना जाता है।

अतः श्रील भक्तिविनोद ठाकुर यहाँ पर नित्य एक लाख हरिनाम जप के लिए उपदेश कर रहे हैं।

श्रीप्रेमविलास ग्रन्थ के 18 वें अध्याय में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर भक्तों से कहते हैं कि–

प्रथमे कृष्णपद प्राप्ति लक्ष्य जारा।
से लइबे लक्षनाम संख्या आपनारा।।

अर्थात्, जिसके जीवन का सबसे प्रमुख उद्देश्य कृष्ण चरणों की प्राप्ति है उसे नित्य नियमपूर्वक एक लाख हरिनाम का जप अवश्य करना चाहिए।

'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' ग्रन्थ में 3 लाख नाम जप का महत्त्व–

एक ग्रन्थ संख्या करि आरम्भिवे नाम।
क्रम तिन लक्ष स्मरि पूरे मनस्काम।।

(15.36)

एक ग्रन्थि (चार माला) से आरम्भ करके धीरे-धीरे एक लाख और फिर तीन लाख जप तक पहुँचना चाहिए। ऐसा करने से मन की समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

मने ह'बे आज लक्ष नाम ये करिव।
क्रमे क्रमे तिन लक्ष नाम ये स्मरिव।।

(12.30)

अर्थात्, नामनिष्ठ साधुओं के संग से साधक के मन में यह धारणा बनने लगती है कि आज मैं एक लाख हरिनाम करूँगा और धीरे-धीरे मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन किया करूँगा।

परन्तु, कुछ साधक संख्या बढ़ाने के प्रति उदासीन रहते हैं। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामीजी का कहना है कि–

"हमने अपने शिष्यों से कम से कम सोलह माला का जप करने को कहा है। सोलह माला जप कुछ भी नहीं है। वृन्दावन में बहुत से भक्त हैं, जो 120 माला का जप करते हैं। अतः सोलह माला न्यूनतन संख्या है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि पाश्चात्य देशों में 64 माला अथवा 120 माला करना एक दुष्कर कार्य है।"

(भक्तिरसामृतसिन्धु पर आधारित प्रवचन दि. 20/10/1972)

समस्त आचार्यों ने हमेशा अपराध रहित जप पर ही बल दिया है, जो केवल निरन्तर हरिनाम द्वारा ही सम्भव है।

श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी बड़ी रहस्यमय बात बताते हैं कि, "भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी ने एक अमूल्य ग्रन्थ लिखा था जिसे उन्होंने गंगा नदी में सिर्फ इसलिए बहा दिया था क्योंकि उसे देखकर उनके विद्वान् मित्र को बड़ा दुख हुआ था। क्योंकि उस मित्र ने बड़े कष्ट से एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की थी कि उसके मतानुसार पूरे विश्व में ऐसा ग्रन्थ किसी ने नहीं रचा होगा। परन्तु महाप्रभु के दिव्य ग्रन्थ को देखकर उसका भ्रम टूट गया, अतः वह दुखी हो गया। तो महाप्रभु ने अपने दिव्य ग्रन्थ को गंगा नदी में बहा दिया। यदि वह ग्रन्थ आज उपलब्ध होता तो नाम जप का रहस्य और अधिक दृष्टिगोचर होता।"

श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी को तथा उस रहस्य को दोहराते हुए कहते हैं कि–

"जो नित्य कम से कम एक लाख नाम करेगा उसका निरन्तर हरिनाम स्वाभाविक रूप से शुरू हो जाएगा। तथा उस जापक की संख्या पूर्वक नामजप में वृद्धि होती जाएगी। नित्य एक लाख नाम करने वाले साधक के घर में कलि (कलियुग का राजा) नहीं घुसेगा, जो कलह, अशान्ति, झगड़े तथा रिद्धि–सिद्धि न रहने का कारण है। आज घर–घर में टी.वी., अखबार, मोबाइल आदि के रूप में वह घुस गया है। एक लाख नाम करने वाले को अगर कलि बुरी नजर से देखेगा तो महाप्रभु ने उसे कहा है कि, 'मैं तेरा सर्वनाश कर दूँगा। अतः वह एक लाख नाम करने वाले से दूर रहता है। मृत्यु के समय ऐसे साधक को ले जाने के लिए भगवान् स्वयं आते हैं। जो हरिनाम करता है उसके लिए कलियुग भी सत्युग है, और जो हरिनाम नहीं करता उसके लिए सत्युग भी कलियुग के समान है। अतः एक लाख हरिनाम जप सबके लिए अनिवार्य है।"

–मुकुन्द दास

श्रीनित्यानन्द प्रभु

निताई

श्रीसंकर्षण तत्व : श्रीबलरामजी का अवतार

अन्य नाम – निताई, निताई चाँद और बचपन में चिदानन्द
वस्त्र रंग – नीला
जन्म – माघ शुक्ला त्रयोदशी संवत् 1530
जन्मस्थान – ग्राम. एकचक्रा जि. वीरभूम (बंगाल)
माता – श्रीमती पद्मावती
पिता – श्रीहाड़ाई पण्डित, (श्रीमुकुन्द)
पत्नी – श्रीमती वसुधा एवं श्रीमती जाह्नवा (दोनों श्रीसूर्यदास पण्डित की पुत्रियाँ)
पुत्र – श्रीमती वसुधाजी के श्रीवीरचन्द्र (वीरभद्र) गोस्वामी
पुत्री – गंगा माता गोस्वामिनी
गुरुदीक्षा – श्रीलक्ष्मीपति प्रभुपाद (पंढरपुर में)
जीवनकाल – 12 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग
20 वर्ष तक अवधूत संन्यासी रहे।
35 वर्ष की अवस्था में श्रीचैतन्य के आदेश से विवाह किया।
श्रीचैतन्य से 12-13 वर्ष बड़े थे।
आज भी शृंगारवट, वृन्दावन में आपके वंशज हैं।
अप्रकट – संवत 1598, तिथि अज्ञात, श्रीगोपीनाथजी में लीन। कुल लगभग 68 वर्ष पृथ्वी पर रहे।

❁ ❁ ❁

श्रीचैतन्य महाप्रभु

श्रीश्रीराधाकृष्ण का मिलित अवतार

अन्य नाम – निमाई, गौर, गौरांग एवं विश्वम्भर
वस्त्र रंग – पीला।
अंग रंग – स्वर्ण जैसा
जन्म – फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1542

जन्मस्थान – नवद्वीप (बंगाल)
माता – श्रीमती शची देवी
पिता – श्रीजगन्नाथ मिश्र
दादी – श्रीमती कलावती देवी
दादा – श्रीउपेन्द्र मिश्र
बड़े भाई – श्रीविश्वरूप (प्रकाण्ड पण्डित महापुरुष)
14-15 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर संन्यासी बने नाम हुआ शंकरारण्य।
दो-ढाई वर्ष बाद पंढरपुर में देहत्याग।
पत्नी – 1. श्रीवल्लभ आचार्य की पुत्री श्रीमती लक्ष्मीप्रिया। सर्पदंश से अप्रकट हुई।
2. श्रीसनातन मिश्र की पुत्री श्रीमती विष्णुप्रिया।
गुरुदीक्षा – श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के शिष्य-श्रीपाद ईश्वरपुरी जी से (गया में)
संन्यास – श्रीपाद केशव भारती जी से।
जीवनकाल – महाप्रभु 24 वर्ष गृहस्थ में रहे। संन्यास लेकर 6 वर्ष जगन्नाथपुरी (नीलाचल) में रहे। कुल लगभग 48 वर्ष पृथ्वी पर रहे।
(अंतिम 12 वर्ष को गम्भीरा लीला भी कहते हैं)
अप्रकट – आषाढ़ शुक्ल सप्तमी सं. 1590 तीसरा प्रहर, श्रीजगन्नाथ जी में लीन

॥ जय जय श्रीनिताई-गौर ॥

।। श्रीश्रीनिताई–गौर चालीसा ।।

रचयिता : डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

दोहा–

श्रीचैतन्य कृपानिधि, कलियुग के अवतार।
प्रेमभक्ति वितरण करी, दिया सभी को तार।।
श्रीनित्यानन्द गदाधर, श्रीअद्वैत श्रीवास।।
बार बार सुमिरन करूँ, हरिदासन का दास।।

चौपाई–

श्रीचैतन्य कृपा के सागर। राधाकृष्ण मिलित तनु आगर।।1 ।।
नवद्वीप प्रकटे श्रीनिमाई। जगन्नाथ पितु शचि हैं माई।।2 ।।
मास फाल्गुन तिथि पूर्णिमा। चन्द्रग्रहण सुन्दर थी सुषमा।।3 ।।
भागीरथि का दिव्य किनारा। निम्ब वृक्ष का सघन सहारा।।4 ।।
हरि हरि बोलें नर और नारी। नारायण प्रकटे सुखकारी।।5 ।।
शिशु रूप चंचल अति भारी। पढ़ें लिखें नहिं मात दुखारी।।6 ।।
हुए युवा प्रकटी पंडिताई। अध्यापक बने गौर निमाई।।7 ।।
चारों ओर हुई परसिद्धि। कृष्ण प्रचारक नाम महानिधि।।8 ।।
यही पढ़ाते आठों याम। मात पिता धन कृष्ण ही धाम।।9 ।।
माता शीघ्र वचन है लीना। लक्ष्मीप्रिया विवाह शुभ कीना।।1 0 ।।
अल्प समय दुख देखी माता। सर्प दंश से सिधरी ब्याहता।।1 1 ।।
पुनः मात इक वधू ले आई। विष्णुप्रिया शुभ लक्षण ब्याई।।1 2 ।।
मात इष्ट वर सेवा करती। रहती कृष्ण शरण मन हरती।।1 3 ।।
अब प्रभु लीला विस्तर कीन्हा। नित्यानन्द मिले तब चीन्हा।।1 4 ।।
संकर्षण के रूप अपारा। सर्व जगत् के आप अधारा।।1 5 ।।
त्रेता में श्रीराम–लक्ष्मण। द्वापर में बलराम–कृष्ण बन।।1 6 ।।
कलि में गौर–निताई प्रेमधन। प्रकटे सच्चिदानन्दरूपघन।।1 7 ।।

नित्यानन्द बड़े अनुरागी। नाम–प्रेम की भिक्षा माँगी।।18।।
ब्राह्मण भ्रात जगाई–मधाई। दोनों मद्यप नीच कसाई।।19।।
मद–मदान्ध ह्वै घायल कीना। प्रकटे गौर शस्त्र गहि लीना।।20।।
चक्र–सुदर्शन गर्जन कीना। नित्यानन्द हरि वर्जन कीना।।21।।
मारण हित नहीं तव अवतारा। प्रेम प्रदायक रूप तिहारा।।22।।
साधु हुए जगाई–मधाई। हरि किरपा वरणी नहिं जाई।।23।।
मुसलमान काजी की लड़ाई। संकीर्तन पर रोक लगाई।।24।।
नरसिंह रूप भये तब गौरा। भय से अकुलित काजी बौरा।।25।।
नतमस्तक चरणन में दौड़ा। दिया वचन है तब प्रभु छोड़ा।।26।।
अभिमानी दिग्विजयी सुधारा। अरु प्रकाशानन्द उद्धारा।।27।।
आँगन कीर्तन नित्य श्रीवासा। परम एकान्त हरी के दासा।।28।।
जगन्नाथ तव धाम पियारा। निरतत रथ सँग अति विस्तारा।।29।।
श्रीहरिदास नाम अवतारा। राजा प्रतापरुद्र बलिहारा।।30।।
झारिखण्ड मृग व्याध नचाये। हरि हरि बोलें अश्रु बहाये।।31।।
श्री वृन्दावन को प्रकटाया। ब्रज गरिमा का दरश कराया।।32।।
राधा–कृष्णकुण्ड अति शोभित। श्रीगोवर्धनधर मन लोभित।।33।।
शिक्षा अष्टक निःसृत कीना। षड्गोस्वामी आदृत कीना।।34।।
शास्त्र प्रमाण भागवत मानी। जीव कृष्ण का दास बखानी।।35।।
जपतप संयम ज्ञान योग मधि। सर्वश्रेष्ठ मग भक्ति वारिधि।।36।।
कलि में केशव कीर्तन सारा। और नहीं गति इसके पारा।।37।।
महामन्त्र हरेकृष्ण है ध्याना। गोपी प्रेम है लक्ष्य बखाना।।38।।
प्रेम विरह ने सब कुछ हरना। झरझर अश्रु बहे ज्यों झरना।।39।।
तड़पत प्राण 'कृष्ण' बिनु हीना। जगन्नाथ में भये तब लीना।।40।।

दोहा–

गौर–निताई प्रेम से, जो ध्यावे चित लाय।
प्रेम भक्ति सुदृढ़ करे, निर्मल होत कषाय।।
श्रीवृन्दावन में वास लह, संकीर्तन आधार।
'कृष्ण' प्रेम की वारिधि, हरिनाम का सार।।

श्रीशिक्षाष्टकम्

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्।।1।।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।2।।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।3।।

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।4।।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकज स्थित धूलिसदृशं विचिन्तय।।5।।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गदगद-रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम-ग्रहणे भविष्यति।।6।।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द-विरहेण मे।।7।।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टुमाम्
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।8।।

(इनका अर्थास्वादन छठे भाग में पठनीय है।)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवी-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धाऽपसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

समष्टिगत-प्रणाम

गुरवे गौरचंद्राय राधिकायै तदालये।
कृष्णाय कृष्णभक्ताय तद्भक्ताय नमो नमः।।16।।

पंचतत्व-प्रणाम मंत्र

जय श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।17।।

महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।18।।

आनन्द के सागर में,
आनन्द की लहरें...

निरन्तर श्रीहरिनाम–जप के प्रभाव से विषयवासना के अनन्त संस्कार नष्ट होकर चित्त में केवल हरिनाम का ही राज्य रह जाता हैं। परिणामस्वरूप चित्त में नित्यनिरन्तर केवल नाम की स्फुरणा उठती रहती है, मानों–आनन्द के सागर में, आनन्द की लहरें! इस अनुभव का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। परन्तु श्रील रूपगोस्वामीपाद उसका वर्णन इस प्रकार से करते हैं–

तुण्डे ताण्डविनी रति वितनुते तुण्डावली–लब्धये
कर्ण–क्रोड़–कड़म्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः–प्राङ्गण–सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्ण–द्वयी।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला 1.11)

"मैं नहीं जानता हूँ कि, 'कृष्–ण' के दो अक्षरों ने कितना अमृत उत्पन्न किया है। जब कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया जाता है, तो यह मुख के भीतर नृत्य करता प्रतीत होता है। तब हमें अनेकानेक मुख प्राप्त करने की लालसा जाग उठती है। जब वही नाम कानों के छिद्रों में प्रवेश करता है, तब करोड़ों–करोड़ों कर्ण–प्राप्ति की इच्छा होने लगाती है। और जब यह नाम हृदय के आँगन में नृत्य करता है, तब यह मन की समस्त गतिविधियों को जीत लेता है, जिससे समस्त इन्द्रियाँ स्तब्ध हो जाती हैं।"

अर्थात्, श्रील रूपगोस्वामीपाद का कहना है कि, 'यदि मुझे लाखों जिह्वाएँ और करोड़ों कान मिल जाएँ, तब कहीं जाकर मैं नाम का आनन्द उठा पाऊँ। इतना आनन्द भरा हुआ है इस कृष्ण नाम में!

1

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

चण्डीगढ़
दि. 5-6-2007

परमाराध्यतम प्रेमास्पद प्रातः स्मरणीय भक्तगण,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

शरणागति ही भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र साधन

गीता में भगवान् ने अर्जुन को उन्हें प्राप्त करने के अनेक साधन बताये, जैसे निष्काम कर्म, योग, ध्यान आदि-आदि।

अर्जुन ने पूछा, 'कृष्ण! मुझे तो कोई एक साधन बता दो, जो न चाहते हुए भी मैं अपनी ओर आपको आकर्षित कर सकूँ।' तब भगवान् कृष्ण बोले, 'मैं तुमको एक गुप्त साधन बताता हूँ, जो इस गीता का प्राण समझना, इस साधन से भक्त मुझे आकर्षित कर जबरन मुझे खरीद लेता है, वह है **शरणागति**।'

शरणागति एक ऐसा प्रभावशाली भाव है, जो मेरे हृदय को मथकर बेबस कर देता है। इस जगत में इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बता रहा हूँ। एक बिल्ली जो अपने बच्चे को मुख में पकड़कर इधर-उधर ले जाती रहती है, तब बच्चे को कोई चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि वह अपनी माँ की शरण में है। माँ ही बच्चे की चिन्ता करती रहती है।

दूसरा उदाहरण है- बन्दरिया का। बन्दरिया अपने बच्चे को पकड़कर इधर-उधर कूदती नहीं है, स्वयं बच्चा उसकी छाती को अपने हाथों से पकड़ा रहता है। अतः बच्चे को गिरने का भय रहता है, बन्दरिया बे-चिन्ता से इधर-उधर कूदती रहती है।

तीसरा उदाहरण मानव का है। जब तक शिशु 4–5 साल का नहीं हो जाता, तब तक माँ को शिशु की हर प्रकार से चिन्ता रहती है। खाने–पिलाने की, स्नानादि कपड़े बदलने की, अपनी छाती से लगाकर सुलाने की आदि–आदि, क्योंकि शिशु माँ की शरण में है। बच्चा बड़ा होने पर माँ उसकी परवाह नहीं करती।

इसी प्रकार शरणागत भक्त भगवान् का शिशु है। ज्ञानी भक्त भगवान् का बड़ा बालक है। वह स्वयं अपने आप को सम्भालने में समर्थ है। शरणागत भक्त स्तन पीता शिशु है। यह अपने आप को सम्भाल नहीं सकता। भगवान् के आश्रित ही जीवन यापन करता है, अतः भगवान् को भक्त की देखभाल करनी पड़ती है।

जिस प्रकार शिशु माँ–माँ बोलकर माँ को अपने पास बुला लेता है। माँ चाहे किसी काम में कितनी ही व्यस्त हो, शिशु की आवाज सुनकर शिशु के पास दौड़कर आ जाती है। इसी प्रकार भक्त माँ–माँ **(हरे–कृष्ण–राम)** बोल कर भगवान् को प्रकट कर देता है। माँ को बच्चे के पास आने में कुछ देर हो सकती है, परन्तु भगवान् को आने में देर नहीं होती। क्योंकि भगवान् तो कण–कण में, हर अवस्था में, हर समय मौजूद रहते हैं।

इस जगत में मिलिट्री में शरणागत शत्रु को भी मारते नहीं हैं, जब वह हाथ ऊपर कर देता है। अतः शरणागति की बड़ी महिमा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शरणागति आये कैसे? इसका उत्तर है, भगवान् का नाम बारम्बार उच्चारण करने पर। जब बार–बार एकाग्र चित्त से अर्थात् कान व मन को साथ में रखकर बारम्बार बोलेगा तो भाव प्रकट होने लगेगा, वह भाव होगा भगवान् से मिलन का। इस बार–बार उच्चारण से संसार से वैराग्य का उदय होगा। जब संसार से राग हटने लगेगा तो स्वतः ही भगवान् से राग जुड़ने लगेगा। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। ऐसी परिस्थिति अवश्यमेव प्रकट होगी ही। कोई भी आजमाकर देख सकता है। एक दिन में

नहीं तो एक माह में हो जायेगी। यदि भक्त अपराध न हो, घमण्ड न हो तो।

भगवान् से राग होने पर, भगवान् की तरफ मन खिंचेगा। उस खिंचाव में रोना आयेगा। धीरे-धीरे निरन्तर रोने लगेगा। जब निरन्तर रोयेगा तब समझना होगा कि, दसों इन्द्रियाँ एक जगह पर हो गईं, अब शत-प्रतिशत ध्यान का आकर्षण भगवान् की तरफ हो गया, संसार से एकदम नाता टूट चुका। जब संसार से नाता नहीं रहा तो अन्तःकरण खाली नहीं रहता, उसमें या तो संसार भरेगा या भगवान् भरेगा।

भगवान् भरने के कारण उसमें नाम, रूप, गुण, लीला, धाम स्फुरित होने लगेंगे। अब विरहाग्नि तीव्र हो जायेगी तो अन्तःकरण में जो दुर्गुण भरे पड़े थे, वे दुर्गुण, सद्गुण भरने के कारण अश्रुधारा के साथ बहकर अन्तःकरण से बाहर आ जायेंगे। अब तो उसका संसार कृष्ण का संसार हो जायेगा। जब संसार ही कृष्ण का होगा, तो सभी प्राणी कृष्ण में है, कृष्ण से हैं, कौन विपरीत रहेगा। सभी प्राण समान प्यारे बन जायेंगे। अब उसे किसी भी चीज की कभी-कमी नहीं रहेगी। कृष्ण जब उसके हो गये, तो कृष्ण की सभी सम्पत्ति उसकी हो गई। जैसे पिता की सम्पत्ति का हक अपने पुत्र पर रहता है, उसी प्रकार भक्त का हक भगवान् की सम्पत्ति पर स्वतः ही हो जायेगा।

अतः मेरे अन्तरंग प्रियजनों, हरिनाम को अधिक से अधिक कान व मन को केन्द्रित करके जपा करो। सारा जीवन सुखमय बीत जायेगा। अन्त में गोलोक प्राप्ति होगी। भगवान् स्वयं आकर भक्त को विमान में बिठाकर अपने घर में ले जायेंगे। जो घर अनन्त युगों से नहीं मिल रहा था वह आज मिल गया। एक साधारण सी सोच है, कि जब कोई भी घर से बाहर निकल जाता है, वह जब तक घर में वापस नहीं आता तब तक चैन से नहीं रह पाता।

2

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चण्डीगढ़
दि. 5-6-2007

चि. रघुबीर, अमरेश, हरि ओम तथा बच्चे,

हरिनाम में रति हो।

हरिनाम से किसी भी चीज की कमी नहीं रहती

जिस मानव को हरिनाम स्मरण का चस्का अर्थात् नशा लग गया वह अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों की सम्पत्ति का स्वामी बन गया। क्यों बन गया ? इसका कारण है, भगवान् को इसने खरीद लिया। जिस प्रकार मीरा कह रही है...

लियो जी मैं तो लियो गोविंदो मोल,
कोई कहे चौडे, कोई कहे छानै लियोजी बजन्ता ढोल,
कोई कहे सूंगो कोई कहे महंगो लियोजी तराजू तोल।

इसी प्रकार से जो ज्यादातर हरिनाम पर अपना जीवन चलाता है, गोविन्द उसका बन जाता है। उसको छोड़कर भगवान् कहीं नहीं जाते। सम्पूर्ण सृष्टियों को रचने वाले भगवान् ही है। भगवान् के बिना सृष्टि में कुछ भी नहीं है।

हरिनाम जापक को इसी जन्म में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति हो गई। इसके संसार के सभी काम सुलभ हो गए। जो अनन्तकोटि जन्मों से भगवान् की गोद से बिछुड़कर भटक रहा था, अब उनकी गोद में जा बैठा। उसने तो अपनी 21 पीढ़ियों को अपने साथ ले जाकर उनका उद्धार कर दिया। जैसा कि भगवान् का वचन है।

कृत जुग-त्रेता-द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कली हरिनाम ते पावहिं लोग।।

सत्‌युग में हजारों साल भगवान् का ध्यान करने से, त्रेतायुग में बहुत सा धन लगाकर यज्ञ करने से, द्वापरयुग में बड़ी श्रद्धा से पूजा करने से भगवान् दर्शन देते थे। वह कलियुग में कमरे में पंखा–हीटर लगाकर शान्त चित्त से बैठकर हरिनाम जप करने से हो सकता है। कहीं जंगल में जाने की, धूप–सर्दी, बरसात, भूख–प्यास सहन करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन मानव कितना दुर्भागा है, इतनी सुविधा होने पर भी हरिनाम जप नहीं करता। इसका दण्ड भविष्य में भोगना पड़ेगा। चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर असीम दुःख भोगना पड़ेगा।

कलियुग में करोड़ों मनुष्यों में से कोई एक ही भगवान् को चाहता है। हर कोई धन, वैभव, नौकरी, पुत्रादि चाहता है, भगवान् को कोई नहीं चाहता। कलियुग में भगवान् के ग्राहक नहीं हैं। ग्राहकों के बिना भगवान् का मन लगता नहीं। भक्तों से ही भगवान् का संसार बनता है, अतः भगवान् को भक्तों की बहुत आवश्यकता रहती है, यदि कोई–कोई थोड़ा–सा भी साधन भजन कर लेता है तो भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। जैसा कि भक्त प्रह्लाद अपने सहपाठियों से कह रहे हैं कि भगवान् को पाना कठिन नहीं है।

शिवजी उमा को कह रहे हैं–

जाऊ नाम जप एकहि बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।
जाऊ नाम जप सुनो भवानी। भव बंधन काटहि नर ज्ञानी।।

निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि कोई साधक कान से सुनकर एक माला भी कर लेता है तो भगवान् उसे अपना लेते हैं क्योंकि एक माला में **1728** हरिनाम का उच्चारण होता है। इतनी बार भगवान् को पुकारता है, लेकिन मन साथ में होना आवश्यक है। मन के इधर–उधर भटकने से, भगवान् अन्तर्यामी हैं, इसलिए नहीं आयेंगे।

जिस प्रकार 1–2 साल का एक शिशु माँ–माँ कहकर माँ को बुला लेता है, इसी प्रकार भक्त नाम उच्चारण कर, भगवान् को

बुला लेता है। भगवान् तो हर जगह, हरपल, मौजूद रहते हैं। पुकारने की देर है, पुकारते ही तुरन्त प्रकट हो जाते हैं।

कितना सुगम सरल साधन है, तब भी मूर्ख मानव अचेत होकर सोता रहता है। समय बरबाद कर, जीवन नष्ट करता रहता है। उसे पता नहीं है कि काल सिर पर मुख फाड़े खड़ा है, अचानक निगल जायेगा। फिर रोता हुआ जायेगा।

अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) से पुकारना मन–कान को सटाकर (जोड़कर) ही होता है। मन नहीं होगा तो कान सुनेगा भी नहीं।

राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय।।
कर में तो माला फिरे जीभ फिरे मुख माहि।
मनवा तो चहुँ दिशि फिरे यह तो सुमरन नाहि।।

कहते हैं मन नहीं रुकता। यह कहना भी बेकार है। परीक्षार्थी 3 घंटे तक परीक्षा देता है तो मन न रुकने पर फेल हो जाता है। फिर वहाँ मन 3 घंटे कैसे रुक जाता है ? इसका आशय यह हुआ कि हरिनाम में लोभ नहीं है। हरिनाम के बराबर संसार में कोई लाभ है ही नहीं।

लाभ कि कछु हरिनाम समाना। जेहि गावहि श्रुति वेद पुराना।।
हानि कि कछु जग में कछु भाई। जपिए न नाम नर तन पाई।।

हरिनाम को महत्त्व देवे तो संसार का कोई काम अधूरा रहता ही नहीं। क्योंकि वह हरिनाम (भगवान्) के शरणागत हो चुका। गीता के कथनानुसार शरणागति गीता का प्राण है। शरणागत को भगवान् एक क्षण भी नहीं छोड़ते।

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्‌गद् गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

शरणागति तब ही प्रकट होगी जब मनसहित कान हरिनाम सुन पायेगा। बार–बार रटने से भगवान् के लिए छटपट होकर

अश्रुधारा बहने लगेगी। अश्रुधारा का साक्षात् रूप शरणागति ही है। अश्रुधारा न आने पर शरणागति होगी ही नहीं।

रामवचन–

जौं सभीत आवा सरणाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

हिंसक प्राणी भी शरणागत को दुःखी नहीं करेंगे क्योंकि उनमें भी भगवान् विराजमान हैं। वह मित्र बन जायेंगे।

श्रीगौरहरि ने उच्च स्वर के कीर्तन का आविष्कार किया। यह कीर्तन भी कान+मन को सटाकर होता है, इस कीर्तन में मन बाहर जाता नहीं। लेकिन थकान जल्दी हो जाती है, जप में घंटों तक थकान नहीं होती यदि मन से जप हो तो।

बुढ़ापा आने पर अपने बुजुर्ग सन्त एक जगह बैठकर 5–5 लाख नाम जप करते थे। उच्च स्वर के कीर्तन, पठन से दूर ही रहते थे। अशक्तता के कारण एक जगह बैठकर नाम करते थे।

मन को रोकने के लिए प्रसाद पाते वक्त नाम जप करते रहना चाहिए ताकि खून में सात्विकता आरोपित हो जाये। सात्विकता में मन रुक जाता है, तामस में चंचल रहता है। पानी भी नाम जप करते हुए पिया जाए तो वह चरणामृत बन जाता है।

नाम का अभ्यास हर समय करते रहना चाहिए। आदत होने से स्वतः ही नाम अन्दर चलता रहता है।

निष्कर्ष यह निकलता है, कि जो साधक हरिनाम को तत्परता, श्रद्धा व प्रेम से संख्यापूर्वक जपता है, उसको सांसारिक व पारलौकिक सम्पत्ति बड़ी सरलता से स्वतः ही उपलब्ध हो जाती है। सभी उसके मित्र बन जाते हैं।

जापे कृपा राम की होई। तापे कृपा करे सब कोई।।

नित्य 3 लाख जप बड़ा प्रभावशाली दृष्टिगोचर हो रहा है, जैसा कि मैं अनुभव कर रहा हूँ। मुझे मठ व बाहर के सभी भक्त कितना चाह रहे हैं, किसी चीज की कमी है ही नहीं। बड़ी श्रद्धा से सभी सेवा हो रही है। जबकि मैं चाह भी नहीं रहा हूँ। इति।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 21-8-2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय तथा अष्ट प्रहर स्मरणीय, श्रीगुरुदेव भक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् के प्रति शुद्ध नाम, भगवद् सुख के हेतु प्रार्थना।

अनन्त कोटि भानु उदय का उजाला

गुरु तथा ठाकुर द्वारा प्रेरित होकर यह लेख लिख रहा हूँ। मैं अल्पज्ञ अधम उजाला करने में असमर्थ हूँ। क्योंकि इसमें श्रीगुरुदेव की शक्ति काम कर रही है। इस तथ्य को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में कोई काट नहीं सकता।

जो हरिनाम भगवान् के सुख के हेतु किया जाता है वह हरिनाम शुद्ध निर्मल भक्ति में आता है एवं जो हरिनाम स्वयं के सुख के हेतु लिया जाता है अर्थात् ऐसा भाव कि, मुझे सब भक्त कहेंगे, मेरा परिवार सुख समृद्ध हो जायेगा आदि-आदि। यह हरिनाम शुद्ध भक्ति में न आकर मलिन काम भक्ति में आता है।

जैसे यज्ञ पत्नियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के लिए, कि भगवान् को सुख होगा इसलिए पतियों के नाराज होने पर भी भोजन लेकर गईं। गोपियाँ पतियों के विरुद्ध होने पर भी कृष्ण के सुखविधान में अपना जीवनयापन करती रहती थीं। जैसे छोटा बच्चा माँ-माँ करके पुकारता है, तो माँ को कितना सुख मिलता है। स्त्री अपने पति के लिए हर प्रकार से सेवा में संलग्न रहकर पति का सुख विधान करती रहती है, तो वह सती श्रेणी में आती है। शिष्य अपने गुरु की सेवा में संलग्न रहकर गुरुदेव जी का सुख-विधान करता है, तो वह गुरुनिष्ठ श्रेणी में आता है। इसके पीछे-पीछे भगवान् घूमते रहते हैं कि इसकी पद-रज मुझ पर पड़ती रहे एवं मैं पवित्रता लाभ

करता रहूँ। प्रह्लाद भगवान् के सुख के लिए कीर्तन करते थे तो भगवान् पत्थर के खम्भे से प्रकट हो गये। मीरा भगवान् को पद्य सुना-सुनाकर भगवान् को सुखी करती रहती थी तो अन्त में भगवान् के श्रीविग्रह में समा गई।

जब भगवान् के सुख के लिए भक्ति की जाती है तो शीघ्र शरणागति भाव जागृत हो जाता है। भगवान् गीता में कहते हैं कि, भक्त जिस तरह मुझे भजता है अर्थात् याद करता है, वैसे ही मैं उसको याद करता हूँ। Action Reverse Reaction जैसी हरकत होगी वैसी ही बरकत होगी। गरीबी को लेकर सुदामा द्वारिका गये तो महल, मकान, वैभव मिल गया। नरसी भक्त का भात भर दिया, उसको भात की जरूरत थी। बिल्वमंगल ठाकुर को भगवान् की जरूरत थी तो भगवान् ने उसके अंधा होने के कारण उसका हाथ पकड़कर रास्ता दिखाया। कबीर जी को भक्ति सहित ज्ञान मिल गया। रैदास को दिव्य दृष्टि मिल गयी। तुलसीदास और वाल्मीकि को भगवद् लीलाओं का अन्तःकरण में प्रकाश हो गया तो रामायण रच दी।

जिस भाव में भगवान् को पुकारा जाता है उसी भाव में भगवान् को जबरन आना पड़ता है। भगवान् के सुख के प्रति पुकारना अति श्रेष्ठतम भक्ति पथ है। अपने सुख के लिए पुकारना भी निम्न श्रेणी की भक्ति है। न करने से तो यह भी उत्तम ही है।

आप प्रश्न कर सकते हो कि हरिनाम भगवान् के हेतु कैसे लिया जाता है ? तो ठाकुरजी बता रहे हैं कि जैसे शिशु माँ को माँ-माँ कहकर पुकारता है। जबकि वह घर के बाहर खेल में मस्त रहता है। जब माँ याद आती है, तो माँ-माँ कहकर पुकारता है। कानों में आवाज पड़ते ही सब काम-काज छोड़कर माँ बच्चे के पास भाग के आ जाती है। क्या वह घर में रह सकती है ? इसमें माँ को सुख होता है।

इसी प्रकार जब भक्त भगवान् को **हरे, राम, कृष्ण** (माँ-माँ) कहकर पुकारता है, तो भगवान्, जो वात्सल्य रस के समुद्र हैं, क्या

रह सकते हैं ? लेकिन पुकारने में भेद रहता है। अन्तःकरण में ऐसा गहराई से चिन्तन करे कि मैं भगवान् का बच्चा हूँ, भगवान् मेरे बाप हैं। सभी तो भगवान् के बच्चे हैं। मैं उनको पुकारूंगा तो वे मेरे पास अवश्य आयेंगे। ऐसी पक्की भावना हो तो शीघ्र ही शरणागति का भाव निःसन्देह जागृत हो जायेगा। इसमें भगवान् को सुख होगा क्योंकि भक्त संसारी वस्तु माँग नहीं रहा है। मुझे ही माँग रहा है। यह है नाम श्रवण का तरीका। स्वयं भगवान् प्रेरणा पूर्वक लिखवा रहे हैं। मैं 100% कुछ नहीं लिख सकता। अब आप कुछ भी समझें। अपराध मोल ले सकते हो।

भगवान् के सुख हेतु की गई भक्ति से ऊपर कोई भक्ति नहीं है। लेकिन यह भक्ति तब ही जागृत होगी जब भक्त का 100% ध्येय भगवद् प्राप्ति ही होगा। घर छोड़ने से भगवद्प्राप्ति ध्येय नहीं हुआ करता तब तो सभी ब्रह्मचारी भगवान् को प्राप्त कर लें! इनमें अन्य इच्छा अन्तःकरण में रहती है। करोड़ों में से कोई एक को भगवद्प्राप्ति करने का ध्येय होता है। सच्चे दिल से पूछकर देखे कि वास्तव में उनके मन में क्या प्राप्त करने की इच्छा है?

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

पूरी दृष्टि से देखना पड़ेगा कि ठाकुरजी के पुजारी का पहला धर्म है एक लाख हरिनाम करना। इसको समय की कमी भी नहीं है। एक लाख हरिनाम यानि 64 माला कर सकता है। क्या पुजारी करता है ?

यदि नहीं करता तो ठाकुर की अर्चन पूजा केवल कपटमयी होती है। जब हरिनाम श्रवण के अभाव में प्रेम होगा ही नहीं, तो क्या प्रेम से ठाकुर का श्रृंगार व प्रसाद अर्पण होगा ? मैंने देखा है कि, ठाकुर जी का श्रृंगार कई कई दिनों में होता है। प्रसाद को जितनी देर प्रसाद मन्दिर में रखा होगा, उतनी देर तक पुजारी को ठाकुर प्रसाद पा रहे हैं 'यह चिन्तन होना श्रेयस्कर है।'

आरती के समय दर्शनार्थी को यह मालूम नहीं रहता कि आज ठाकुर जी ने किस रंग की पोशाक पहन रखी है, क्योंकि दर्शन

अन्दर की आँखों से नहीं चर्म नेत्रों से होता है, जो स्थायी नहीं होता। जो कीर्तन नाच–नाच कर होता है, उसमें पुलक, अश्रुपात होना चाहिए, केवल पेट का खाना digest हो जाये तो भूख लग जाये! ऐसा भाव न हो। नृत्य कीर्तन में ऐसा सभी को नहीं होता परन्तु अधिकतर ऐसा ही हो रहा है। ठाकुर का दर्शन अन्तःकरण से होना चाहिए, मूक बातें भी होनी चाहिएँ तो ठाकुर का जवाब भी मिलता है।

जब तक कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम श्रवण नहीं होगा तब तक द्वापर का धर्म अर्चन–पूजन ढकोसला मात्र ही होगा। प्रथम कक्षा पास की नहीं और B.A. में बैठ गए। क्या B.A. का प्रमाण पत्र मिल जायेगा ? कितनी मूर्खता की विडम्बना है। साँप की लकीर पीटे जाओ लेकिन साँप तो हाथ से निकल गया। मैं अर्चन पूजन के विपरीत नहीं लिख रहा हूँ, अवश्य होना चाहिए।

यस्मिन् तुष्टे जगत तुष्टम्

यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

नोट– Action Reverse Reaction यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। जिस भाव से भक्त भगवान् को भजता है, भगवान् भी वैसे ही भाव से भक्त को भजते हैं। उनके सुखविधान से स्वतः ही साधक का भी सुखविधान होगा। ठाकुर का सुख विधान ही ठाकुर की शुद्धभक्ति है, वरना अशुद्ध कामभक्ति होगी। कामना पूरी हो जायेगी, परन्तु भगवान् से प्रेम नहीं होगा। शरणागति भाव नहीं आयेगा, पंचम पुरुषार्थ (भगवद्प्रेम) से वंचित रहना पड़ेगा।

नोट– किसी भी भाव का सम्बन्ध हो, दास का, सखा का, वात्सल्य का, मधुर भाव का सभी भावों में भगवान् का सुख विधान हो सकता है। नाम श्रवण करते हुए ऐसी भावना दिल में रखने से भगवान् का सुख विधान कर सकते हैं। जैसा भगवान् को भजोगे वैसा भगवान् तुमको भजेंगे। उनको सुख होगा तो स्वतः ही साधक को सुख होगा।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 9-07-2007

परमाराध्यतम महात्मा वर्ग को अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा तात्त्विक बुद्धि अर्पण करने की करबद्ध प्रार्थना।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा,

"तू समस्त धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आ जा। तेरी पूरी जिन्दगी की जिम्मेदारी मैं लेता हूँ।"

शरण में कैसे आया जाता है ? केवल संसार से पूर्ण अलगाव करके कि यहाँ सभी माया का आधिपत्य है, जो पूर्णरूप से झूठा है, अनित्य है, स्वार्थमय है, कलहकारक है, दुःखों का भण्डार है। जब यह भाव अन्तःकरण में बैठ जायेगा तो स्वतः ही सहज रूप में हरिनाम स्मरण होने लगेगा।

लेकिन यह भाव आये कैसे ? यह तब ही आयेगा जब ज्ञान दृष्टि से चारों तरफ दृष्टि डालेगा कि यहाँ कोई भी चीज या प्राणी स्थिर नहीं है। सभी काल के गाल में जा रहे हैं। अतः यहाँ पर मन को चिपकाना व्यर्थ है। मन को तो हरिनाम स्मरण में चिपकाना सर्वोत्तम होगा। तब मन एक क्षण भी कहीं नहीं जायेगा, क्योंकि पूर्ण वैराग्य अन्तःकरण में जम गया। जब तक वैराग्य नहीं होगा, तब तक असली हरिनाम स्मरण हो ही नहीं सकता। कितनी ही माला फेरते रहो कुछ उपलब्धि नहीं होगी। केवल सांसारिक लाभ जरूर होगा।

जब वैराग्य असली होगा, तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुण स्वतः ही हट जायेंगे। फिर भगवद्सेवा में और गृहस्थ धर्मपालन सेवा में कोई अन्तर नहीं होगा। जब तक उक्त दुर्गुण अन्तःकरण में रहेंगे तब तक भजन केवल कपटमय होगा। पुलक, अश्रुपातादि अष्ट सात्विक विकार को धारण नहीं कर सकेंगे।

जौं सभीत आवा सरणाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

सभीत का आशय है, संसार से वैराग्य का भाव। संसार दुःखमय दिखाई देगा तथा महसूस होगा।

अपराध व मान–प्रतिष्ठा तब ही आरोपित होगी जब वैराग्य की हृदय में कमी रहेगी। जब मन से संसार ही हट जायेगा तो उक्त भाव आ ही नहीं सकते और यदि आते हैं तो पूर्ण वैराग्य नहीं है।

अपने जीवन को भी रसमय बनाना होगा। खाने–पीने, सोने तथा विश्राम की तरफ साधक का झुकाव नहीं रहेगा। अष्टप्रहर ठाकुर की याद में ही व्यतीत होगा। कभी नाम स्मरण करने लगेगा, कभी शास्त्र अवलोकन करेगा, कभी संसार की नश्वरता पर विचार करने लगेगा, कभी विचार करेगा कि अब तक मुझे ठाकुर दर्शन क्यों नहीं हुआ ? क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मुझे ठाकुरजी से मिलायेगा ? तो वह रो पड़ेगा। भूख, प्यास जड़ से समाप्त हो जायेगी। कभी हँसेगा, कभी नृत्य करेगा, कभी मौन धारण कर एकान्त में निर्जीव सा होकर घंटों तक बैठा रहेगा। रात की नींद भाग जायेगी। चाँद को देखकर, मोर की कुहू–कुहू की आवाज सुन, बादलों की काली घटा देख आदि–आदि उद्दीपन भाव पर रीझकर अपने आप को निर्जीव सा महसूस करने लगेगा। यह है, विरही सन्त के अन्तःकरण की स्थिति।

यदि कोई इसे पकड़कर छोड़ेगा तो वह पागल सा बनकर दौड़ने लगेगा। बारम्बार हँसेगा। यह है विरही सन्त का ऊपरी लक्षण। अन्दर का लक्षण तो कोई विरला सन्त ही पहचान सकेगा।

ऐसी अवस्था वाले को भगवद्–दर्शन होता ही रहता है।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसी अवस्था कैसे आये ? यह अवस्था अधिक से अधिक हरिनाम करने पर हरिनाम ही कृपा कर के प्रदान कर देता है। अन्य साधन से कभी भी नहीं आ सकती। इसलिए साधक का ध्यान केवल मात्र हरिनाम स्मरण की तरफ ही हो।

यह अवस्था संसार से वैराग्य हुए बिना नहीं आ सकती। उक्त स्थिति के सन्त का दर्शन और वार्तालाप से तुरन्त ही दर्शक का

मन, जो संसार में ओतप्रोत रहता था, शीघ्र वैराग्य को प्रकट कर लेता है। लेकिन ऐसे सन्त के दर्शन किसी बड़े भाग्यशाली मानव को ही हुआ करते हैं, जिसकी पूर्व जन्मों की सुकृति होती है। भगवान् ही सुकृति वाले मानव को ऐसा संयोग प्रदान करते हैं।

बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं सन्ता।

लेकिन माया ऐसी प्रबल है कि महान् सन्तों को भी पैरो नीचे कुचल देती है, केवल शरणागत भक्त से ही डरती है। क्योंकि इसके पीछे भगवान् रहते हैं।

कृष्ण यदि छूटे भुक्ति मुक्ति दिया।
कभु प्रेम भक्ति ना देय राखे लुकाईया।।

भगवान् अपनी भक्ति किसी को बड़ी मुश्किल से देते हैं। संसारी वैभव, भुक्ति (भोग) आदि देने में हिचकते नहीं हैं। परन्तु अपनी भक्ति को छुपाकर रखते हैं, क्योंकि ऐसे शरणागत भक्त की पूरी जिम्मेदारी लेकर उसके पीछे-पीछे घूमते हैं, ताकि इसकी चरण-रज मुझ पर पड़ती रहे, तो मैं पवित्र बनता रहूँ।

भगवान् साफ घोषणा करके कहते हैं कि जो मेरे भक्त का बैरी होगा वह मेरा भी बैरी है।

मानत सुख भक्त सेवकाई। भक्त वैर, वैर अधिकाई।।
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।

यह लेख किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखा गया है। ऐसा गम्भीर लेख लिखने में मैं बिल्कुल सक्षम नहीं हूँ।

द्वात्रिंशदक्षरं मन्त्रं नामषोडशकान्वितम्।
प्रजपन वैष्णवो नित्यं राधाकृष्णस्थलं लभेत्।।

(पद्मपुराण से उद्धृत)

सोलह नामों से युक्त बत्तीस अक्षरों वाले 'हरे कृष्ण महामन्त्र' को नित्य जपने वाला वैष्णव, श्रीराधाकृष्ण के गोलोक धाम को प्राप्त कर लेता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चण्डीगढ़
दि. 11/09/07

परमादरणीय भक्तगण,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

हरिनाम में रुचि क्यों नहीं होती?

प्रथम- तो इसका मुख्य कारण है- संसार में आसक्ति। मन में दो प्रकार की ही आसक्ति हुआ करती है। एक आसक्ति रहती है संसारी एवं दूसरी आसक्ति होती है पारमार्थिक अर्थात् सन्तों व भगवान् से। जब एक आसक्ति विलीन हो जाती है तो दूसरी आसक्ति स्वतः ही सहज में ही अन्तःकरण में आकर भर जाती है।

दूसरा- हरिनाम में रुचि न होने का कारण है शारीरिक रुग्णता। जब शरीर में कोई भी रोग होगा तो मन का झुकाव कष्ट की ओर होगा।

तीसरा- हरिनाम में रुचि न होने का कारण है पूर्व जन्मों के संस्कार। साधुसंग के अभाव में अच्छे संस्कार जागृत नहीं होते हैं।

चौथा- हरिनाम में रुचि न होने का कारण है कुसंग- जैसे, टी. वी. अखबार तथा मोबाइल का संग। इनका संग करने से संसारी वासनाएँ जगती रहती हैं। श्रीहरिनाम का सेवन करते समय अन्तः-करण को दूषित करती रहती हैं।

पाँचवाँ- कारण है- काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष का आक्रमण-इनसे जो हरिनाम स्मरण में बाधा पड़ती रहती है, उसके कारण उक्त सभी वेग सात्विक भावों को नष्ट करते रहते है।

छठा- हरिनाम में रुचि न होने का कारण है परस्पर निन्दा करना, जिसमें साधु और भगवान् की निन्दा सुनना व कहना तो

जघन्य अपराध में आता है। ऐसे लोगों से तो बात भी नहीं करनी चाहिए। भगवान् की निन्दा का आशय है, धर्मग्रन्थों को मायिक, प्राकृत समझकर निन्दा करते रहना।

सातवाँ– हरिनाम में रुचि न होने का कारण है, ज्ञान मार्ग में भटक जाना। **ज्ञानी स्वयं को ही भगवान् कहता है। यह भक्तिमार्ग का जघन्य विरोधी है, इसमें सेवा भाव का अत्यन्त अभाव रहता है।**

ऐसे तो हरिनाम में रुचि न होने के और भी कारण है, परन्तु मुख्य कारण तो सात ही हैं। यदि इन उक्त कारणों से बचा जाये तो हरिनाम में रुचि न होने का निश्चित ही कोई कारण नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कोई भी आजमाकर देख सकता है।

अब इनसे बचा कैसे जाये ? इनसे बचने का एक ही उपाय है–

Chant Harinam Sweetly & Listen by Ears

सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहिं।।

जिसकी 4 माला उक्त प्रकार से कान से सुनकर हो जायेगी, उसकी उक्त लिखी हुई अड़चनें सहज ही में दूर हो जायेंगी।

नित्य एक लाख अर्थात् 64 माला का नियम जो ले लेगा, उसके घर पर श्रीचैतन्य महाप्रभु का वास अवश्य ही हो जायेगा। जैसा कि स्वयं महाप्रभु जी ने अपने जनों को बोला है, कि

'एक लाख नाम नित्य करो। वहाँ कलियुग का शीघ्र निष्कासन हो जायेगा। वरना उस घर में कलह होता रहेगा।'

प्रत्यक्ष में हम देख रहे हैं कि, हर घर में जहाँ हरिनाम का आविर्भाव नहीं है, वहाँ बाप–बेटे में, स्त्री–पुरुष में, भाई–भाई में आदि जगह–जगह, समाज में, गाँव में, शहर में, देश–देश में, पूरी मृत्युलोक में अर्थात् संसार में कलि महाराज के कोप का शासन चल रहा है। सभी दुःखी हैं। खान–पान, रहन–सहन सब दूषित हो गया। प्रेम का नामोनिशान मिट गया। सब जगह स्वार्थ घुस गया। पैसे के लिए गला काटा जा रहा है। कोई सुनने वाला नहीं है। पैसा

देकर बदमाशों की जीत हो जाती है। गरीब का भगवान् के अलावा कोई साथी नहीं है। सभी दुःख सागर में डूबे जा रहे हैं। अतः सतर्क होकर उचित मार्ग पकड़ो।

यह मार्ग आपको बचा सकता है। हरिनाम की 64 माला करने लगो तो यहाँ पर सत्युग का आगमन हो जायेगा। कलि कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा। हरिनाम ही जापक की रक्षा और पालन करता रहेगा। बाकी सभी चक्की में पिस जाएंगे। जापक बच जायेगा।

विचार करो, इस युग में कितना सहज, सरल मार्ग आपको जीवनयापन करने को मिला है। इस मार्ग में कहीं पर जाना भी नहीं है। घर बैठे कमाई का साधन मिल रहा है। गर्मी सताये तो पंखा चलालो, सर्दी लग रही है तो हीटर चलालो, तूफान आ रहा हो तो खिड़की दरवाजे बन्द कर लो, किसी भी तरह की दुविधा नहीं है।

कैसे भी बैठकर, जमीन पर, कुर्सी पर, पलंग पर, छत पर चलकर, सोकर, हरिनाम को कान से सुनकर जपते रहो, किसी प्रकार की अड़चन है ही नहीं एवं इसी जन्म में भगवान् से मिल लो तथा आवागमन के दारुण दुःख से छुट्टी पा लो। यदि ऐसा शुभ–अवसर मिलने पर भी हरिनाम की शरणागति नहीं कर रहे हो तो आपके समान दुर्भागा संसार में कोई नहीं होगा।

करोड़ों में से कोई एक को ही ऐसा शुभ अवसर मिलता है। फिर अन्त समय पछताना पड़ेगा। थोड़ा विचार तो करो कि क्या धनी को सुख है, गरीब को सुख है, पशु को सुख है, पक्षी को सुख है, किसको सुख है ? सभी लोग आहार, निद्रा, भय, मैथुन में ही जीवन गुजार रहे हैं। अंधे होकर जीवन बिता रहे हैं। अज्ञान की भी कोई हद है।

मनुष्य जन्म रूपी हीरा मिला था। उसे कूड़े में फेंक कर रो रहे हैं। ना समझी के कारण इस हीरे की कीमत नहीं समझ सके। जिस हीरे से भगवान् भी खरीदे जा सकते थे। भगवान् की सम्पत्ति के मालिक बन सकते थे। हाथ से अवसर निकाल दिया। अब तो न जाने कितने करोड़ों साल तक दुःख भोग करना पड़ेगा। बाहरी अज्ञान ने खूब डुबोया। अब तो भविष्य में रोना ही रोना हाथ लगेगा।

भगवान् हृदय में कैसे प्रकट होते हैं?

सुमरिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

शिववचन

कान और मन को संलग्न कर हरिनाम करना चाहिए। नाम करते करते कुछ दिनों बाद भगवद् स्वरूप अन्तःकरण में अपने आप प्रकट हो जायेगा। श्रीगुरुदेव जी ने हरिनाम रूपी बीज कान रूपी पाईप में डाला, यह बीज अन्तःकरण रूपी जमीन में जा गिरा। अब जापक इसको बार-बार जप रूपी पानी देगा, तो जिसका जैसा पिछले जन्मों का संस्कार होगा उसी संस्कार के प्रेशर से अधिक व कम दिनों में हरिनाम रूपी बीज अंकुरित हो जायेगा। उस अंकुरित बीज से श्रीकृष्ण रूपी पौधा बाहर निकलेगा, जिसको साधक (जापक) देख कर आनन्दसिंधु में तैरने लगेगा। तैरने से उसे प्रेम रूपी रस का स्वाद आने लगेगा एवं मस्ती में रमण करता रहेगा।

हरिनाम रूपी बीज में अनन्त वेद-शास्त्र, पुराण ओत-प्रोत रहते हैं परन्तु साधक जब जप स्मरण रूपी पानी देता रहेगा तो एक दिन ये शास्त्र उसके अन्तःकरण में प्रकट हो जायेंगे। जैसा गीता कहती है, बुद्धियोग का आविर्भाव होगा। ददामि बुद्धियोगं...

जिस प्रकार बड़ या पीपल का बीज, जो राई से भी छोटा होता है, वह जमीन में बोने से और पानी देने से अंकुरित होकर फिर कुछ दिनों व महिने के बाद एक विशाल वृक्ष का रूप बनकर सबको अपनी छाया व फल देकर उपकार करता रहता है। इस बीज में वृक्ष छिपा हुआ रहता है। इसी प्रकार हरिनाम बीज में श्रीकृष्ण का रूप, गुण, लीला तथा धाम समाहित रहते हैं। स्मरणपूर्वक अभ्यास करने पर प्रकट हो पड़ते हैं। **अतः निष्कर्ष यह हुआ कि जापक नाम जपते हुए भगवान् का स्वरूप देखने का प्रयास न करे। स्वतः ही जपते-जपते स्वरूप सहित सभी लीला, गुण स्फुरित होने लगेंगे।** बड़ के बीज में जैसे पेड़ दिखाई नहीं देता इसी प्रकार हरिनाम में श्रीकृष्ण दिखाई नहीं देते। हरिनाम जपने से समय पाकर निश्चित ही दिखाई देंगे।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चण्डीगढ़
दि. 12/9/2007

परमश्रद्धेय परमआदरणीय भक्तगण,

अधमाधम दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

हरिनाम में से भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रकट हो जाते हैं ?

संसार का उदाहरण देकर इसको भक्तगण बहुत अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। बड़ का बीज या पीपल वृक्ष का बीज राई से भी छोटा होता है। क्या इसमें बड़ दिखाई देता है ? आप बोलोगे, नहीं!

मैं कहूँगा मुझे दिख रहा है। आप बोलोगे, 'बिल्कुल झूठ बोल रहे हो।' मैं खड्डा खोदकर बीज को खड्डे में गाड़ दूँगा और पानी से खड्डे को भर दूँगा। कुछ दिन बाद उसमें अंकुर प्रकट हो जायेगा तथा एक माह में पत्ते, टहनियाँ आ जायेंगी। एक साल में विशाल आकार लिए हुए पत्ते, फूल, फल से पेड़ लद जायेगा। फिर आपको लाकर दिखाऊँगा कि देखो मैं झूठ नहीं कह रहा था, अब देखो इस नन्हें से बीज में यह विशाल वृक्ष जो छिपा हुआ था प्रकट हो गया, तब आपको पूर्ण विश्वास हो जायेगा कि वास्तव में बात सत्य ही है।

दूसरा उदाहरण, राम शब्द में राम की आकृति रूप दिखाई देती है ? आप कहोगे, 'नहीं।' मैं कहूँगा, 'मुझे तो दिखाई देती है।' आप कहोगे, 'बिल्कुल झूठ बोल रहे हो।' 'मैं कहूँगा, 'अब मैं तुमको दिखाता हूँ, देखना इस शब्द में राम प्रकट होगा।

मैं राम को पुकारूँगा, राम-राम, तो राम शीघ्र आकर खड़ा हो जायेगा। राम कहाँ से प्रकट हुआ ? शब्द से। अब मैंने तो उसे बुला लिया परन्तु मुख फेरकर मैं बैठ गया, तो वह नाराज होकर चला

जायेगा। वह सोचेगा कि इन्होंने मुझे बुलाया और मेरी ओर नजर भी नहीं की।

इसी प्रकार कान और मन को संलग्न कर हरिनाम उच्चारण करना पड़ेगा। तो नाम में से कृष्ण प्रकट हो जायेंगे। कृष्ण तो प्रकट हो गये परन्तु, आपका मन बाजार में चला गया तो कृष्ण मन में विचार करेंगे कि बड़ा बेवकूफ है, मुझे बुला तो लिया और आप चले बाजार में तो मैं अब क्यों रहूँ? मैं भी यहाँ से चला जाता हूँ।

इस प्रकार के नाम जप से केवल सुकृति इकट्ठी होगी जो सांसारिक लाभ करा देगी। भगवद् प्रेम प्राप्त नहीं होगा क्योंकि इस नाम में आदर नहीं है। अवहेलना पूर्वक नाम लिया गया है।

श्रीगुरुदेव जी ने हरिनाम बीज कान रूपी पाइप में डाला, यह हरिनाम बीज अन्तःकरण रूपी जमीन में जा गिरा, अब साधक (माली) ने उसमें उच्चारण रूपी जल सींचा नहीं तो बीज नष्ट हो जायेगा। जब इस बीज को बारम्बार जप रूपी जल से सींचा जायेगा तो इसमें से अंकुर रूपी कृष्ण प्रकट हो जायेंगे। यह अंकुर तना, शाखा, परशाखा, पत्ते, फूल, फल रूपी रूप, गुण, लीला, धाम में स्फुरित हो जायेगा। अतः लिखा है–

शिव वचन–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

नाम कान और मन को सटाकर (संलग्न कर) लेते रहो, एक दिन भगवद् रूप, गुण, लीला आदि स्वतः ही प्रकट हो जायेंगे।

एक लाख नाम तो प्रत्येक गृहस्थी, ब्रह्मचारी, संन्यासी को जपना परमावश्यक है, तब ही कुछ उपलब्धि हो सकेगी। वरना व्यर्थ का परिश्रम समझें। भगवद् सेवा भी नीरसमयी होगी।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभू अनुगामी।।

शिववचन– प्रभु श्रीराम जी अपने राम नाम का ही अनुगमन करते हैं, अर्थात् नाम लेते ही नाम के पीछे दौड़े आते है।

जब मायिक व्यक्ति ही नाम लेने पर प्रकट हो जाता है, तो भगवान् तो हर जगह हर समय मौजूद रहते हैं। शीघ्र ही नाम लेते ही प्रकट हो जाते हैं।

70 साल की आयु के उपरान्त भक्त को हरिनाम के ही आश्रित रहकर अपना जीवन व्यतीत करना Most Essential है। मठ में रहो या घर में रहो, एकान्त में वास कर अधिक से अधिक 1 लाख से 3 लाख तक हरिनाम स्मरण ही भगवद्चरणों में पहुँचा कर पंचम पुरुषार्थ प्रेमावस्था उदय करा देता है तथा अष्ट–सात्त्विक विकार शरीर पर दृष्टिगोचर होने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में भक्त क्षण–क्षण में विरहसागर में परमानन्द से तैरता रहता है। केवल भगवद् चिन्तन के अलावा उसे कुछ भी अनुभव में नहीं आता।

उक्त स्थिति का भक्त प्रवर अन्य भक्तों पर अपने दर्शन और वार्तालाप से अपना पूरा प्रभाव डाल देता है। उसके द्वारा संसारी प्राणी का निश्चित ही उद्धार हो जाता है। उसकी आकर्षण शक्ति दूर तक प्रभाव करती रहती है।

सभी गुरुवर्ग जो वृद्धावस्था में पहुँच गए हैं, उन्हें एकान्त में कुटी बनाकर विश्राम करते हुए अष्टयाम हरिनाम की माला करते हम देख रहे हैं। श्रीप्रमोदपुरी महाराज, श्रीभक्ति विज्ञान भारती महाराज, श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज, श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज आदि अपनी माला झोली में हाथ डालकर हरिनाम करते रहते हैं।

हे ब्रह्मचारी गणो! यह ऐसी अवस्था तब ही उपलब्ध हो सकेगी जब किशोर या युवा अवस्था से हरिनाम की 64 माला स्मरण करने लगोगे। यदि ऐसी स्थिति अभी से नहीं होने लगेगी तो वृद्धावस्था में हरिनाम स्मरण होना निश्चित ही असम्भव होगा।

ब्रह्ममुहूर्त में अर्थात् ढाई–तीन बजे उठकर शौचक्रिया या हाथ मुँह धोकर अपनी जपमाला पर हरिनाम आरम्भ करना होगा। 8 बजे तक आरती, भावमय दर्शन, पाठ, कीर्तन करना होगा।

अब यदि 9 बजे ठाकुरजी का शयन हो जाये तो 10 बजे तक सभी ब्रह्मचारी गण शयन कर सकते हैं एवं 5 घंटे सो कर ब्रह्ममूहुर्त में 3 बजे जगकर एक लाख हरिनाम अर्थात 64 माला सरलता से कर सकते हैं। मठ शान्तिमय हो सकता है। मठ की सेवा भी सरसमयी हो सकती है। हरिनाम के अभाव में सेवा भाव नीरस रहता है, जिसको बोलो कि, यह सेवा आपको करनी है, तो उस पर वज्र सा गिर जाता है। बेमन की सेवा क्या सरसमयी हो सकती है ?

कई मठों में 9 बजे ठाकुर जी को शयन हो जाता है। तो ब्रह्मचारी गण को पूरी नींद का लाभ मिल जाता है। युवकों को 6 घंटे नींद लेना परमावश्यक है वरना भजन को सुस्ती दबा लेती है। 5 घंटे रात में सोना एवं दोपहर में 11 बजे ठाकुरजी को शयन कराने से सभी साधक 5 बजे तक माला करें, 2 घंटे सो भी सकते हैं। जयपुर में श्रीराधा–गोविन्द मन्दिर में ऐसा ही होता है।

मठ केवल मात्र भजन के हेतु स्थान बना है। यहाँ पर भजन न होकर भोजन होता रहे तो कलि महाराज का आवागमन होता रहेगा। झगड़ा फसाद होता रहेगा। सेवा भाव का अभाव होगा। जो सेवा होगी वह अवहेलनापूर्वक होगी।

यदि ठाकुरजी का वर्तमान का नियम बदल दिया जाये तो मठ में सुख का विस्तार फैल जाये। इसमें भोजन भण्डारी की सहायता करना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि समय पर अमणिया तैयार हो जाये तो ठाकुरजी का भोग जल्दी समय पर लग जाये, तो सभी को सहज ही में सुविधा हो जाये।

सभी के लिए एक लाख हरिनाम सरलता से हो सकता है।

अभ्यास से 64 माला (एक लाख नामजप) 3½ घंटे में ही हो जाता है।

8 घंटे–दफ्तर का,

2 घंटे–आने जाने में।

5 घंटे सोना–रात्रि 10 से 3 बजे तक।

2 घंटे–शौच–स्नान–प्रसाद

5 घंटे–हरिनाम जप

2 घंटे–Extra फिर भी बचते हैं जो बच्चों को पढ़ा सकते हो।

उक्त प्रेरणा ठाकुरजी से मिली है, यदि इसे सब सत्य मानें तो शीघ्र आदेश का पालन होना श्रेयस्कर होगा।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 6.16–17)

हे अर्जुन! जो अधिक खाता है अथवा अत्यन्त कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता, वह योगी नहीं बन सकता। जो खाने, सोने, आमोद–प्रमोद (आहार– विहार) तथा काम करने की आदतों में यथायोग्य रहता है वह योगाभ्यास द्वारा समस्त सांसारिक क्लेशों को नष्ट कर सकता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 13/10/07

परमश्रद्धेय भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का श्रीचरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

हरिनाम का अद्भुत अकथनीय प्रभाव

चहु जुग चहु श्रुति नाम प्रभावा। कलि विशेष नहि आन उपावा।।
कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

नामनिष्ठ को अन्त समय में स्वयं भगवान् लेने आते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर।

नामापराध तथा मान-प्रतिष्ठा से बचकर नाम को कान से सुनकर करने पर नाम का अवर्णनीय प्रभाव होता है।

मेरे माध्यम से ठाकुर जी की प्रेरणा से श्रीगुरुदेव के आदेशानुसार निम्न प्रभाव हरिनाम से 99% गारंटी से होता है। सन्तों के चरणों में मानसिक रूप से बैठकर साधक यदि सन्तों को नाम सुनाता रहे तो सन्तों का आशीर्वाद प्राप्त होगा तथा भगवान् की साक्षात् कृपा लाभ होगी। आजमाकर देख सकते हो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

- एक करोड़ जप से सुस्ती जावे।
- दो करोड़ जप से रोग न आवे।
- तीन करोड़ जप से मन लग जावे।
- चार करोड़ जप से विरह हो जावे।

- पाँच करोड़ जप से मन अकुलावे।
- छः करोड़ जप से नींद भाग जावे।
- सात करोड़ जप से परमानन्द पावे।
- आठ करोड़ जप से दुर्गुण भाग जावे।
- नौ करोड़ जप से सद्‌गुण आवे।
- दस करोड़ जप से भाव उपजावे।
- ग्यारह करोड़ जप से सम्बन्ध बन जावे।
- बारह करोड़ जप से प्रेम उपजावे।
- तेरह करोड़ जप से दर्शन पावे।
- चौदह करोड़ जप से आवागमन मिट जावे।
- पन्द्रह करोड़ जप से गोलोक पठावे।
- सोलह करोड़ जप से सेवा पावे।
- सतरह करोड़ जप से अमर हो जावे।

उक्त अवस्थाएँ कलियुग में इससे भी शीघ्र आ सकती हैं। भगवान् समय को नहीं देखते, भक्त की तीव्रता को देखते हैं। भगवान् काल के वश में नहीं हैं। भक्त के वश में हैं। यह अनुभव की बात है, विरही को नींद कब आती है! बार-बार उद्दीपन भाव भक्त को सताते रहते हैं। तब नींद कहाँ?

जब हरिनाम मन से अर्थात् ध्यान से होता है तो जप में समय भी कम लगता है। नये जापक को 7-8 घंटे एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला में लग जाते हैं। जब प्रेम से, ध्यान से होने लगता है, तो 64 माला 4 या 3½ घंटे से भी कम समय में होने लग जाती है। अतः डरने की कोई बात नहीं है। उत्साहपूर्वक हरिनाम करने पर समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक कामनाएँ सहज ही में पूर्ण हो जाती हैं। इसमें 1% भी शक नहीं है।

जब उक्त स्थिति आ जाती है, तो समझो उसे अखिल अनन्त ब्रह्माण्डों का आधिपत्य मिल गया। अनन्त जन्मों के दारुण दुखड़े से पिण्ड छूट गया, जब तक शरीर में रुग्णता नहीं हो तब तक यह कमाई कर लेना, परमानन्द की बात होगी।

समय बड़ी तेजी से गुजर रहा है, अब भी सब कुछ हासिल कर सकते हो वरना अनन्त काल तक रोना पड़ेगा। कोई किसी का नहीं है, केवल भगवान् ही अपना है, जो अहैतुकी कृपा करता रहता है। सभी स्वार्थ के वश सम्बन्ध रखते हैं। मर जाने पर कोई किसी को याद तक नहीं करता।

भगवान् तो असीम दयालु हैं ही, स्वयं भी दयालु बन जाओ। भगवान् को हरिनाम स्मरण द्वारा याद करते रहो, यही स्वयं पर दया की कुंजी है।

इस समय भगवान् अपने ग्राहकों की कमी देखकर सुस्त रहते हैं। जो उनका ग्राहक है, उसे वह शीघ्र ही अपनी शरणागति में शामिल कर लेते हैं। शरणागति फौज कम रहने से भगवान् का मन लगता नहीं है। करोड़ों, अरबों मनुष्यों में कोई एक इस फौज में भर्ती होता है। अब भगवान् किस पर शासन करें। अतः सुस्त बैठे रहते हैं।

पहले तो हजारों सालों में भगवान् भक्त को दर्शन देते थे, वे कलियुग में 24 घंटे में दर्शन दे देते हैं। परन्तु, भगवान् को कोई हृदय से पुकारता भी तो नहीं है। अन्तःकरण में तो संसारी गन्दगी भरी पड़ी है। भगवान् कहाँ आकर बैठे ? आते हैं पुकारने पर, परन्तु जगह नहीं होने से चले जाते हैं। उनको तो स्वच्छ हृदय मंदिर चाहिए, जहाँ पर विश्राम कर सकें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

शास्त्रों के अनुसार सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों वाला यह हरिनाम कलियुग का महामन्त्र है। यह महामन्त्र कलियुग में जीवों का उद्धार करने में सबसे प्रभावशाली मन्त्र है। 'कृष्ण' नाम को छोड़कर दुर्जनों के द्वारा परिकल्पित, छन्दोबद्ध, सुसिद्धान्त विरुद्ध, रसाभास दोषयुक्त पदों तथा मन्त्रों का कदापि जप या कीर्तन नहीं करना चाहिये। आदि गुरु ब्रह्मा ने कलि सन्तरण आदि श्रुतियों के माध्यम से इस तारक ब्रह्म हरिनाम को प्राप्त किया था। पुनः ब्रह्मा के द्वारा श्रुति परम्परा से उनके शिष्य परम बुद्धिमान श्रीनारद गोस्वामी ने इस महामन्त्र को प्राप्त किया था। जो लोग इस महामन्त्र को छोड़कर दूसरों के द्वारा कल्पित पदको महामन्त्र मानकर करते है, वे शास्त्र और गुरु के उल्लंघनकारी हैं।

(अनन्तसंहिता)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 26/09/07

समस्त भक्तगणों के युगल चरण कमल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा एक लाख हरिनाम करने की करबद्ध प्रार्थना एवं भक्ति स्तर बढ़ने का आग्रह।

महाप्रभु गौर हरि का एक लाख हरिनाम जपने का आदेश

महाप्रभु को प्रत्येक पार्षद अपने घर पर प्रसाद पाने का आग्रह किया करते थे, तो महाप्रभुजी ने उनसे बोला कि जो सज्जन नित्य एक लाख हरिनाम करता रहेगा उसके यहाँ घर पर प्रसाद पा सकता हूँ। वैसे उन्होंने कहा, 'जो लखपति होगा उसके घर पर प्रसाद पा सकता हूँ, तो सभी भक्तजन बोले, प्रभुजी हम तो हजार पति भी नहीं हैं, हम आपको प्रसाद कैसे पवा सकते हैं ?'

भगवान् गौरहरि बोले, 'आप समझे नहीं, मेरे कहने का आशय है, जो नित्य एक लाख (64 माला) हरिनाम जप करेगा उसके घर पर प्रसाद पा सकता हूँ।' भक्तगण बोले, '64 माला में तो हमारा मन लगातार कैसे लग सकता है ?' महाप्रभु जी बोले, 'इसकी चिंता मत करो, इसकी चिंता हरिनाम करेगा। धीरे-धीरे नाम में आनन्द आने लगेगा, तो निम्न कोटि का, जो झूठा और मायिक आनन्द है, जो आनन्द की श्रेणी में आता ही नहीं है, केवल महसूस होता है वह वास्तविक आनन्द नहीं है तब स्वतः ही हरिनाम जपने पर जो आनन्द आयेगा तो मायिक आनन्द छूटता जायेगा।'

धीरे धीरे रे मना बाद में सबकुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आवे फल होय।।
बिबसहूँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहि।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। कोटि जन्म अध नासहूँ तबहि।।

सन्मुख का आशय है, जब श्रीगुरुदेव हरिनाम की दीक्षा देकर चले जाते हैं, तो गुरु–शरणागत शिष्य को हरिनाम की 64 माला का जप करते रहना ही सम्मुख होना है। जब अनचाहे बिना मन से भी हरिनाम जिसके मुख से निकल जाये तो उसके जो रचे–पचे अनेक जन्मों के पाप हैं, वह जल जाते हैं, तो जो साधक प्रेम से हरिनाम करने लगेगा, तो उसको क्या प्राप्ति हो सकती है? अकथनीय है!

गुरुदेव का 1966 में आदेश–

Chant Harinam Sweetly And Listen by Ear

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

(शिववचन)

जो प्रेम से हरिनाम करता है, उसमें अष्ट सात्त्विक विकार, पुलक, अश्रुपात आदि उदय होने लग जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि, प्रेम से कैसे जपना होता है? ये कान से सुनकर, भक्त शिरोमणि के चरणों में (प्रत्यक्ष तथा मानसिक रूप से) बैठकर, भगवान् के पार्षदों की सिफारिश करवाकर सहज ही में हो सकता है। Detail तो आमने सामने चर्चा होकर ही clear किया जा सकता है। जब अवसर मिलेगा तब सेवा कर सकूँगा।
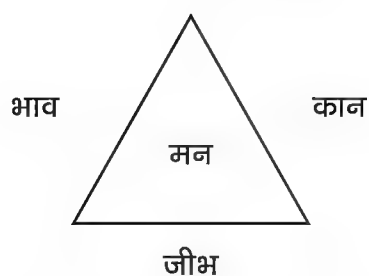
जीभ से उच्चारण हो, कान से सुनना हो, भगवान् की कृपा का भाव हो। तब शीघ्र ही अष्ट सात्त्विक विकार प्रकट होने लग जाते हैं। जब उक्त दशा होने लग जाती है, तो समझना होगा कि जो

गीता का प्राण है शरणागति, उसका उदय हो जाता है। शरणागत को भगवान् एक क्षण के लिए भी छोड़ते नहीं हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.22)

जो लोग अनन्यभाव से मेरे दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए निरन्तर मेरा भजन करते हैं, उनकी जो आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हें मैं पूरा करता हूँ और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूँ। इस प्रकार मैं मेरे भक्तों का लौकिक तथा पारलौकिक भार वहन करता हूँ।

शरणागत की पूरी जिम्मेदारी भगवान् लेते रहते हैं। जो कमी है वह पूरी करते हैं और जो उसके पास है उसकी देखभाल व रक्षा करते हैं।

शरणागति का भाव तब ही उदय होगा जब संसार से अलगाव होगा। जब तक संसार अन्तःकरण में रमा रहेगा तब तक शरणागति का भाव लोप रहेगा। हरिनाम स्मरण से ही सभी कुछ उदय हो जाता है। कोई भी आजमाकर देख सकता है, इसमें 1% भी कमी नहीं है।

मथुरा के भक्त दम्पत्ति का एक ही दिन में, 64 माला करने पर उनका दसों अंगुलियों का असह्य दर्द समाप्त हो गया। लगभग दस दिन पीछे की ही चर्चा है, कोई भी मालूम कर सकता है।

मैं लॅबोरेटरी में बैठा रहता हूँ और मेरे गुरुदेव प्रयोग करके दिखाते रहते हैं। मेरा इसमें कोई ज्ञान नहीं है। यह है 3 लाख हरिनाम का प्रभाव, जो नित्य श्रीगुरुदेव जी के आदेश के पालन का अनुशीलन है।

जहाँ कलि का धर्म हरिनाम नहीं होता वहाँ कलि महाराज कलह करवाते रहते हैं। घर-घर में, समाज में, गाँव में, शहर में, देश में, सम्पूर्ण पृथ्वी लोक में, कहाँ कलह नहीं है ? जहाँ हरिनाम

है, वहाँ कलि महाराज जा नहीं सकते क्योंकि वहाँ जाने पर जलकर भस्म हो जाते हैं।

चण्डीगढ़ शहर में बहुत से भक्त 64 माला करने लगे हैं, उनको काफी फायदे होते देखे गये हैं। सभी को करना चाहिए। घर बैठे सभी सुविधाऐं, पंखा, हीटर आदि उपलब्ध हैं। कहीं भी बैठकर हरिनाम कर सकते हैं। भारत में जन्म, अच्छे कुल में, अच्छे पड़ोस में, सत्संग आदि मिलने पर भी जो समय का लाभ नहीं लेता उसे घोर क्लेश उठाना पड़ेगा। हरिनाम से न जाने कितने अकथनीय असम्भव लाभ होते देखे गये हैं। कोई भी आजमाकर देख सकता है। 10 नामापराध तथा मान-प्रतिष्ठा से बचना परमावश्यक है। वरना कुछ मिलेगा नहीं। 64 माला करने वाले के घर में महाप्रभु 24 घंटे रहते हैं। वहीं पर खाना-पीना विश्राम आदि करते रहते हैं। जहाँ भगवान् का हर वक्त रहन सहन हो, क्या वहाँ अमंगल हो सकता है ? वहाँ तो अमंगल की जड़ ही कट जाती है।

मन लगने के उपाय-

(1) ब्रह्ममुहूर्त में उठकर कान और मन को सटाकर (संलग्न कर) हरिनाम करना।

(2) शाम को सूक्ष्म रूप में प्रसाद सेवन करना। वरना आलस्य का प्रकोप होता है।

(3) प्रसाद सेवन करते हुए हरिनाम जप करते रहना ताकि सात्त्विक धारा चल सके। **जैसा अन्न वैसा मन**। पानी भी हरिनाम जपते हुए पिया जाये तो चरणामृत बन जाता है। **जैसा पानी वैसी वाणी।**

(4) रात में सोते समय हरिनाम जपते हुए सोये। ताकि रातभर Circulation चलता रहे।

(5) T.V., अखबार व मोबाइल से दूर रहे। आवश्यक होने पर मोबाइल 10% काम में ले सकते हो।

(6) 64 माला नित्य हरिनाम स्मरण करते रहें। ताकि समय ही न मिल सके।

(7) ग्राम्य-चर्चा (प्रजल्प) से दूर रहे। 64 माला जप से स्वतः ही बरबादी करने का समय मिलेगा ही नहीं।

(8) संयम से जीवनयापन करे। काम-क्रोध सात्विक भाव रस को जला देता है।

(9) दम्पत्ति आपस में झगड़े नहीं, अपराध होगा। लक्ष्मी, रिद्धि-सिद्धि नहीं रहेगी। फिर भजन रसमय बनना तो बहुत दूर की बात है।

(10) सन्त, महात्माओं से प्यार का सम्बन्ध बनाये रखें, ताकि ठाकुर की आप पर दृष्टि हो।

(11) मंदिर में भाव नेत्रों से ठाकुर दर्शन करें, जड़ आँखों से दर्शन होता ही नहीं।

(12) मान-प्रतिष्ठा तथा 10 नामापराध से बचें। Most Essential है।

(13) हरिनाम कान से सुनकर करें।

(14) अश्रु-पुलक न होने पर पश्चाताप करें।

(15) सभी काम भगवान् का समझकर करें। Service (नौकरी) भी भगवान् की ही है।

(16) उद्देश्य केवल मात्र भगवद् प्राप्ति ही हो। घर-बार सब भगवान् का ही समझें।

उक्त प्रकार से सावधानी रखकर 64 माला करते रहे तो उस घर में श्री गौरहरि का हर दम वास रहेगा। वहाँ अमंगल की जड़ ही उखड़ जायेगी। जैसा कि देखने में आ रहा है।

इतने सालों से हरिनाम जप हो रहा है, परन्तु कुछ लाभ नहीं दिख रहा है, क्या कारण है? केवल उक्त लिखा कारण ही है। आजमाकर देख सकते हो। नहीं तो बोलो। प्रत्यक्ष को प्रमाण की

आवश्यकता नहीं होती। शक्ति रहते कमाई करना, नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलने वाला। जब भी होगा तो अरब देशों में हो जायेगा, जहाँ पर भगवान् की भक्ति का नामोनिशान ही नहीं है। गलत प्रचार में मानव भटक रहा है।

कलियुग का समय सब युगों में सर्वोत्तम है, जहाँ कुछ करना ही नहीं पड़ता। घर बैठे हरिनाम करो एवं सुख का जीवन जीओ। भगवान् की गोद में प्राणी जब तक नहीं जाता, तब तक प्राणी दारुण दुःखों में जलता रहता है। संसार में सुख दिखता है, लेकिन है नहीं। धनी दुःखी, गरीब दुःखी, पुत्रवाला दुःखी, न पुत्रवाला भी दुःखी। कोई सुखी है ही नहीं। सुखी वही है, जो सन्तोषी है। जैसा भगवान् ने अपने कर्मों के अनुसार दे दिया, उसी को पाकर जो सन्तोष करता है वही परमसुखी है, आशा ही परम दुःख का कारण है।

सुख की स्थिति केवल मात्र हरिनाम स्मरण से ही आती है। अन्य कोई भी कलिकाल में दूसरा साधन नहीं है।

जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।(जीभ)
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।

यह लेख मैंने नहीं लिखा, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखवाया गया है। अल्पज्ञ मानव क्या उक्त प्रभावशाली लेख लिखने में सक्षम हो सकता है? कदापि नहीं। इति

नोट– 64 माला जप से असम्भव सम्भव होता देखा गया है। आजमाकर देखना चाहिए। लेकिन माला कान से सुनकर करे। मान–प्रतिष्ठा व नामापराध से बचकर हो। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 28/09/2007

परमादरणीय भक्त प्रवर,

आपके चरणारविन्द में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

हरिनाम का अकथनीय प्रभाव

चारों युगों में ही हरिनाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग में तो विशेषकर हरिनाम ही स्मरण करने का साधन है, जिसके द्वारा भगवद् शरणागति अल्पकाल में सहज में ही प्राप्त हो जाती है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।
बिबसहुँ जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।

(शिववचन)

भूल से भी यदि हरिनाम मुख से निकल जाये, तो अनेक जन्मों के रचे-पचे पाप जलकर राख हो जाते हैं।

एक ही नाम सर्व पाप क्षय कर देता है, श्रीगौरहरि की घोषणा है।

'एक नाम करें सर्वपाप क्षय'

(चै. चरितामृत.)

नाम प्रसाद शिम्भू अवनाशी। साज अमंगल मंगल रासी।।
नाम प्रभाव जान शिवनी को। कालकूट फल दीन अमी को।।

शिवजी ने हरिनाम का महत्त्व जाना है।

जिनका नाम लेत जग माहि। सकल अमंगल मूल नशाहि।।
नाम सप्रेम जपत अनियासा। भक्त होय गुरु मंगल वासा।।
जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा।।
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भवबंधन काटहि नर ज्ञानी।।

गुरुदेव वचन–

Chant Harinam Sweetly And Listen By Ear

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

शास्त्रों में अनेक हरिनाम जपने के उदाहरण हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। अतः मनुष्य जन्म का लाभ लेना हो तो नित्य एक लाख (64 माला) हरिनाम स्मरण करना चाहिए। जैसा कि महाप्रभु जी ने अपने भक्तों को आदेश दिया है। जो एक लाख नाम जपेगा मैं उस घर को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। जिस घर में भगवान् का वास हो वहाँ अमंगल की जड़ ही कट जाती है। इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है ?

लेकिन माया मोहित मानव की आँखें बन्द रहने से सुअवसर हाथ से निकल जाता है फिर वही चौरासी लक्ष योनी में से भटकना पड़ता है, फिर मानव जन्म कब मिलेगा कोई पता नहीं।

भारत में जन्म मिला, सुस्थान मिला, शुभ पड़ोस मिला, शुभ कुल मिला, माता–पिता भक्त मिले, सद्‌गुरुदेव की कृपा मिली, सच्चा सत्संग मिल गया, रहन–सहन, खानपान, मकान, जायदाद मुफ्त में मिल गयी। सब सुविधाऐं मिलने पर भी हरिनाम की शरण नहीं हुई तो इससे बड़ा नुकसान क्या हो सकता है ?

भगवान् कह रहे हैं–

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्‌गद् गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

भक्त जैसा मुझे भजता है, वैसे ही मैं भी भक्त को भजता हूँ। भक्त मेरे लिए अश्रु बहाता है तो मैं भक्त के लिए लगातार अश्रु बहाता हूँ। क्योंकि वह मेरी गोद से अनेक युग काल से बिछुड़ा हुआ है, लेकिन वह इतना माया मोहित है कि मेरी ओर झांकता भी नहीं है।

सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहि।।

मेरे सामने तो आये, तो मैं फौरन उसके पापकर्म समाप्त कर दूँ। बार-बार मनुष्य जन्म देता रहता हूँ, परन्तु, जीव बारबार माया में फँस जाता है।

मानव जन्म मोक्ष का द्वार है, फिर भी मानव इस द्वार में घुसना नहीं चाहता। सन्त कृपा बिना यह द्वार बन्द ही रहता है। जब भगवान् हरि इसके पास सन्त भेजते हैं, तो अभागा मानव उनकी तरफ से आँख मींच लेता है। सन्त कहते हैं, संसार में सुख नहीं है। यह संसार दुःख सागर है। सुख दीखता है, परन्तु यह तेरा भ्रम है। सुख तो भगवद्नाम में है, जो तू नाम को अपनाता ही नहीं है। यह तेरी बड़ी भूल है।

संसार में सभी स्वार्थी हैं। निस्वार्थी, अहैतुक प्रेमी तेरा भगवान् ही है। उस भगवान् से नाता जोड़ ले तो तेरा अनन्त काल का दुःख सदा के लिए मिट जाये। जिनको तू पालता-पोसता है वही तेरे वृद्ध होने पर लात मारेंगे। मरने के बाद एक दिन में भूल जायेंगे।

इन दुःखों का अन्त नहीं होगा, अब भी वैराग्य धारण कर, अपने प्रभु को अपना बना लो। सदा सुख की नींद सोयेगा। श्मशान में तेरा बेटा ही तेरे सिर पर लाठी मारेगा, तू राख का ढेर हो जायेगा जिस पर जंगली जानवर मल-मूत्र करेंगे। रोता हुआ आया था, रोता हुआ जायेगा। क्या साथ लाया था, क्या साथ ले जायेगा ? नरक में दुःख पायेगा, फिर कीट, वृक्ष बन जायेगा। सर्दी, गर्मी, बरसात का ताप तुझे सताएगा। फिर भी चेत न आयेगा। फिर मिट्टी में मिल जायेगा।

कलियुग में कितना सरल साधन है, गर्मी लगे तो पंखा चला लो, सर्दी में हीटर, बरसात में घर। सहज में ही भगवद्प्राप्ति हो जायेगी। भूल कर पछतायेगा, फिर अवसर नहीं आयेगा। अभ्यास करने पर हरिनाम में मन लग जाता है। मन ही नरक ले जायेगा तथा मन ही ठाकुर कृपा करायेगा। परीक्षार्थी 3 घंटे मन कैसे लगा लेता है ? हरिनाम में महत्त्व नहीं दिखता। इससे बड़ा कोई लाभ है ही नहीं।

10

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3/10/2007

परमादरणीय प्रेमास्पद भक्त शिरोमणि, हितेश जी, श्रीचैतन्यचरण दास जौहर जी तथा धर्मपालजी,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना तथा सप्रेम हरिस्मरण।

संबंध ज्ञान बिना ठाकुर प्रेम शिथिलतापूर्ण

इस जगत् में जिससे सम्बंध होता है, उसी से मायिक प्रेम हो जाता है, उसके सुख दुःख में हम भी सुख दुःख महसूस करते हैं लेकिन यह प्रेम स्वार्थमय होता है। थोड़ी बहुत अन-बन होने से यह मायिक होने की वजह से शीघ्र टूट जाता है।

भगवान् का जो सम्बंध बन जाता है वह चिन्मय व अलौकिक होने से कभी भी टूटता नहीं है, कोई कितना भी तोड़ना चाहे, वह सम्बंध निरन्तर चलता ही रहता है। यह सम्बंध अपनी मर्जी से नहीं हो सकता, हरिनाम स्मरण करते-करते स्वतः ही अन्तःकरण में उदय हो जाता है।

जो अपनी शक्ति से प्रेम जोड़ता है, वह स्थिर नहीं रहता, डगमगाता रहता है तथा प्रेमावस्था छाया मात्र रहती है। एक दिन वह प्रेम गायब भी हो जाता है। नामनिष्ठ का प्रेम स्थायी होता है तथा अन्तिम सांस शरीर से निकलते समय भगवान् उसे लेने स्वयं आते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नामनिष्ठ श्रीहरिदास ठाकुर जी पर पूर्णरूप से लागू होता है। जब हरिदासजी के प्राण शरीर से निकलने लगे तब श्रीगौरहरि ने शीघ्र ही उन्हें अपनी गोद में उठाकर अश्रुधारा से नामनिष्ठ को नहला दिया। भगवान् को प्राप्त करने का कलियुग का धर्म-कर्म हरिनाम है, यह निश्चित किया है। केवल

हरिनाम ही सर्वोत्तम भक्ति है, उसे किसी जीव ने अपनाकर निभाया तो भगवान् उस शरणागत को कैसे त्याग सकते हैं, स्वयं आकर अपने धाम में ले जाकर उसका धूमधाम से स्वागत करते हैं तथा करवाते हैं। इसमें एक प्रतिशत भी अश्रद्धा करने की गुंजाईश नहीं है। यह लेख भगवान् ही लिखवाकर दूसरों की आँखें खोल रहे हैं।

जो कलि का धर्म-कर्म तो अपनाता नहीं है और अन्य साधन यज्ञ, तप, स्मार्त कर्म आदि करता रहता है, उसे भगवान् देखते भी नहीं हैं। न उसे उसका फल प्राप्त होता है। केवल श्रम होता है। थोड़ी बहुत सुकृति मिल जाती है, परन्तु इसमें भी शक ही है।

भगवान् से नाता जोड़ना होता है, जो स्वयं भगवान् ही देते हैं। दास का, वात्सल्य का, मधुर का (मंजरी, सखी) सखा आदि का। इसमें मधुर भाव का सम्बन्ध उच्च नैष्ठिक ब्रह्मचारी का ही होता है, जो गोलोक धाम में से पार्षदगण आते हैं, उन्हीं को यह मधुर भाव शोभा देता है। यदि अपनी मर्जी से यह भाव भक्त बनाने लग जाता है, तो उसे बहुत बड़ा नुकसान भुगतना पड़ता है, क्योंकि यह भाव बहुत उच्चकोटि का तथा निर्मलता का भाव है जो गोपियों का तथा उच्चतम श्रीराधा का ही है, जीव कोटि को बिल्कुल वर्जित है। *100 जन्म तक स्वधर्म का यथार्थ रूप में पालन करने वाले जीव को ब्रह्माजी का पद प्राप्त होता है। तथा 100 जन्म तक भक्ति में लीन परमहंस अवस्था वाले जीव को शिवजी का पद प्राप्त होता है। जीव कोटि में ब्रह्मा तथा शिव भी आते हैं तथा दूसरी ओर स्वयं भगवान् ही ब्रह्मा व शिव की पदवी धारण करते हैं। भगवान् ही शिव, ब्रह्मा को अपनी शक्ति देकर ब्रह्माण्ड का अधिकार देकर काम चलाते हैं। भगवान् की शक्ति के अभाव में कोई भी जीव कार्य करने में सक्षम नहीं है।

वात्सल्यता का भाव बहुत ही सर्वोत्तम है। इसमें गिरने का तो तिलभर अवकाश है ही नहीं। आँख मींचकर चलते रहो। इस भाव में न नामापराध और न मान प्रतिष्ठा का प्रकोप। बेधड़क शिशु बनकर भगवान् की गोद में चढ़कर प्यार भरा चुम्बन प्राप्त करते

रहो। शिशु माँ–बाप को मार भी देता है, तो माँ–बाप उल्टा राजी होते हैं। रोना ही उसका सम्बल (सहारा) है। अन्य भावों में मर्यादा से चलना पड़ता है। इसमें मर्यादा का बिल्कुल अभाव है। जिसको यह भाव मिल गया उसे भगवद् धाम की प्राप्ति हो गई, वह अकथनीय भाग्यशाली है।

यह भाव केवल हरिनाम करते करते बहुत दिनों के बाद मिला करता है, जिसके पूर्वजन्मों के संस्कार उज्ज्वल हैं, उन्हें शीघ्र भी प्राप्त हो जाता है।

श्रीनिष्किंचन महाराज को भी यह पत्र पढ़ाना होगा।

*जीव कोटि ब्रह्मा व रुद्र

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला–अष्टादश परिच्छेद में जीव कोटि ब्रह्मा और शिव का वर्णन है जिसपर व्रजविभूति श्रीश्यामदास जी की विस्तृत टीका का यहाँ उल्लेख करना ज्ञान वर्धन के लिए प्रासंगिक है।

तथाहि हरिभक्तिविलासे (1–73)–

यस्तु नारायणं देवे ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्।।9।।

जो व्यक्ति ब्रह्मा एवं रुद्रादि देवताओं को श्रीनारायणदेव के समान देखता है अर्थात् ब्रह्मारुद्रादि देवताओं को भी श्रीनारायण देव के समान मानता है, वह व्यक्ति निश्चय ही पाषण्डी है।।9।।

व्रजविभूति श्रीश्यामदास विरचित चैतन्य–चरण–चुम्बिनी टीका–ब्रह्मा–रुद्र एवं आदि शब्द से यहाँ अन्यान्य इन्द्रादि देवताओं से अभिप्राय हैं, ये सब श्रीभगवान् की विभूति या शक्ति से आविष्ट जीव–तत्त्व ही है। ब्रह्मा दो प्रकार के होते हैं। 1. जीवकोटि 2. ईश्वर कोटि। किसी–किसी महाकल्प में उपासना के प्रभाव से कोई जीव–विशेष ब्रह्मा बना करता है और किसी कल्प में श्रीविष्णु ही ब्रह्मा रूप से प्रकट होते हैं (पाद्‌म–वचन)। श्रीमद्‌भागवत (4–24–29) में

कहा गया है कि जो व्यक्ति सौ जन्म पर्यन्त निष्ठा के साथ स्वधर्म पालन करता है, वह ब्रह्मा पद को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार रुद्र भी जीवकोटि एवं ईश्वरकोटि भेद से दो प्रकार के हैं। जिस कल्प में योग्य जीव प्राप्त हो जाता है, उस कल्प में भगवान् उसी जीव में ही संहार-शक्ति संचारित कर देते हैं और वही रुद्र का कार्य करता है। योग्य जीव प्राप्त न होने पर श्रीविष्णु ही रुद्ररूप में प्रकट होकर सृष्टि कार्य निर्वाह करते हैं, (द्रष्टव्य आदि-लीला) इस प्रकार 'ब्रह्म-रुद्रादि' को भी जो श्रीनारायण के समान कहते हैं, उन्हें पाषण्डी कहा गया है फिर किसी साधारण जीव या संन्यासी को श्रीनारायण मानना घोर अपराध है, इसमें कहना ही क्या है? जीव तथा ईश्वर को समान जानने वाले को पाषण्डी कहा जाता है-इस बात के समर्थन में उक्त श्लोक उल्लिखित किया गया था। प्रसंग वश कोई यह भी कह सकता है कि उक्त श्लोक में जिन ब्रह्मा-रुद्र आदि की बात कही गई है, वे जीव-कोटि ब्रह्मा एवं जीव-कोटि रुद्र के सम्बन्ध में हो सकती है, किन्तु ईश्वर-कोटि ब्रह्मा तथा रुद्र के सम्बन्ध में नहीं है। अतः ईश्वर-कोटि ब्रह्मा तथा ईश्वर-कोटि रुद्र को यदि श्रीनारायण के समान माना जाए तब तो पाषण्ड अथवा किसी दोष की आशंका नहीं रहती, इसमें तो ईश्वर-स्वरूप का कोई अपकर्ष नहीं होता?

इसके समाधान में वक्तव्य यह है कि ईश्वर कोटि-ब्रह्मा एवं ईश्वर कोटि-रुद्र को श्रीनारायण के समान मान लेने में ईश्वर-स्वरूप का कुछ अपकर्ष नहीं होता, किन्तु श्रीनारायण की महिमा का अपकर्ष अवश्य सूचित होता है। क्योंकि श्रीनारायण सत्त्व, रज, तम-इन तीनों माया के गुणों से परे हैं। उनके साथ माया के गुणों का कोई मिश्रण नहीं है। किन्तु ईश्वर कोटि-ब्रह्मा तथा रुद्र इन दोनों का स्वरूपतः ईश्वर होने पर भी प्राकृत ब्रह्माण्ड-व्यापार में माया के गुणों के साथ सम्बन्ध है। ब्रह्मा रजोगुण द्वारा सृष्टि करते हैं एवं रुद्र तमोगुण के द्वारा सृष्टि का संहार करते हैं। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने इस श्लोक की टीका में लिखा है कि रजोगुण ब्रह्मा

को एवं तमोगुण रुद्र को उपरञ्जित (रंग) कर देते हैं। अपने गुण प्रभाव से ये दोनों गुण उनके आनन्द में विक्षेप एवं आवरण सम्पादित कर देते हैं। इसलिये उनके विग्रह रजोगुणमय एवं तमोगुणमय के समान ही हो जाते हैं। अतः वे सगुण कहलाते हैं, किन्तु श्रीविष्णु या श्रीनारायण जो सत्त्वगुण के द्वारा सृष्टि का पालन करते हैं। वे सत्त्वगुण से रञ्जित नहीं होते क्योंकि सत्वगुण उदासीन एवं प्रकाशरूप है। उसमें रञ्जकत्व नहीं है। सत्त्वगुण में रञ्जकत्व न होने से श्रीविष्णु निर्गुण ही रहते हैं। अतः ब्रह्मा–रुद्रादि की उपासना से जीव माया–गुणातीत नहीं हो सकता, किन्तु निर्गुण श्रीनारायण की उपासना से जीव गुणातीत हो जाता है। अतः उपासना की दृष्टि से ईश्वरकोटि ब्रह्मा एवं रुद्र की श्रीनारायण के साथ समानता मानने में श्रीनारायण की महिमा का अपकर्ष सूचित होता है।

जीव–कोटि ब्रह्मा एवं रुद्र के साथ श्रीनारायण का स्वरूपगत भेद है। वे जीवकोटि हैं परन्तु श्रीनारायण ईश्वरकोटि हैं और ईश्वरकोटि ब्रह्मा एवं शिव का श्रीनारायण के साथ स्वरूपगत भेद नहीं है, किन्तु महिमागत भेद है। यहाँ ब्रह्मा, शिव एवं श्रीनारायण तीनों स्वरूपतः आनन्द स्वरूप ईश्वर होते हुए भी रजोगुण के विक्षेपात्मक धर्मवशतः श्रीब्रह्मा का आनन्द विक्षेप विशिष्ट हो जाता है और तमोगुण के आवरणात्मक धर्मवशतः श्रीशिव का आनन्द आवरण–विशिष्ट हो जाता है, अतः उनमें साक्षात् परब्रह्मत्व एवं उपकारकत्व नहीं रहता और इसलिये वे धर्म, अर्थ तथा काम–इन तीनों को ही प्रदान कर सकते हैं। किन्तु सत्त्वगुण के प्रकाशात्मक धर्मवशतः श्रीविष्णु का आनन्द प्रकाशविशिष्ट ही रहता है, जिससे कुछ भी क्षति नहीं होती। इसलिये उन्हें श्रेष्ठ उपास्य कहा गया है और उनमें साक्षात् परब्रह्मत्व तथा उपकारत्व रहता है। वे धर्म, अर्थ, काम के साथ–साथ मोक्ष भी प्रदान कर सकते हैं। अतः श्रीब्रह्मा–रुद्रादि को श्रीविष्णु के समान मानने में श्रीविष्णु की महिमा का अपकर्ष सूचित होता है, जो अपराध–जनक है।

नामापराध प्रकरण में जहाँ श्रीशिव के एवं श्रीविष्णु के गुण–नामादिक में भेद मानने को अपराध कहा गया है, वहाँ भी स्वरूपगत–भेद मानने में अपराध कहा गया है। महिमा–गत भेद समस्त भगवत् स्वरूपों में उनके स्वरूप, नाम, लीला एवं गुण तथा धाम के तारतम्यानुसार शास्त्रों में निरूपण किया ही गया है। अतः उक्त श्लोकों में परस्पर महिमा की समानता मानने में ही पाषण्ड अथवा दोष वर्णन किया गया है। सारांश यह है कि मूल–नारायण श्रीकृष्ण परमब्रह्म, परम स्वतन्त्र तत्त्व हैं एवं ब्रह्मा–रुद्रादि उनकी ही अंश विभूतियाँ हैं, उनको श्रीनारायण के समान मानने में दोष एवं अपराध है।

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्दपूर्णामृताब्धे
गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः।।

मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं और न शूद्र हूँ। मैं ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थी नहीं, वानप्रस्थी तथा संन्यासी भी नहीं हूँ। किन्तु मैं प्रकट रूप से प्रकटित निखिल परमानन्द से पूर्ण अमृतसागर के समान गोपियों के भर्ता भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों के दासों के दासों का दास ही हूँ।

(श्रीजगन्नाथ जी के रथ के आगे नृत्य करते–करते श्रीमहाप्रभु इस श्लोक का गान करते थे। मानों जीव को उसके स्वरूप–कृष्णदासानुदास के दास का उपदेश देते थे)

11

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 05/10/2007

प्रेमास्पद भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

नामनिष्ठ को भगवान् स्वयं लेने आते हैं

जो साधक कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम स्मरण पर अपना जीवन व्यतीत करता है, उसे भगवान् तन से अन्तिम सांस निकलने पर भगवद् पार्षदों को न भेजकर स्वयं ही नामनिष्ठ को अपने विमान में बिठाकर अपने गोलोक धाम में ले जाते हैं। वहाँ पर उसका बहुत शोभायमान स्वागत करवाते हैं, जो अवर्णनीय है।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर हैं। जब हरिदास जी का प्राण तन से निकलने लगा तो महाप्रभु गौरहरि ने हरिदास जी के शरीर को शीघ्र उठाकर अपने हाथों में लेकर इतना विलाप किया कि हरिदास जी का शरीर निरन्तर आँसुओं की धारा से तरबतर हो गया। स्वयं महाप्रभु ने उनके भण्डारे के लिए घर–घर जाकर भिक्षा माँगी तथा समुद्र के किनारे अन्तिम संस्कार अपने हाथों से किया। यह इनका साक्षात् ज्वलन्त उदाहरण है। जटायु का रामजी ने रोते रोते अन्तिम संस्कार किया था। प्रभु की भक्तवत्सलता की भी हद हो गयी।

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी जी जो इस्कॉन के संस्थापकाचार्य थे उन्होंने वृन्दावन के श्रीराधा–दामोदर मन्दिर में सौ करोड़ हरिनाम स्मरण का अनुष्ठान किया हैं, वहाँ पर उन्होंने सवा तीन लाख हरिनाम जप नित्य किया था जो आठ साल में सम्पूर्ण हुआ था। अतः मैंने भी ठाकुर और गुरु वैष्णवों की कृपा से सवा तीन लाख

नाम नित्य अपनाने का अनुष्ठान लिया है। जब तक जिन्दगी है, भगवान् और वैष्णवगण मेरा यह संकल्प निभायेंगे।

सवा तीन लाख हरिनाम में मुझे कोई परिश्रम नहीं होता तथा उत्साह ही रहता है। मन भी ख़ूब लग जाता है। रात में 2 बजे उठकर आरम्भ कर देता हूँ तथा 8–9 बजे रात को सोने से पहले सवा तीन लाख नाम पूरा हो जाता है। अतः सभी से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि कम से कम एक लाख हरिनाम तो करें।

श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी आदि ने हरिनाम से ही हर प्रकार की सिद्धि प्राप्त की थी। मानव जन्म बार–बार नहीं मिलेगा। इस अवसर को चूको नहीं वरना बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा, जो अवर्णनीय होगा।

भगवान् गीता में कहते हैं कि, भक्त जिस प्रकार मुझे याद करता है, उसी प्रकार मैं भी भक्त को याद करता हूँ। मैं तो कठपुतली हूँ, जैसे भक्त मुझे नचाता है, वैसे मैं नाचता हूँ। भक्त मेरे लिए रोता है, तो मैं भी भक्त के लिए रोता हूँ।

मैं भक्त के दुर्गुण तो देखता ही नहीं हूँ, मैं तो उसका अन्तिम ध्येय देखता हूँ कि वह संसार चाहता है या मुझे चाहता है! मुझे चाहने पर मैं उसे सौ गुणा ज्यादा चाहता हूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अहंकार, ये सब दुर्गुण हरिनाम से धीर–धीरे समाप्त हो जायेंगे। यदि भक्त का अन्तिम उद्देश्य मुझे प्राप्त करने का है तो एक जन्म में न सही, दूसरे–तीसरे जन्म में मेरे धाम में प्रवेश पा जायेगा।

भक्त का भगवान् से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध होना परमावश्यक है। इसके अभाव में भगवद्प्रेम उदय नहीं होता। यह सम्बन्ध स्वयं हरिनाम ही करवायेगा। वात्सल्य भाव के सम्बन्ध में सभी भावों का समावेश हो जाता है। वात्सल्य भाव में शिशु का सम्बन्ध सर्वोत्तम सम्बन्ध है। इसमें गिरने का भय नहीं है। शिशु में कोई दोष दर्शन नहीं होता। मधुर रस के अलावा शिशु सम्बन्ध में सभी रसों का समावेश रहता है।

महाप्रभु के आदेशानुसार प्रत्येक गृहस्थी, ब्रह्मचारी, संन्यासीगण को कम से कम एक लाख नाम जप प्रतिदिन करना चाहिए। इसके अभाव में सभी सेवाएँ निर्बल रहती हैं। रसमयी सेवा तब ही होगी जब कलि का धर्म हरिनाम स्मरण होगा। हरिनाम के अभाव में सभी धर्म-कर्म सुकृतिमय होंगे जो अगले जन्म में सद्गुरु से भेंट करा देंगे। यह गारंटी भी नहीं है कि अगला जन्म मनुष्य का ही हो। फिर भी हरिनाम का सहारा ही मनुष्य जन्म दे पायेगा।

यह ब्रह्माण्ड अनन्तकोटि जीवों से भरा है। उसमें भी जीव दो प्रकार के हैं- स्थावर (जो चल-फिर नहीं सकते, जैसे वृक्ष) और जंगम (जो चल-फिर सकते हैं, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि)। ऐसी तिर्यक-जलचर, स्थलचर आदि चौरासी लाख योनियों में मनुष्य जाति की संख्या अत्यल्प है। उसमें भी वेदानुसार आचरण करने वाले दुर्लभ हैं। उनमें भी यज्ञ आदि कर्मों में जिनकी निष्ठा होती है ऐसे करोड़ों कर्मनिष्ठों में एक ज्ञानी दुर्लभ है। फिर करोड़ों ज्ञानियों में भी कोई एक विरला व्यक्ति ही सिद्ध या मुक्तावस्था को प्राप्त होता है। ऐसे करोड़ों मुक्त व्यक्तियों में कोई एक विरला ही कृष्ण भक्त होता है। ऐसे करोड़ों-करोड़ों कृष्ण भक्तों में वास्तविक कृष्ण भक्त (शुद्ध भक्त) कोई एक विरला ही होता है, जो अन्य सभी कामनाओं को छोड़कर श्रीकृष्ण सेवा तथा उनकी प्रसन्नता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहता। अतएव कृष्णभक्त अति दुर्लभ है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला 19.138, 144-148 से उद्धृत)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 07/10/2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् की माया ने किसी को नहीं छोड़ा

यह पत्र अवश्य हृदयंगम करने का है।

जैमिनि ऋषि बहुत बड़े तपस्वी महात्मा हुए हैं। जो जन्म से ही नैष्ठिक ब्रह्मचारियों में गिने जाते हैं। वह सघन घोर जंगल में एकान्त में अपनी कुटी बनाकर रात दिन तपस्या किया करते थे। जहाँ हिंसक पशु रात दिन फिरा करते थे। वृद्धावस्था होने के कारण उनको स्त्रियों से कोई डर नहीं था। ऐसे बीहड़ जंगल में कोई स्त्री आती भी नहीं थी।

उनको अहंकार हो गया कि अब मैंने काम पर विजय पा ली है। काम अब मेरा क्या बिगाड़ सकता है ?

इस काम ने शिवजी तक को अपने पैरों के नीचे कुचल दिया जब भगवान् ने मोहिनी रूप बनाकर देवताओं को अमृत पिलाया था। शिवजी उस मोहिनी रूप को देखना चाहते थे। भगवान् ने उस रूप को शिवजी को दिखाया तो शिवजी पार्वती के पास बैठकर तथा महात्माओं से सत्संग की चर्चा करते हुए भी अपने मन को रोक नहीं सके एवं मोहिनी के पीछे दौड़ पड़े।

शिवजी भी काम को जीत नहीं सके लेकिन मैंने इसे जीत लिया– ऐसा अहंकार उन्हें जाग्रत हो गया। बस फिर क्या था! भगवान् की माया ने इनको फिसला दिया। भगवान् ने किसी के

भी अहंकार को आज तक रहने नहीं दिया। अतः अहंकार से सदैव हाथ जोड़ते रहना चाहिए।

हरिनाम ही अहंकार और काम पर विजयी हो सकता है। अन्य साधन न के बराबर रहते हैं। अतः हरिनाम को इस युग में अपनाना होगा।

एक दिन क्या हुआ, एक 16 साल की लड़की शाम को जैमिनि महात्माजी की कुटिया पर आकर बोली, 'महात्मा जी मैं प्यासी हूँ आप मुझे पानी पिला दीजिए। मैं बहुत दूर से थकी हारी आई हूँ यदि कुछ खाने को हो तो कृपाकर दे दीजिए।' महात्मा ने पानी पिलाया और कुछ फल खाने को दे दिये।

लड़की बोली, 'अब रात होने वाली है, मैं कहाँ जाऊँ? कोई हिंसक जानवर मुझे खा जायेगा। मुझे अपनी कुटिया में थोड़ी सी जगह दे दो, मैं प्रातः उठकर चली जाऊँगी। महात्मा बोले, 'स्त्रियों को रात में यहाँ रहना मना है, अतः आप कहीं भी जा सकती हो, यहाँ बिल्कुल रहने और सोने का स्थान नहीं है।'

लड़की बहुत गिडगिड़ाई, 'अब मैं कहाँ जाऊँ, आप मेरे पिता समान हो, कहीं पर भी जगह दे दो महात्माजी।' महात्मा जी को दया ने घेर लिया एवं महात्मा जी को दया आ गयी और वह सोचने लगे कि, बेचारी सच कह रही है, अब यह कहाँ जायेगी। गाँव यहाँ से बहुत दूर पड़ता है। बीहड़ जंगल है, हिंसक पशु इसे खा जायेंगे। अतः इसे यहीं पर रखना मेरा धर्म है।

महात्माजी बोले, 'यहाँ से कुछ दूर दूसरी कुटिया है, जहाँ पर तुलसी का बगीचा है। रात में तुम वहाँ चली जाओ और कुटिया का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लेना। कोई खोलना चाहे तो खोलना नहीं। लड़की बोली, 'बिल्कुल नहीं खोलूँगी। प्रातः उठकर अपने गाँव चली जाऊँगी।'

महात्मा बोले, 'देखो मैं भी दरवाजा खुलवाऊँ तो भी खोलना नहीं। 'लड़की बोली, 'अच्छी बात है, नहीं खोलूँगी।' अब तक

महात्मा जी का मन बिल्कुल स्वच्छ तथा निर्मल था। लड़की जाकर सो गयी। महात्मा भी अपना भजन का नियम करके सो गये। अचानक आधी रात में महात्मा को चेत हो गया। अब क्या था! लड़की का सुन्दर चेहरा सामने नाचने लगा, बहुत हटाना चाहा लेकिन नहीं हटा। एक घंटे तक संकल्प विकल्प ने झकझोरा, परन्तु पार नहीं पा सका। मन को समझा बुझाकर थक गया। काम का वेग ही ऐसा होता है कि वह अन्धा होता है, उसे कुछ नहीं दिखता, केवल काम का ही खेल नजर आने लगता है। महात्मा जी ने सोचा क्या करूँ? इस कुएँ में गिरकर मरना ही उचित है, लेकिन मन में सोचा, पहिले काम से निवृत्त हो लूँ फिर कुएँ में गिरकर मरना ठीक है। काम वेग ने उसे घायल कर दिया।'

अब क्या था, महात्मा जी तुलसी वन में कुटिया पर चले गए और लड़की को पुकारा, 'दरवाजा खोलो! मैं जैमिनि ही हूँ। तुम्हारे लिए कुछ खाने को तथा पीने को स्वादिष्ट शरबत लाया हूँ, इसे ग्रहण करो। फिर मैं खिलापिला कर वापस अपनी कुटिया पर चला जाऊँगा।'

बहुत देर तक पुकारते रहे परन्तु, लड़की ने दरवाजा जो अन्दर से बन्द किया था, खोला नहीं। न कुछ बोली, जैसे गहरी नींद में अचेत पड़ी हो। महात्माजी ने सोचा, 'अब क्या करूँ? मैं तो रह नहीं सकता। व्याकुलता मन पर छा रही है, क्या उपाय करूँ?

उन्होंने अब सोचा, छप्पर फाड़कर अन्दर जा सकता हूँ। अपनी कुटिया पर जाकर सीढ़ी लाये। बिना सीढ़ी के चढ़ना असम्भव था। पीछे छप्पर की भीत पर सीढ़ी लगायी और छप्पर पर चढ़ गए। अब सोचा, बिना औजार छप्पर फटेगा नहीं तो फिर उतरे और अपनी कुटिया पर गए और दरात लेकर फिर छप्पर पर चढ़े और छप्पर की छान को काटना शुरू किया। जब घुसने जैसा छेद हो गया तो झाँककर देखा कि लड़की क्या कर रही है। वास्तव में इतनी गाढ़ी निद्रा में बोल नहीं रही है, शायद थकान होने से गाढ़ी निद्रा ने उसे

बेहोश कर दिया होगा। जवानी में नींद गहरी आती ही है, जरा देखूँ तो सही।

अब महात्मा जी क्या देखते हैं कि ध्यान मग्न होकर वेदव्यास जी आसन पर बैठे हैं। सोचा, लड़की कहाँ गायब हो गई ? तब आँख खुली कि मेरे अहंकार को नष्ट करने के लिए मेरे गुरुदेव ने लड़की के रूप में आकर यह लीला रची थी। गुरुदेव का दर्शन करते ही न जाने काम कहाँ गायब हो गया।

शीघ्र ही पहले वाली अवस्था प्रकट हो गयी और पछताने लगे कि इतने साल तपस्या की, फिर वही पहला दिन। तब समझ में आया। तपस्या तो एक विकल्प मात्र है।

हरिनाम ही इन वेगों का शमन कर सकता है, क्योंकि भक्त भगवान् के शरणागत होता है। तपस्वी अपने बलबूते पर भगवान् को पाना चाहता है। अपनी शक्ति से भगवान् कभी भी नहीं मिलते। अपना बल छोड़ा गजेंद्र ने, मीरा ने, द्रौपदी ने तब भगवान् शरणागत के पालक रक्षक बन सके।

यह काम ऐसी बला है कि अर्थी पर पड़े शमशान जाते हुए मानव को भी जगा देता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि एक लाख हरिनाम से ही इन वेगों से पार हुआ जा सकता है। कुछ कम संख्या में हरिनाम जपने से कुछ हाथ नहीं आने का। गृहस्थी, संन्यासी, ब्रह्मचारीगण को हरिनाम ही अपनाना पड़ेगा वरना मानव जन्म व्यर्थ ही जायेगा, कुछ हाथ में नहीं आयेगा।

इसी वजह से महाप्रभु जी ने एक ही अमर औषधि दी है। कम से कम एक लाख हरिनाम करो। जो नहीं करेगा, माया से पार नहीं जा सकेगा। माया पर विजय प्राप्त करनी हो तो एक लाख हरिनाम करो वरना अन्त समय में रोते हुए जाओगे। कोई साथ नहीं देगा।

शिववचन–

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभावा। कलि विशेष नहीं आन उपावा।।
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

कलियुग में केवल मात्र नाम ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दे सकता है। तपस्या, यज्ञ तथा भगवद्पूजा यदि हरिनाम के अभाव में होती है तो शक्तिहीन रहती है। हरिनाम भक्ति जहाँ पर हो वहाँ यह उक्त धर्म भी शक्तिशाली बन जाते हैं। अतः जिस भक्त ने हरिनाम का आसरा लिया है उसी ने इस जीवन में विजय प्राप्त की है। अन्य सब साधन निरर्थक हैं।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित गीतावली से उद्‌धृत)

जीवन अनित्य जानह सार,
ताहे नाना-विध विपद-भार,
नामाश्रय करि' जतने तुमि,
थाकह आपन काजे

इतना जान लीजिए कि, एक तो यह जीवन अनित्य है तथा इस जीवन में भी नाना प्रकार की विपदाएँ हैं। अतः तुम यत्नपूर्वक हरिनाम का आश्रय ग्रहण करो तथा केवल जीवननिर्वाह के निमित्त सांसारिक व्यवहार करो।

13

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 13/10/2007

परमकरुणामय परमाराध्यतम भक्तप्रवर के चरणारविंद में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों का आधिपत्य रखते हुए भगवान् की भक्तवत्सलता

कलियुग में हरिनाम ही भगवान् की भक्तवत्सलता का उदय कराता है। चारों युगों में ही नाम का ही प्रभाव है परन्तु, कलियुग में विशेष कर है। अतः महाप्रभु गौरहरि ने अपने सभी स्वजनों को आदेश दिया कि जो भी 64 माला अर्थात एक लाख हरिनाम करेगा उस घर को मैं एक क्षण भी छोड़कर नहीं जाऊँगा।

भगवान् स्वयं अपने मुखारविन्द से कहते हैं कि मैं अपने नाम की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। मेरा नाम ही भक्तवत्सलता उदय कराता है। जिस प्रकार अग्नि जाने या अनजाने में छू जाये तो उसका स्वभाव है जलाने का, वह छूने वाले को जला डालती है। वैसे ही मेरा नाम अवहेलनापूर्वक भी लिया जाये तो भी अनन्तकोटि जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। जो साधक मन और कान को एक करके हरिनाम लेगा उसे भगवान् एक क्षण भी छोड़ नहीं सकते।

शिववचन–

बिबसहुं जाको नाम नर कहहि।
जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।

गुरुदेव वचन–

Chant Harinam Sweetly & Listen By Ear

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

भगवान् की भक्तवत्सलता तो देखने योग्य है, जिस भगवान् से काल भी भयभीत रहता है। मिट्टी खाने पर यशोदा मैय्या कान्हा को छड़ी लेकर डरा रही है कि, 'तू फिर मिट्टी खायेगा ?' तो कन्हैया डर की वजह से भयंकर कांप रहा है, रो रहा है तथा भय के कारण पेशाब कर रहा है और हाथ जोड़कर कह रहा है, 'मैया अब नहीं खाऊंगा, मुझे मारो मत।'

नन्दबाबा बोल रहे हैं, 'लाला मेरी जूती तो ला दे, मुझे बाहर जाना है, तो कान्हा अपने सिर पर धर कर बाबा की जूतियाँ ला रहे हैं, जिन जूतियों का भार वहन नहीं हो रहा है। जिस गोपाल ने गिरिराज जी को कन्नी छोटी अंगुली पर 7 दिन तक उठाए रखा वह जूतियों का भार वहन करने में समर्थ नहीं है।'

जो पूतना कान्हा को मारने आयी थी उसे भी माँ के समान गति दे दी। अतः निष्कर्ष निकलता है कि, भगवान् को कैसे भी अपनाओ भगवान् उसे भक्ति राज्य में सम्मिलित कर लेते हैं।

जब तक द्रौपदी ने अपनी शक्ति जुटाई तब तक भगवान् नहीं आये, जब अपनी शक्ति हटाई, तो भगवान् ने देरी नहीं लगाई। साड़ी इतनी बढ़ा दी कि दुःशासन खींचते–खींचते हार गया।

कौरव–पाण्डव युद्ध में रथी बनकर भगवान् घायल होते रहे। विश्राम करने पर घोड़ों की मालिश की। भीष्म की प्रतिज्ञा, जो अर्जुन को मारने की थी, उसे भगवान् ने स्वयं की प्रतिज्ञा तोड़कर भी अर्जुन को बचाया।

रो रोकर आँसुओं से सुदामा के पैर पखारे, रुक्मिणी को शत्रुओं से छुड़ाकर स्वयं उसके साथ विवाह किया। काम्य वन में दुर्वासा के शाप से पाण्डवों को बचाया। लाक्षागृह की आग से पाण्डवों को बचाया। न जाने कितनी–कितनी बार अपने भक्तों पर

कष्ट आये तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के नायक भगवान् ने अपनी भक्तवत्सलता दर्शायी।

श्रीराम केवट से विनय कर रहे हैं, 'भैया! हमें अपनी नाव से गंगा पार करा दे।' केवट मना कर रहा है, 'मैं गंगा से पार करवा दूँगा, आप मुझे भवसागर से पार करवा देना, तब तो गंगा पार करवा सकता हूँ। 'श्रीराम निहोरा कर रहे हैं, 'ठीक है, जल्दी कर।'

रावण का भाई विभीषण की शरणागति देखकर राम ने उसे लंकेश की पदवी सौंप दी। विभीषण को रावण की वीरघातनी शक्ति से बचाकर स्वयं ने शक्ति झेली।

बाली को मारकर सुग्रीव को राज दिलाया। भीलनी के झूठे बेर बड़े प्रेम से खाये, जो बेर भीलनी खुद चख-चखकर राम को खिला रही थी।

विदुरानी के केले के छिलके बड़े प्रेम से खा रहे हैं, जो वह बेसुध होकर खिलाती जा रही है। यह है शरणागति का प्रभाव, जिससे भगवान् भक्त के सेवक बन जाते हैं।

सुतल लोक में वामन भगवान् ने बलि के पहरेदार बन कर उसकी रक्षा की। समुद्र मंथन में अपने शरणागत देवताओं को अमृत पिलाया। राक्षस देखते ही रह गये। कपिल भगवान् ने अपनी माँ को सांख्य ज्ञान का उपदेश देकर माँ को अज्ञान से उपरत किया।

मोहिनी रूप धारण करके शिव का मन विचलित कर दिया। फिर शिवजी को अपना लिया।

यह सब भक्तवत्सलता भगवान् के नामस्मरण से शीघ्र भगवान् के अन्तःकरण में प्रकट हो जाती है। मानव इसी जन्म में गोलोक धाम का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। भगवान् नामनिष्ठ को स्वयं लेने आते हैं। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर, ध्रुव, प्रह्लाद आदि।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना–

हरिनाम में मन लगाने के विविध तरीके

(1) हरिनाम को धीमी ध्वनि से कान से सुनते रहें, जिससे ध्वनि बाहर न जाकर स्वयं का कान ही सुने। जोर की ध्वनि थकान पैदा करती है। जीभ का उच्चारण एवं कान का श्रवण एक घर्षण पैदा करता है। जिससे गर्मी पैदा होकर विरहाग्नि प्रज्वलित हो जाती है, इससे अष्ट–सात्विक विकार उदय हो पड़ते हैं। पुलक अश्रुपात होने लग जाता है। रोने से अन्तःकरण के सम्पूर्ण दुर्गुण धीरे–धीरे निकल जाते हैं तथा सद्गुण आकर भरने लग जाते हैं। प्रत्यक्ष आजमाकर देख सकते हैं।

(2) किसी नामनिष्ठ सन्त के चरणों में (प्रत्यक्ष या मानसिक रूप से) बैठकर, हरिनाम करना होगा। इनके अन्तःकरण के चित्त में भगवान् विराजमान रहते हैं। वहाँ से जापक को देखते रहते हैं तथा नामनिष्ठ सन्त की कृपा भी बरसती रहती है। चार–चार माला प्रत्येक सन्त के चरण में बैठकर कर सकते हैं। सन्तों की कोई कमी नहीं है। अनन्त सन्त चारों युगों में होते आए हैं। मन चाहे जिस सन्त के चरणों में बैठकर माला जप कर सकते हैं। इस साधन से मन संसार में कभी नहीं जायेगा।

(3) मानसिक तथा प्रत्यक्ष रूप से सन्तों के संग में धाम भ्रमण करें। यमुना, गंगा, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड पर सन्त को स्नान करावे तथा वस्त्र धोकर नये कपड़े पहनाये। स्नान कराते समय उनके चरणों का पवित्र जल पीये, उनकी रज सिरपर व हृदय

पर लगाये, प्रसाद पवावे, उनका झूठा महाप्रसाद पावे तो मन संसार में कभी नहीं जायेगा। इससे अष्टसात्त्विक विकारों का उदय हो पड़ेगा। हरिनाम में मन लगाने के अनेक साधन है।

(4) भगवान् के पास जाने के लिए, किसी भक्त के द्वारा सिफारिश करवाना होता है। यशोदा मैया के पास जाओ, शची माँ के पास जाओ, अद्वैताचार्य के पास जाओ, नारदजी के पास जाओ, सनकादिक के पास जाओ, शबरी के पास जाओ, कपिल की माँ देवहूति के पास जाकर रोओ, रूप, सनातन, राय रामानन्द कितने ही भक्त शिरोमणि हो गए है, सभी दयावान हैं, आपकी सिफारिश भगवान् से कर देंगे। भगवान् भक्तों की बात कभी भी टालते नहीं हैं। आपका मन हरिनाम में लगा देंगे। अनन्तकोटि भक्तगण हो गए हैं, किसी के भी पास जाकर सिफारिश करवा सकते हो, कोई मना करेगा ही नहीं, क्योंकि सभी उदार प्रकृति के हैं।

(5) स्वयं के गुरुजी के चरणों में बैठकर हरिनाम कर सकते हैं। उनका ध्यान कर सकते हैं। उनसे अपनी मन की बात कर सकते हैं। उनकी सेवा में हरिनाम करते हुए रत रह सकते हैं।

(6) मंदिर में जाकर भगवान् का भावमयी नेत्रों से दर्शन व वार्तालाप कर सकते हैं। अपनी व्यथा उनको सुना सकते हैं।

इतने तरीकों से मन संसार में जा ही नहीं सकता। फिर कहते हो मन लगता नहीं। झूठी बात है, मन लगता है मन लगाना नहीं चाहते।

एक परीक्षार्थी का मन 3 घंटे तक एक क्षण भी कहीं नहीं जाता। बैंक मैनेजर का मन न रुके तो बहुत बड़ा नुकसान हो जाये।

केवल मात्र हरिनाम में लोभ नहीं, श्रद्धा नहीं इसीलिए मन चलायमान रहता है।

(7) जितने भगवद् अवतार हुए हैं उनका स्मरण करते हुए जीभ से हरिनाम करते रहना चाहिए।

क– प्रथम तो गौरहरि जगन्नाथजी के मंदिर में स्तम्भ के पास खड़े होकर कीर्तन करते हुए रो रहे हैं। पुरी में जहाँ तहाँ दौड़ा–दौड़ी कर भगवान् कृष्ण को पुकार रहे हैं। हा कृष्ण! तुम कहाँ हो, कहाँ जाऊ कहाँ पाऊँ व्रजेन्द्रनन्दन, कौन बताये वे कहाँ मिलेंगे ? आदि आदि उनका विरह क्रन्दन का स्मरण कर नाम करते रहें।

ख– श्रीराम जटायु को गोद में लेकर विलाप कर रहे हैं एवं आँसुओं से जटायु को तरबतरकर कर रहे हैं। कहीं राम केवट से गंगा पार करने हेतु निहोरा कर रहे हैं। भैय्या, जल्दी हमें गंगा पार करा दो। कहीं, राम–लक्ष्मण भीलनी के बेर जो चख–चख कर खिला रही हैं, उसे बड़े प्रेम से खा रहे हैं। कहीं पर राम विभीषण को अपनी छाती से लगाकर लंकेश की पदवी दे रहे हैं। श्रीराम की कितनी ही लीलाएँ हैं, नाम जपते हुए स्मरण करते रहना चाहिए।

ग– कपिल भगवान् अपनी माँ देवहूति को संसार से मुक्त होने का उपदेश दे रहे हैं। कह रहे हैं, 'माँ! संसार तो दुःखालय है। अतः इसकी आसक्ति समाप्त कर भगवान् की अनेक रोचक लीलाएँ हैं, मेरा नाम जपते हुए उनका स्मरण करना चाहिए।'

घ– नृसिंह भगवान् प्रह्लाद को गोदी में बिठाकर आँसुओं से तरबतर कर रहे हैं और कह रहे हैं कि, "प्रह्लाद मुझे तुम्हारे पास आने में देर हो गई। तुमने बहुत सारे कष्ट भोगे, मैं शर्मिन्दा हूँ। अब मेरे प्यारे प्रह्लाद! तुम पर कोई कष्ट नहीं आयेगा, तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा, तुम बे–चिंता रहो।"

ङ– वामन भगवान् नट का सा भेष धर कर नाटे कद से सुन्दर बच्चे का रूप लेकर बलि के वाजपेय यज्ञ में भिक्षा माँगने चले गए ताकि देवताओं का राक्षसों से बचाव हो सके। दो पग में सारी पृथ्वी को नापकर उसे रसातल में राज्य दे दिया।

च– भगवान् ने कच्छप अवतार लेकर समुद्र मन्थन किया और देवताओं को अमृत पिलाकर आकर्षक मोहिनी रूप से राक्षसों को मोहित कर दिया।

छ– नारद, सनकादिक, नवयोगेश्वर, भरत का नामजप, हनुमान जी का दास्यत्व, कौरवों–पांडवों का मनमुटाव, विदुर जी के घर जाकर केले के छिलके खाना, अचानक काम्यवन में दुर्वासा जी के भोजन माँगने पर पांडवों को शाप से बचाना आदि कितनी ही भगवद् अवतारों की लीलाएँ हैं कि इतना ध्यान कोई कर ही नहीं सकता। चाहो तो 5 लाख हरिनाम स्मरण करो परन्तु लीला समाप्त नहीं होगी।

यह गारंटी है और शास्त्रों की प्रत्यक्ष घोषणा है कि, जो मानव नामनिष्ठ बनकर अधिक से अधिक हरिनाम कर सकेगा, उसको भगवान् अपने पार्षदों को न भेजकर स्वयं (उसकी अन्तिम सांस जब तन से निकलेगी तब) उसे लेने आयेंगे। इसमें 1% भी सन्देह नहीं समझना, क्योंकि इस मानव ने कलियुग का धर्म जो हरिनाम ही है और इस युग का परम धर्म–कर्म है उसे अपनाया है। नामनिष्ठ के सिर पर भगवान् का हाथ है तथा उससे जो सम्बन्ध रखते हैं, उनको भी भगवान् सुखी करते रहते हैं। **यदि कोई कहे कि इतना हरिनाम लेने पर भी दुःख क्यों आ रहा है तो यह दुःख नहीं, भगवान् अपने जन को दुःखभोग कराकर अपने धाम में ले जाना चाहते हैं। यह मनगढ़न्त नहीं, वास्तव में 100% सत्य सिद्धान्त है।** इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, मीरा, पांडव, व्रज पर राक्षसों का आक्रमण, स्वयं राम जी के पिता पर घोर आपत्ति, इन्द्र पर बार–बार राक्षसों का आक्रमण, कितने ही उदाहरण हैं। भक्तों पर सदैव दुःख आते रहते हैं, परन्तु भक्त उसको दुःख न महसूस कर उसे भगवद्कृपा ही समझता है। कुन्ती ने दुःख क्यों माँगा ? इससे स्पष्ट हो जाता है कि दुःख भगवान् को अधिक याद करवाता रहता है। सुख में मानव भगवान् को भूला रहता है।

अधिक से अधिक हरिनाम करना ही संसार निवृत्ति का एक मात्र साधन है। इसके अभाव में भगवद् पूजा, अर्चन, यज्ञ, स्वाध्याय, योग, तपस्या, तीर्थाटन, गृहस्थ धर्म, चारों वर्ण तथा आश्रम सभी केवल श्रम मात्र है। इनसे सुकृति मात्र हो जाती है। अर्थात् उसका

मन धीरे- धीरे शुद्ध होता रहता है। कई जन्मों के बाद में यह हरिनाम में रुचि प्रदान करेगा। इसी से मन शुद्ध होकर नाम से प्रेम प्रकट हो जायेगा। प्रेम ही भगवान् को आकर्षित करता है। यह हरिनाम के अभाव में उदय होगा ही नहीं। यह नाम ही भक्त अपराध और मान-प्रतिष्ठा से बचाता रहेगा। यह दोनों ही भक्ति पथ में बहुत बड़े रोड़े हैं। इन दुश्मनों से हरिनाम ही बचाता है वरना बचना असम्भव ही है।

हरिनाम स्मरण करते-करते इतना परमानन्द उदय होता है कि कहना अकथनीय है। जो इसे अपनाएगा वही महसूस करेगा। बताया नहीं जा सकता। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, आजमाकर देख सकते हो। अनुभव न हो तो शास्त्र कृपा की याचना करे। शास्त्र मानव की वाणी नहीं है, भगवद्वाणी है, जो लेखनी के रूप में मानव मात्र की आँखें खोल रही है। यदि नहीं खुलती तो समझना होगा अभी नरक भोगना होगा, दुःखसागर में डूबना होगा।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलासानन-लोकनं विना
विभर्मि यत् प्राणपतंगकान् वृथा।।

(विशुद्ध प्रेम की बात तो दूर रही) मुझमें तो श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम की लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। केवल अपने सौभाग्य को प्रकाशित करने के लिए मैं रोता हूँ। वंशी विलासी श्रीकृष्णचन्द्र के मुखचन्द्र का दर्शन मुझे प्राप्त नहीं हुआ, मैं तो अपने प्राण-पतंगों को व्यर्थ ही धारण कर रहा हूँ।

(श्रीकृष्ण-विरह में कातर होकर दैन्यभरे आलापों में
इस श्लोक को श्रीचैतन्य महाप्रभु ने
श्रीस्वरूपदामोदर-रायरामानन्द को कहा था)

15

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ठाणी
दि. 14/10/2007

परमश्रद्धेय भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का श्रीचरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना सहित हरिस्मरण।

भगवान् भक्तों से डरते हैं तथा दुष्टों से बचाते हैं

जिस अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों के नायक से महाकाल भी भयभीत रहता है वह भक्तों से थर-थर काँपता रहता है। शरणागत भक्त की अकथनीय महिमा और भगवान् के वात्सल्य प्रेम की अकथनीय महिमा का कोई अन्त नहीं है।

सभी चर-अचर भगवान् के पुत्र समान हैं। जो भगवान् को मानता है वह सुपुत्र है और जो भगवान् को नहीं मानता वह कुपुत्र श्रेणी में आता है।

कन्हैया ने वृज की मिट्टी (रज) खाई। क्यों खाई ? यह सोचकर कि, 'यहाँ भक्तों की चरणरज बिखरी पड़ी है। अतः मेरे खाने से मेरा तन मन निर्मलता को प्राप्त हो जायेगा।'

यशोदा मैया समझ नहीं पायी तो छड़ी लेकर मारने दौड़ी तो कन्हैया डर गया और थर-थर काँपने लगा। यहाँ तक कि इतना डरा कि पीला पड़ गया और तोतली बोली में कहने लगा कि 'अब आगे मैं मिट्टी नहीं खाऊँगा, तू मुझे मत मार।' तो यशोदा मैया बोली नहीं तू फिर खाएगा,।' कन्हैया ने बोला 'नहीं मैया, कभी नहीं खाऊँगा, बलदाऊ भैया की सौगन्ध, बाबा की सौगन्ध।' महाकाल जिससे डरता है, वह मैया से काँप रहा है। यह है भक्ति की अद्‌भुत महिमा।

भगवान् वामनरूप धारण कर बलि से प्रार्थना करते हैं, कि मुझे 3 पग जमीन चाहिए। शिशुपाल के डर से रुक्मिणी से शीघ्र विवाह किया, कहीं उसे शिशुपाल न ले जाये इसलिए।

श्रीदामा सखा से डरकर गेंद हेतु कालीदह में कूदना पड़ा। नारदजी के शापवश सीता के लिए भटकना पड़ा। राम ने नारद जी को विवाह करने से रोका तो डर की वजह से शाप अंगीकार करना पड़ा। समुद्र मन्थन कर राक्षसों से डरकर मोहिनी रूप बनाना पड़ा ताकि देवताओं को अमृत पिला सकूँ। राक्षस भी पूर्वजन्म के भक्त थे, शाप वश राक्षस हो गये। भीष्म पितामह से अर्जुन को बचाने हेतु अपना वचन भी झूठा करना पड़ा। द्रौपदी की लाज बचाने हेतु चीर बढ़ाना पड़ा। भगवान् सदैव भक्तों के लिए अपना वचन त्याग करके भक्तों से डरते आए हैं।

केवट भक्त से श्रीराम, लक्ष्मण निहोरा कर रहे हैं, 'अरे भैय्या! हमें इस गंगाजी से अपनी नाव से पार करा देना।' केवट बिल्कुल मना कर देता है। 'कभी नहीं करूँगा। आपके चरण रज में जादू है। अगर मेरी नाव उड़ जाये तो मैं क्या करूँ, भूखा मरूँ ? ज्यों आपके चरणस्पर्श से पत्थर की अहिल्या ही उड़ गई। मेरी नाव तो पत्थर से नरम है। यदि आप मुझे आपके पैर धो लेने दो तो गंगा के पार पहुँचा दूँगा वरना पार नहीं करने का।'

श्रीराम बोले, 'जैसा करना चाहो शीघ्र कर लो, हमें देर हो रही है।' केवट ने राजी होकर गंगा का पानी कठोती में भरकर श्रीराम जी के चरण धोकर अपने परिवार को भवसागर से पार करा लिया। जब सीताजी उतराई के बदले में मुद्रिका देने लगीं, तो केवट बोला, 'हम दोनों एक ही जाति के हैं, आप हमें भवसागर पार कर देना, मैंने आपको गंगा पार कर दिया।' तब तो तीनों ही खिल-खिलाकर हँस पड़े। रामजी बोले, 'कैसा चतुर है! लक्ष्मण, भक्तों ने मुझे सदा ही हराया है।'

मतंग ऋषि के आश्रम के पास भीलनी भक्तानी (शबरी) श्रीराम का रोज इन्तजार करती रहती थी और उनके लिए बेर

इकट्ठा करती रहती थी। भीलनी को उसके गुरुदेव ने बोला था कि श्रीराम लक्ष्मण इसी रास्ते से सीता का पता लगाने आयेंगे। अतः भीलनी रास्ता साफ करती रहती थी। जब भगवान् सब महात्माओं को छोड़कर प्रथम उसकी कुटिया पर पधारे तो सभी महात्माओं को दुःख हुआ और गर्व गलित हो गये। भीलनी ने दोनों को आसन पर बिठा दिया और चख-चख कर बेर खिलाने बैठी। लक्ष्मण को झूठे बेर खाने से घृणा हो गयी। इस पर लक्ष्मण को कष्ट भुगतना पड़ा। उन्हीं बेरों से उसे जीवनदान मिला। भीलनी से राम पूछ रहे हैं, 'मैया! हम सीता का पता पाने कहाँ जायें?' तो भीलनी रास्ता बता रही है, 'आप पंपा सरोवर पर सुग्रीव के पास चले जाओ, वह सीताजी का पता करवा देगा।' कैसे भोले बन जाते हैं भक्त के पास भगवान्! राम के बिछुड़ते ही भीलनी परमधाम चली गई।

यशोदा मैया हव्वा से कन्हैया को डराती रहती थी कि, 'लाला अकेला मत जाना, हव्वा खा जायेगा।'

कान्हा ने पूछा, 'मैया, हव्वा कैसा है?'

तो मैय्या बता रही है, 'हव्वा के बड़े-बड़े दांत है, चमकदार आँखें हैं। डरावनी सूरत है।

कान्हा ने बोला, 'तो मैया मेरे ललाट पर काला टीका लगा दे। उसकी नजर भी लग जाती है, ऐसा दाऊ भैया बता रहा था।'

मैय्या बोली 'हाँ लाला, उसकी नजर बड़ी खतरनाक है।'

कान्हा ने बोला, 'तो मैया जब तुम मुझे टीका लगा दोगी, फिर तो मुझे वह नहीं डरावेगा।'

मैया बोली, 'हाँ, लाला!'

तो कान्हा ने बोला,

'तो मैं इसे मिटाऊँगा नहीं।'

भक्तों से डरने के अनन्त उदाहरण हैं जो लिखना असम्भव है।

भगवान् की भक्तवत्सलता की भी हद हो गई। कन्हैया सखाओं के साथ खेल में उन्हें अपने कंधों पर चढ़ाकर अपनी पारी देते थे। झूठा अचार आदि सखाओं के मुख से निकालकर खा जाते थे।

नरसी भक्त ने भगवान् को खूब खरी-खोटी सुनाई और कहा कि दोहती का भात कौन भरेगा ? मेरे पास तो दाम भी नहीं हैं, तेरी हँसी होगी, मेरा क्या जायेगा ? संसार में, समाज में जो हँसी होगी वह तेरी होगी। भगवान् ने **साँवरिया सेठ** बनकर ऐसा भात भरा जो अवर्णनीय है।

भक्तों पर जब भी संकट आया, भगवान् ने उन्हें बचाया। मीरा को उसके जेठ ने बहुत सताया। जहर का प्याला भेजा, विषधर सर्प भेजा, न जाने क्या क्या मीरा को मारने के षडयन्त्र रचे, परन्तु कोई मीरा का बाल भी बाँका नहीं कर सका।

नामनिष्ठ सन्त श्रीहरिदास जी को मुसलमान बादशाह ने बाईस बाजारों में घुमाते हुए बेरहमी से कोड़े बरसाए, समुद्र में फिंकवा दिया, परन्तु हरिदास को कुछ न हुआ, महाप्रभु गौरहरि ने अपने पीठ पर कोड़े ले लिए। जब भक्तों ने देखा कि, महाप्रभु जी कराह रहे हैं तब उनके निजजनों ने पूछा, 'आपको कहाँ पर दर्द है ?' महाप्रभु जी ने अपनी पीठ दिखाई तो क्या देखते हैं कि पीठ पर कोड़ों की मार से निशान पड़कर खून की लकीरें पड़ रही हैं। उनसे पूछा गया कि, 'यह कैसे हो गया ?' तब महाप्रभु जी बताने लगे, कि 'मेरे हरिदास को जल्लाद कोड़े मार रहे थे तो हरिदास हा कृष्ण! हा राम! पुकार पुकारकर चिल्ला रहे थे तो मैं भक्त की मार कैसे सहन कर सकता था ? मैंने ही अपनी पीठ पर कोड़ों की मार सही है।' तब तो सभी भक्तों में कोहराम मच गया और कहने लगे कि, कैसी भक्त वत्सलता है भगवान् की!

मधाई ने मटके से नित्यानंद प्रभु का सिर फोड़ दिया, जिससे वे खून में लथपथ हो गए। मार सहन करके भी अपनी भक्ति प्रदान की। दया की भी हद हो गई।

इन्द्र की पूजा बन्द करने पर, इन्द्र मूसलाधार बरसात करने लगा तो गोपाल ने गिरिराज पर्वत को 7 दिन तक धारण कर व्रजवासियों को कष्ट से बचाया।

एक ब्राह्मण की सन्तान जन्म लेते ही मर जाती थी, उसने युधिष्ठिर से शिकायत की, कि 'तुम्हारे राज्य में पाप हो रहा है इस कारण मेरी सन्तान मर जाती है।' अर्जुन को इसका दुःख हुआ। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि अबकी बार मैं बचा लूँगा और यदि न बचा सका तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। प्रतिज्ञा के बाद ब्राह्मण का बच्चा मर गया, तो भगवान् कृष्ण ने ऐसी लीला की कि अर्जुन जलकर मरने से बच गया।

हर प्रकार से हर जगह में भगवान् की भक्तवत्सलता देखी जाती है।

कौरवों में से जयद्रथ ने प्रतिज्ञा की, कि आज सूर्यास्त से पहले अर्जुन को मार दूँगा। भगवान् को चिंता हो गई। सूर्यास्त होने वाला था और हो भी गया। भगवान् ने कहा, 'सूर्य छिप गया है, तुम्हारी प्रतिज्ञा खंडित हो गयी है, अर्जुन को मार न सके। अब तुम अपनी प्रतिज्ञानुसार मर जाओ।'

राम का यज्ञ का घोड़ा विजय प्राप्त करने के लिए छोड़ा गया। वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश ने उसे पकड़कर बांध लिया तो श्रीराम ने हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि को घोड़ा लाने हेतु भेजा परन्तु सभी हार गये क्योंकि **गुरु वाल्मीकि जी ने लव-कुश को गुरु कवच पहना रखा था जो कवच किसी भी शक्ति से तोड़ा नहीं जा सकता था। अन्त में स्वयं रामजी गये और हार गये। इसमें गुरु का महत्त्व दर्शाया गया है।** यह है भगवान् की भक्तवत्सलता, जिसमें स्वयं हार मान ली। भगवान् भक्त से स्वयं हार मान लेते हैं। भक्त का हृदय दुखाना उनके लिए संभव नहीं है।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवद् नाम ही भक्तवत्सलता का उदय करवाता है। भगवान् अपने नाम के पीछे हार मान लेते हैं। अतः मानव को अधिक से अधिक हरिनाम जप करना चाहिए।

कलियुग में बचने का यह एक बड़ा साधन भगवान् ने मानव को सौंपा है, जो इसे नहीं अपनायेगा वह कभी भी सुख से रह नहीं सकता। यह शास्त्रों का वचन है।

बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

कलियुग में केवल नाम, केवल नाम, केवल नाम ही उद्धार पाने का साधन है। अन्य साधन नहीं है, नहीं है, नहीं है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहि पारा।।

महाराणी कुन्ती की भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः।।
विपदः सन्तु ताः शश्वत तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्याद् अपुनर्भवदर्शनम्।।

हे कृष्ण! आपने हमें विषमय भोजन से, महान् अग्निकाण्ड से, मनुष्य–भक्षकों से, दूषित सभा से, वनवास काल के कष्टों से तथा महारथियों द्वारा लड़े गये युद्ध से बचाया है। और अब आपने हमें अश्वत्थामा के अस्त्र से बचा लिया है।

मैं चाहती हूँ कि ये सारी विपत्तियाँ बार–बार आयें जिससे हम आपका पुनः दर्शन कर सकें क्योंकि आपके दर्शन का अर्थ है कि हमें बार–बार जन्म–मृत्यु का अर्थात् इस दुःखरूपी भवसागर का पुनः दर्शन नहीं होगा।

(श्रीमद्भागवत 1.8.24, 25)

16

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 20/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना सहित हरिस्मरण।

मंगलकारी सदाशिव अपनी धर्मपत्नी उमा को भगवद्प्राप्ति हेतु कलियुग में निस्तार होने का उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामायण और श्रीरामचरितमानस न वाल्मीकि ने, न तुलसी-दास जी ने रची है। यह तो सदाशिव की मूल रचना है। जो उनके मन से उत्पन्न हुई हैं।

सदाशिव की रामचरितमानस में नाम महिमा

रामायण

सिम्भू कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा॥
रामचरित मानस मन भावन। विरचेऊ सिम्भू सुहावन पावन॥

हरिनाम की महिमा उमा को सुना रहे हैं-

राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुरान उपनिषद् गावा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहि तेऊ॥
जीह नाम जप जागहि जोगी। विरत विरंच प्रपंच वियोगी॥
भाव कुभाव अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहि पारा॥
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अच्युत अनंत गोविंद नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकलाः रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

–भगवान् धन्वन्तरि वचन

जाको नाम लेत जग माहि। सकल अमंगल मूल नसाहि॥
बिबसहुँ जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि॥

एक नाम करे सर्व पाप क्षय।

श्री गौरहरि का वचन।

न कलिकर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहि आन उपाऊ॥
सुमरिए नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे॥
सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥
मम गुण ग्राम नाम रत, रात ममता मद मोह।
ता कर सुख सोई जानई, परमानन्द सन्दोह॥(श्रीराम वचन)
मम गुण गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नैन बह नीरा॥

(राम वचन)

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीक भये ब्रह्म समाना॥
पुलक गात हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥

(भरत का जाप)

जपिये नाम जप आरत भारी। मिटहि कुसंकट होय सुखारी॥
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भव बंधन काटहि नर ज्ञानी॥
जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा॥
बैठे देख कुशासन जटा मुकट कुश गात।
राम राम रघुपति जपत श्रवन नैन जल जात॥
कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तब साधन भजन न होई॥
नाम जपत सप्रेम अनियासा। भक्त होय मुद मंगल वासा॥
नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी॥
नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको॥
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहु तबही॥

(नाम)

राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय॥
शुक सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥
हरिनाम की औषधी जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग आवे नहीं, महारोग मिट जाय॥

(जन्म मरण रूपी रोग)

नाम लेत भवसिंधु सुखाहि। करहु विचार सुजन मन माही॥
जापे कृपा राम की होई। तापे कृपा करे सब कोई॥

(हिंसक जन्तु भी अनुकूल हो जाते हैं)

सुनो उमा ते लोग अभागी। नाम ताजि होय विषय अनुरागी॥
यह कलिकाल मलया तन मन कर देख विचार।
श्री हरिनाम तजि नाहिन कोई उपाय॥
कृत जुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग॥
सुमरि पवन सुत पावन नामू। अपने वस करि राखे रामू॥
पापी जाकर नाम सुमिरहि। अति अगाध भवसागर तरहि॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुख धामा॥

(शिव)

सो छवि सीता राखि उर। रटति रहति हरिनाम॥

(जीभ से)

मन थिर करि तव शम्भू सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥
राम नाम शिव सुमरन लागे। जानेऊ सती जगत पति जागे॥

(कान+मन को जोड़कर)

जो अपराध भक्त सन करहि। राम रोश पावक सम जरहि॥
इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला, कालदंड हरि चक्र कराला॥
इनसे जो मारा नहि मरहि। साधु द्रोह पावक सो जरहि॥

जो भक्त किसी भक्त का अपराध तन मन वचन से करेगा उसे उक्त नाम ही घोर सजा दे देगा। कोई नहीं बचा सकेगा। भगवान् भी ठोकर मार देगा।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 20/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का युगल चरणों में असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर उत्तरोत्तर बढने की करबद्ध प्रार्थना।

कितना हरिनाम स्मरण करने से क्या-क्या उपलब्धि होती है

1 करोड़ हरिनाम से 17 करोड़ हरिनाम स्मरण करने पर जापक को कलिकाल में क्या-क्या उपलब्धि होती है, यह शास्त्रीय उद्‌गार है, मेरे नहीं! जो ठाकुर कृपा वर्षण से उदय होकर लेखन के रूप में व्यक्त करने को प्रेरित हुआ है। स्मरणकारी आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिए।

यह तब ही साधक को उपलब्ध होगा जब निम्न शत्रुओं से बच पाएगा।

(1) स्मरणपूर्वक जप हो जिसका वर्णन मैंने पिछले कुछ पत्रों में किया हुआ हैं। यह स्मरण कोई कठिन कार्य नहीं है, यदि साधक को पूरी श्रद्धा हो, सुख से जीवनयापन कर आवागमन से छूटना हो तथा भगवद् प्रेम जो अन्तिम पुरुषार्थ है वह पाना चाहते हो तो अवश्य करे।

(2) मान-प्रतिष्ठा से बचता रहे। माया मान-प्रतिष्ठा कराकर भगवान् से वंचित करना चाहेगी क्योंकि भगवान् ने सदाशिव को आदेश दे रखा है कि शास्त्रों की ऐसी रचना कर दो कि मेरे पास कोई आ न सके वरना मुझे भक्त का सेवक बनना पड़ेगा। जैसे यशोदा जी से कान्हा थर-थर काँपता है। केवट से गंगा पार होने को निहोरा खाता है। देवताओं को राक्षसों से बचाना पड़ता है आदि-आदि।

कृष्ण यदि छुटे भुक्ति मुक्ति दिया। कभू प्रेम न देय राखे लुकाइया।।

अतः सदाशिव ने अनेक शास्त्र रच दिए जिससे साधक भटकता रहता है। गलत शास्त्रों से अज्ञानी जीव भक्ति को जो हरिनाम से प्राप्त होती है उसे न जानकर दान, तप, यज्ञादि से अपना अमूल्य मानव जीवन खो बैठता है। यही है माया का खेल। जो सुकृतिशाली होगा वही हरिनाम के आश्रित हो पायेगा, जो करोड़ों में से कोई एक ही होगा, केवल जिसपर भगवान् की तथा भक्तों की अकथनीय कृपा होगी। लेकिन श्रीगुरुदेव जी के आदेश से मुझपर ठाकुरजी की पूर्ण कृपा होने से हजार में एक भक्ति पथ (हरिनाम) का रास्ता अपनाकर अपना जीवन सफल कर रहा हूँ। जिसको भी मैं बोलता हूँ, एक लाख हरिनाम हर रोज करना है, वह करने लग जाता है। इससे ठाकुरजी की कृपारूपी हरिनाम अधिक करने की मुझे कामना होती है।

अब तीन से चार लाख हरिनाम कर रहा हूँ जिसमें 14 से 15 घंटे लग जाते हैं। यह इसलिए घोषणा कर रहा हूँ ताकि लेख पढ़ने वालों को प्रेरणा मिल सके तथा पश्चाताप होकर अधिक से अधिक हरिनाम स्मरण बन सके। भजन छिपाकर रखने से अन्य भक्तों को श्रद्धा नहीं हो सकेगी। भजन को छिपाकर रखना भी उचित है परन्तु छिपाकर रखने से अन्य भक्तों को उत्साह नहीं रहेगा। मेरा भजन स्तर गिर जाने की मुझे चिन्ता नहीं है। अन्यों को तो लाभ होगा।

न कलि कर्म न भक्ति विवेकु। रामनाम अवलम्बन एकू।।

(3) स्मरण का तीसरा शत्रु है, 10 नामापराधों से बचते रहें– जिसमें भक्त अपराध बहुत ही खतरनाक है। यदि शिव–ब्रह्मा भी भक्त अपराध करें तो बच नहीं सकते। दुर्वासा शिवजी का भाई ही तो था वो ही अम्बरीष का अपराध करने पर बच नहीं सका। अपराध ही अपराध करने वाले का नाश कर देता है एवं भक्त की सेवा ही भगवान् से मिला देती है।

शिव वचन–

इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहि। साधु द्रोह पावक सम जरहि।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कह रहे हैं,

एक नाम करे सर्व पाप क्षय

यदि कान व मन को जोड़कर हरिनाम किया जाय व उक्त तीन प्रकार के अपराधों से बचता रहे तो प्रेम प्रकट हो जायेगा।

हरिनाम का अकथनीय प्रभाव–

भगवद् अवतार धन्वन्तरि जी, जो क्षीरसागर से अमृत का कलश लेकर आये थे, कह रहे हैं–

अच्युत अनन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात् (औषध)
नश्यन्ति सकलाः रोगाः सत्यं सत्यं वदामि अहम्।

मै सत्य–सत्य कह रहा हूँ, कि हरिनाम अर्थात्, अनन्त और गोविन्द नाम के उच्चारण की ओषधि से सभी रोग समाप्त हो जाते हैं।

एक करोड़ जप से सुस्ती जावे। दो करोड़ जप से रोग न आवे।
तीन करोड़ जप से मन लग जावे। चार करोड़ जप से विरह हो जावे।
पाँच करोड़ जप से मन अकुलावे। छः करोड़ जप से नींद भाग जावे।
सात करोड़ जप से परमानन्द पावे। आठ करोड़ जप से दुर्गुण भाग जावे।
नौ करोड़ जप से सद्गुण आवे। दस करोड़ जप से भाव उपजावे।
ग्यारह करोड़ जप से संबंध बन जावे। बारह करोड़ जप से प्रेम उपजावे।
तेरह करोड़ जप से दर्शन पावे।
चौदह करोड़ जप से जन्म–मरण नष्ट हो जावे।
पन्द्रह करोड़ जप से गोलोक पठावे। सोलह करोड़ जप से सेवा पावे।
सत्रह करोड़ जप से अमर हो जावे।

असीम कृपा भगवान् की–

रहति न प्रभु चित्त चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिय की।।

भक्त की गलती भगवान् देखते ही नहीं। भक्त की सेवा की सौ–सौ बार प्रशंसा करते रहते हैं। प्रभु की दया का भी कोई वर्णन कर सकता है क्या ? कदापि नहीं।

अखिल ब्रह्माण्डों के नायक भगवान् की अकथनीय भक्त वत्सलता है। हरिनाम ही भगवान् की भक्त वत्सलता उदय कराने में सक्षम है। नाम में ऐसी अपार शक्ति है कि स्वयं भगवान् भी हरिनाम स्मरण का महत्व नहीं बता सकते। जिस प्रकार अग्नि जाने अनजाने में छू जाये तो दाहिका शक्ति होने से जला डालती है। इसी प्रकार हरिनाम यदि जाने व अनजाने में मुख से निकल जाये तो अनन्तकोटि जन्मों के पापों को जलाकर समाप्त कर देता है।

ध्यानपूर्वक पढ़ें–

बिबसहुँ जाको नाम नर कहहिं। जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।।

भगवान् की भक्तवत्सलता को देखकर हैरानी हो जाती है कि जिससे महाकाल भी थर–थर काँपता रहता है वह भगवान् भक्त की सेवा के वश होकर जैसे भक्त नचाता है वैसे नाचता रहता है। यशोदा मैय्या से कान्हा थर–थर काँपता था, भय की वजह से रोता था। अर्जुन जैसा कहता था वैसा ही रथ को भगवान् खड़ा कर देते थे। युद्ध विश्राम पर श्रीकृष्ण घोड़ों की मालिश करते थे। सभी योद्धा विश्राम करते थे एवं भगवान् सेवा मे रत रहते थे। यह कितनी आश्चर्य की बात है।

भगवान् का शत्रु–

सुन सुरेश उपदेश हमारा। रामहि सेवक परम पियारा।।
मानन सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकायी।।
उमा सुनो ते लोग अभागी। हरि तजि होय विजय अनुरागी।।
वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करहि निष्काम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करहि सदा विश्राम।।

(राम वचन)

अब प्रश्न उठता है कि हरिनाम में मन कैसे लगे?

इसका उत्तर है कि सर्वोत्तम भक्त का संग करे। विषय वासना को धीरे–धीरे कम करते जाये। विचार करते रहे कि यहाँ की सभी वस्तुएँ नाशवान हैं तथा साथ में जायेंगी नहीं, जब शरीर ही साथ में नहीं जाता तो और क्या साथ में जाएगा? केवल मात्र जाएगा अपना शुभ व अशुभ कर्म ही। गृहस्थी कुछ माला में हरिनाम करता रहे तथा अन्य समय में मुख से हरिनाम करता रहे, तो अभ्यास होने से सदैव हरिनाम होता रहेगा। भूलने पर बार–बार नाम में मन को लगाते रहे। नाम ही सुदृढ़ नौका है जो भवसागर से पार करा देगी। नाम को हरदम कान से सुनने का अभ्यास करते रहे। सच्ची कमाई का पैसा ही हरिनाम में मन लगायेगा। गलत पैसा तोता रटन (भावरहित हरिनाम) करता रहेगा, वह भी लाभकारी रहेगा लेकिन भविष्य का जन्म मनुष्य का नहीं होगा। जब चौरासी लक्ष योनि भुगतकर भगवद्कृपा से मानव जन्म मिलेगा तब पिछले जन्म में सुकृति से जो हरिनाम अवहेलनापूर्वक लिया था वह सद्गुरु से मिला देगा।

गहरे दिमाग से विचार करो कि भगवान् ने मुझे भारत में जन्म दिया जहाँ भगवान् अवतार लेते हैं। विदेशों में भगवद्भक्ति का नामोनिशान ही नहीं है। अच्छे कुल में जन्म हुआ। निरोगी काया दी। जीवनयापन की सामग्री दी। कुटुम्ब अनुकूल दिया। सन्तों का संग दिया। सद्गुरु से मिला दिया। कलि का धर्म जो हरिनाम है वह सुगमता से जपने का सुअवसर दिया। भगवान् ने कितनी अवर्णनीय कृपा की! फिर भी हरिनाम में रुचि नहीं है, कितना दुर्भाग्य है मेरा–ऐसा सोचकर पश्चाताप की आग में जलना चाहिए।

यदि हरिनाम में रुचि नहीं हुई तो यह मानव जन्म व्यर्थ चला जायेगा। फिर दुःख सागर में दुःख भोगते रहो। नरक की यातना सुनने से ही दिल घबरा जाता है। अतः गहरा सोच विचार कर हरिनाम करो।

यह कलिकाल का युग है, इसमें भगवान् के ग्राहक गिने-चुने हैं, अतः जो मानव थोड़ा भी हरिनाम करता है तो उसे भगवान् याद रखते हैं। सभी भगवान् के बच्चे हैं अतः किसी को भी दुःख देकर दुःखी मत करो वरना भगवान् आपको बहुत खतरनाक दण्ड देगा। सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न है अतः वह अपने-अपने स्वभावानुसार जीवनयापन करते हैं। अतः निन्दा-स्तुति से दूर रहकर हरिनाम करते रहना चाहिए। हरिनाम की कृपा से सभी जापक भगवान् की कृपा प्राप्त करते हैं।

जापे कृपा राम की होई। तापे कृपा करे सब कोई।।

जिसपर भगवान् की कृपा होती है, उस पर सभी कृपा करने लगते हैं। क्योंकि सबके हृदय में राम का वास है। हिंसक प्राणी भी उसे दुःख कष्ट नहीं पहुँचाएगा।

अब भी समय है। मन लगाकर लगातार हरिनाम करो वरना पछताना पड़ेगा। रोना पड़ेगा। चौरासी लक्ष योनियों में जाना पड़ेगा। सुख से हाथ धोना पड़ेगा। अमूल्य समय को खोना पड़ेगा। चेत जाने में ही अकथनीय लाभ है। सभी काम भगवद्कृपा से पहले से भी ज्यादा अच्छे होंगे।

श्रीराम नाम की औषधि जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग आवे नहीं महारोग मिट जाय।।

कितना सहज, सरल मार्ग है, आँख मींचकर चलो तो भी गिरोगे नहीं क्योंकि भगवान् ने हाथ पकड़ रखा है।

चाणक्य – नीति

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्य स्वर्णकोटिभिः।
स चेन्निरर्थकं नीतः का च हानिस्ततोऽधिका।।

(श्लोक 34)

कोटि स्वर्णमुद्राएँ देकर भी जीवन का बीता हुए एक भी क्षण वापस नहीं आ सकता। इसलिए व्यर्थ गँवाये हुए समय से अधिक और कौन-सी हानि हो सकती है ?

हरिनाम करो! हरिनाम करो! हरिनाम करो!

18

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 30/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का आपके युगल चरणारविंद में अनन्तबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़कर पंचम पुरुषार्थ–प्रेम प्रदान करने की प्रार्थना के सहित हरिनाम स्मरण करने की प्रार्थना।

ऐसा करके तो देख...

(भगवान् के दिव्य वचन)

1. मेरे मार्ग पर पैर रखकर तो देख, तेरे सब मार्ग न खोल दूँ तो कहना।
2. मेरे मार्ग पर तन–मन–धन न्योछावर करके तो देख, तुझे कुबेर न कर दूँ तो कहना।
3. मेरा स्मरण करके तो देख, तुझे परमानन्द सिंधु में न डुबा दूँ तो कहना।
4. मेरे नाम का उच्चारण करके तो देख, तुझे माया जाल से न निकाल दूँ तो कहना।
5. मेरे नाम का प्रचार करके तो देख, तुझे सबका प्यारा न बना दूँ तो कहना।
6. मेरी तरफ आकर तो देख, तेरा ध्यान न रखूँ तो कहना।
7. मेरी चर्चा लोगों से करके तो देख, तुझे अमृत न पिला दूँ तो कहना।
8. स्वयं को न्योछावर करके तो देख, तेरा न बन जाऊँ तो कहना।

9. मेरा कीर्तन करके तो देख, कलि चाण्डाल से न बचा दूँ तो कहना।
10. मेरे लिए आँसू बहाकर तो देख, तेरा दुःख समूल नष्ट न कर दूँ तो कहना।
11. तू मेरा बनकर तो देख, जगत को तेरा न बना दूँ तो कहना।
12. मेरे लिए कुछ करके तो देख, यमराज के मुख पर कालिख न लगा दूँ तो कहना।
13. तू साधु सन्तों का बनकर तो देख, तेरा दास न बन जाऊँ तो कहना।
14. मेरे लिए सत्शास्त्रों का अवलोकन करके तो देख, ज्ञान का भण्डार न खोल दूँ तो कहना।
15. तू मेरी भक्ति करके तो देख, तुझे वैराग्य का चोला न पहना दूँ तो कहना।
16. तू मेरे सम्मुख होकर तो देख, तेरे सारे रोग न मिटा दूँ तो कहना।
17. तू मेरे लिए जाग कर तो देख, तुझे निद्रा दोष से न हटा दूँ तो कहना।
18. तू टी.वी., अखबार, मोबाइल से दूर रहकर तो देख, तेरा मन मेरे में न लगा दूँ तो कहना।
19. तू मेरे चरणों का ध्यान करके तो देख, तुझे जन्म-मरण के दुःख से न छुड़ा दूँ तो कहना।
20. तू मेरा शिशु होकर तो देख, तुझे नामापराध व मान-प्रतिष्ठा से न बचा दूँ तो कहना।

उक्त प्रकार से जो साधक जीवन यापन करेगा वही परमानन्द सिंधु में गोता खाता रहेगा, वरना आवागमन के दारुण दुःख में जलता रहेगा।

कलिकाल में इस दारुण दुःख से दूर होने का केवल मात्र एक ही उपाय है, हरिनाम को आदर सहित स्मरण करते रहो, अन्य कोई भी साधन अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में नहीं है। जो भी इसको अपनाएगा वही सुखी रह सकेगा, अन्य सभी माया की चक्की में पिसते रहेंगे।

उक्त 20 मार्गदर्शनों की उपलब्धि केवल हरिनाम स्मरणपूर्वक करने पर ही हो सकेगी। सन्त अपराध तथा मान-प्रतिष्ठा से बचकर हरिनाम करना होगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कोई भी आजमाकर देख सकता है। 4 माला स्मरणपूर्वक करने पर ही अन्तिम पुरुषार्थ भगवद्प्रेम प्राप्त हो सकता है। 100 प्रतिशत होगा ही।

जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा।।
जाको नाम लेत जग माहि। सकल अमंगल मूल नशाहि।।
बिबसहुं जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहुं तबहि।।

हरिनाम को अपनाना ही सम्मुख होना है। कलियुग का धर्म ही नामस्मरण है। अतः सभी मेरे स्नेही बंधु नाम का आसरा लो, ताकि समस्त दुःखों से छुटकारा हो सके। बस, यही मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है, सभी के चरणों में! मनुष्य जन्म अब आगे नहीं होगा, फिर चौरासी लक्ष योनियों में भटकना पड़ेगा। सरलतम साधन अपना कर अपना जीवन सफल करने में ही लाभ है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

19

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 01/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का अनन्त बार चरणों में दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति मन सहित होने की प्रार्थना के साथ सप्रेम हरिस्मरण।

भगवद्भक्ति का प्रभाव अमिट क्यों है?

भक्ति कभी भी नष्ट नहीं होती, क्योंकि यह भगवान् में आसक्ति का मूल स्रोत है। भगवान् और भक्त नित्य हैं। भगवान् में से सभी चर-अचर प्राणी सन्तान के रूप में प्रकट हुए हैं। आदि में सभी जीवों का अन्तःकरण एकदम स्वच्छ तथा निर्मल था। धीरे-धीरे माया का गुण सत्व-रज-तम का आवरण (मैल) चढ़ गया एवं जीव दूषित होता गया। आदि में जीव सद्गुण, दया, धर्म, प्रेमादि से ओत-प्रोत था बाद में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि उसमें व्याप गए, अतः सद्गुण का प्रभाव जाता रहा। यह माया के आवरण ने परम पिता को भुला दिया जो नित्य का पिता है। अनेक पिता बना बनाकर भटकता रहा। अब तक उसे अपना खास पिता नहीं मिला। यह पिता तब ही मिल सकता है जब किसी श्रेष्ठ सन्त का संग हो। यह इसकी सुकृति के अभाव में मिल नहीं सकता।

यह सुकृति तब ही उपलब्ध होती है, जब इसके अनन्त योनि भुगतने पर मनुष्य जन्म भगवद्कृपा से मिला हो, तथा सन्त की कृपा उपलब्ध की हो। न जाने कितनी बार इसने मनुष्य जन्म भगवद्कृपा से उपलब्ध किया हो। उन मनुष्य जन्मों में बार-बार सत्संग किया हो तब जाके इसका जन्म-मरण से पिंड छूटता है।

लेकिन यह आवागमन अनन्त कोटि वर्षों में छूट पाता है। इसका कोई हिसाब किताब नहीं कर सकता।

प्रायः पिता का गुण–अवगुण पुत्र में अवश्यमेव आता है। सभी भगवान् के पुत्र हैं। भगवान् निर्गुण (तीन गुणों से परे) हैं, अतः उनकी भक्ति भी निर्गुण है। भक्ति का अर्थ है, भगवान् में आसक्ति। भगवान् में आसक्ति भी निर्गुण सिद्ध हो जाती है, अतः भक्त सहज ही निर्गुणता को उपलब्ध हो गया।

निर्गुणता नित्य में आरोपित होती है। भगवान् तथा भक्त नित्य है, वह कभी अनित्य नहीं हो सकते। भक्ति भी अमिट रहती है।

इसके धर्मशास्त्रों में कई उदाहरण मिलते हैं, जैसे भरत ने भक्ति की थी लेकिन पूर्ण न होने तक हिरण के बच्चे में आसक्त होने के कारण पूर्णावस्था प्राप्त होने से पहले ही बीच में देहमुक्त हो गया, लेकिन भक्ति नष्ट नहीं हुई और हिरण की योनि प्राप्त होने पर हिरणों के संग से दूर रहा एवं सन्तों के आश्रम में उन्होंने अपना जीवनयापन किया। अगले जन्म में ब्राह्मण के यहाँ जन्म पाया तथा जड़भरत कहलाया।

इन्द्रद्युम्न राजा ने अगस्त्य मुनि के शाप से हाथी की योनि पाई। जब ग्राह ने उस हाथी के पैर पकड़कर उसे तालाब में डुबोने लगा तो हाथी ने पिछले जन्म में जो भक्ति की थी उसके बल से भगवान् की प्रार्थना की तथा भगवान् ने उसे संकट से बचाया। हू–हू नामक गन्धर्व शाप से ग्राह बन गया था।

वृत्रासुर राक्षस था। यह पिछले जन्म में चित्रकेतु नाम का राजा था। पार्वती के शाप से राक्षस हो गया था। चित्रकेतु भक्त होने के कारण उसने वृत्रासुर राक्षस के रूप में जन्म लेकर इन्द्र को भक्तिमय शिक्षा से सराबोर कर दिया। कई उदाहरण हैं कि भक्ति सदैव अमर रहती है।

उदाहरण स्वरूप, एक पाठशाला मे 8वीं पास करली, अब इस पाठशाला में 8वीं से आगे कक्षा नहीं है तो पाठक दूसरी पाठशाला में 9वीं कक्षा में भर्ती होगा ही। इसी प्रकार भक्ति का क्रम आगे आगे बढ़ता चला जाता है।

माया जादूगरी की तरह, सच्ची दिखती है परन्तु वास्तव में एकदम झूठी है। यह अज्ञान है। भक्तिरूपी सूर्य के यहाँ अज्ञानरूपी अन्धेरा रह नहीं सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण के गौरहरि अवतार की कड़ी में जो जुड़ गया उसका एक दिन जन्म-मरण निश्चित ही छूट जायेगा। यदि भक्त अपराध और अहंकार से बचता रहे तो छूट जायेगा।
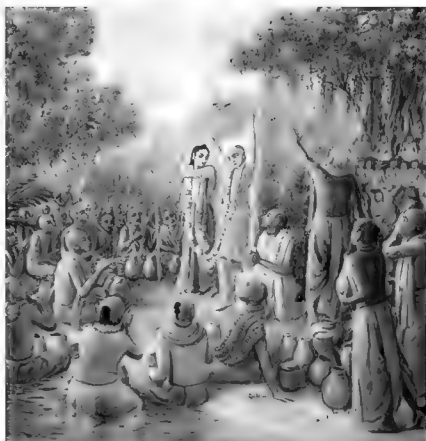
भगवान्, भक्त और भक्ति नित्य और सत्य है।
बाकी सबकुछ अनित्य और असत्य है।

जनमे जनमे सबे पितामाता पाय।
कृष्ण गुरु नाहि मिले भजन हरि भाय।।

हर जन्म में पिता-माता मिलते हैं, परन्तु कृष्ण और गुरु हर जन्म में नहीं मिलते हैं, इसलिए भगवान् हरि का भजन (हरिनाम) कीजिए।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 1/10/2007

परमाराध्य भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का सभी भक्तों के युगल चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना के साथ प्रेम से हरिस्मरण।

कलि चाण्डाल के प्रकोप से बचने का एकमात्र उपाय–हरिनाम स्मरण

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, श्रीचैतन्य महाप्रभु गौरहरि। जिन्होंने अपने सभी जनों से एक लाख हरिनाम नित्य स्मरण करवाने हेतु घर–घर जाकर भगवद्प्रसाद पाने का एक बहाना किया था, वास्तव में तो उनसे एक लाख हरिनाम स्मरण करवाना था। ताकि इस कलि चाण्डाल से बचा जा सके।

कलि बोल रहा था कि, "घर घर में, समाज में, गाँव–गाँव में, शहर–शहर में, देश–देश में यदि कलह नहीं करवा दूँ तो मेरा नाम कलि ही क्या हुआ ? जो प्रत्यक्ष में दृष्टिगोचर हो रहा है।

जिस जगह में एक लाख हरिनाम स्मरण होता होगा, वहाँ मेरी दाल नहीं गलेगी क्योंकि वहाँ भगवान् का सुदर्शन चक्र पहरा देता रहता है, यदि मैं वहाँ चला जाऊँ तो जलकर भस्म हो जाऊँ। ऐसा आदेश मुझे अखिल लोक के सृजनकारी ने दे रखा है कि भक्त के यहाँ जाने पर तेरा अन्त निश्चित है।

अन्य जगह में, मैं टी.वी., अखबार तथा मोबाइल के रूप में आविष्कृत होकर मानव को चरित्रहीन करके ही रहूँगा। और में भविष्य में भी एक आविष्कार करने वाला हूँ। एक ऐसा यंत्र बनाऊँगा, जिससे बैंक, घर, कारखाना आदि का माल, सोना, चांदी, रुपया

सभी उस यंत्र के द्वारा देखकर मोबाइल द्वारा मेरी गैंग को आधी रात में बुलाकर मालिकों को मार कर सबकुछ लूट ले जाऊँगा। पकड़े जाने पर धन दे दूँगा और स्वतन्त्र हो जाऊँगा। केवल नामनिष्ठ भगवद्भक्त ही मेरे से बच पाएगा।

इस समय में भी ऐसा देखने को मिल रहा है। जो जिसको चाहे, उसको मारकर भाग जाता है।

मेरा आधिपत्य चार लाख बत्तीस हजार वर्षों तक रहेगा, क्योंकि मुझे भगवान् ने राज्य करने का आदेश दिया है। अत्याचार करने में मुझे परमानन्द मिलता है। स्वार्थमय वातावरण बना दूंगा। बेटा धन के हेतु माँ–बाप का कत्ल कर देगा। भाई–भाई का शत्रु बनकर सालों से प्रेम करेगा। ऐसी उथल–पुथल भविष्य में अधिक होगी। यहाँ तक कि मठ मन्दिर भी दूषित हो जायेंगे। भजन का अभाव होगा, केवलमात्र खाना–पीना, सोना और ऐश करना ही मुख्य होगा। आपस में झगड़ना, ईर्ष्या–द्वेष करना ही एकमात्र कर्म रह जायेगा। चेले को मानेंगे और गुरु को तानेंगे। पाठशालाओं में पाठ्कों का आधिपत्य होगा। सह शिक्षा (Co-Education) होने से व्यभिचार बढ़ जायेगा। मोबाइल से गुप्त बातें होंगी। शादी में माँ–बाप की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। वर्णसंकरता दस दिशाओं में व्याप्त हो जायेगी।"

अतः एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक हैं।

एक लाख हरिनाम करने हेतु भक्त घबराएँ नहीं। 6 माह एक लाख हरिनाम करने पर 3.5 घंटे ही लगेंगे। आरम्भ में 6–8 घंटे लग सकते हैं। बाद में 2–2.5 मिनट में भी एक माला हो जाती है। एक लाख हरिनाम करने पर दसों दिशाओं की बाधाएँ समाप्त हो जाएँगी। गौरहरि की गारण्टी अनुसार रक्षा होती रहेगी। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमाकर देख सकता है कि, क्या गुल खिलते हैं।

परिवार पर, पड़ोसियों पर, मिलने वालों पर आपका प्रभाव पड़ता रहेगा। चारों ओर रामराज्य हो जायेगा। श्रीगौरहरि के आदेश का भी पालन हो जायेगा।

मेरे ठाकुरजी की गारण्टी है कि जो भक्त 4 माला कान से सुनकर कर लेगा उसे पुलक अश्रु, सात्विक विकार उदय होने लगेंगे। भक्त अपराध तथा मान–प्रतिष्ठा से दूर रहेगा तब ही ऐसी स्थिति आ सकेगी। जिस भक्त का मूल उद्देश्य भगवद् प्राप्ति का ही होगा उसे शीघ्र ही उक्त स्थिति प्राप्त हो सकेगी। उक्त दो अड़चनें (भक्त अपराध तथा मान–प्रतिष्ठा) नास्तिकता का भाव उदय करा देती है। अश्रद्धा हो पड़ेगी।

नित्य एक लाख हरिनाम के जप से व्यर्थ में जो समय जा रहा था वह सदुपयोग में गुजरेगा। दो–तीन साल से बहुत भक्त एक सवा लाख हरिनाम कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण है, श्रीगुरुदेव का स्वप्नादेश! **स्वयं 3–4 लाख करो और अन्यों को एक लाख करने के लिए प्रार्थना करो।** यह मेरी शक्ति से नहीं कर रहे हैं। मैं तो एक माईक का काम कर रहा हूँ, पीछे से श्रीगुरुदेव का आदेश काम कर रहा है। मुझे भी ठाकुरजी की तरफ से कृपा रूपी कमीशन मिलता रहता है, इसी वजह से मैं इतना नाम करने में सक्षम हो जाता हूँ। अपनी शक्ति से कोई भी इतना हरिनाम करने में समर्थ नहीं है।

कलियुग का धर्म है हरिनाम करना, वह तो होता नहीं तो द्वापरयुग का धर्म विग्रह की अर्चना पूजा करना तो कैसे फलीभूत होगा? पहली कक्षा में तो भर्ती हुआ नहीं और बी.ए. में भर्ती हो गया तो क्या वह बी.ए. में पढ़ सकेगा? उसके लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर होगा। जब पुजारी एक लाख नाम करेगा तब ही भगवान् पूजा ग्रहण करेगा वरना पत्थर का बन जाएगा एवं दर्शकगणों को भी पत्थर ही दिखाई देगा। पुजारी ही देवता को पुजवा देता है।

भगवान् का विग्रह दर्शन इन चर्म चक्षुओं से नहीं हो सकता, यह दर्शन भाव नेत्रों से हुआ करता है। इसलिए तो किसी भी

दर्शनार्थी को पुलक, अश्रुपात दृष्टिगोचर नहीं होता। भूतकाल में पुजारी से भगवान् बातचीत किया करते थे।

हरिनाम ही भावनेत्र प्रदान करेगा। दुर्गुणों को नष्ट कर सद्गुण आकर अन्तःकरण में रम जायेंगे। हरिनाम में रुचि ही नहीं होती इसका खास कारण है, नामनिष्ठ संत के संग का अभाव। नामापराध व मान–प्रतिष्ठा की भूख।

जब तक श्रीगौरहरि के आदेश का पालन नहीं होगा तब तक कलि चाण्डाल से बच नहीं सकते। घर में कलह रहना, रोगों का आक्रमण, केस लग जाना, घर की रिद्धि–सिद्धि समाप्त होना, पड़ोसियों से झगड़ा रहना, रोजगार का न होगा, चरित्र बिगड़ जाना, स्त्रियों का दूषित हो जाना, पुत्र–पुत्री स्वतः ही अपनी शादी तय करना, माँ–बाप की राय को जरूरी न समझना आदि–आदि मर्यादाओं का उल्लंघन होना।

जो एक लाख हरिनाम कर सकेगा उसको गौरहरि एक क्षण भी छोड़कर नहीं जायेंगे। जिस घर में गौरहरि वास करेंगे उस घर मे कलि का प्रवेश ही नहीं होगा, तब उक्त परेशानियाँ आऐंगी ही नहीं। ऐसा अब देख भी रहे हैं। अतः मेरी हाथ जोड़कर सभी से प्रार्थना है कि अभी से एक लाख हरिनाम करने लग जायें, इसमें मेरा भी भला व जापक का भी भला। इसी जन्म में मनुष्य जन्म सफल हो जाये और दुःख सागर से पार हो जाये, तो कितनी बड़ी उपलब्धि हो जाती है, जो अवर्णनीय है।

हरिनाम की अकथनीय महिमा–

कहौं कहा लगि नाम बडाई। राम न सकहि नाम गुणगाई।।
बिबसहूं जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भवबंधन काटहि नर ज्ञानी।।
जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा।।
भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुं।।
नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको।।
नाम प्रसाद शिम्भू अवनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।

नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होय मुद मंगल वासा।।
कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तब साधन भजन न होई।।
जिनकर नाम लेत लग माहि। सकल अमंगल मूल नशाही।।
उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीक भए ब्रह्म समाना।।
जाना चहिए गूढ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।
जीह नाम जप जागहि जोगी। विरन विरंच प्रपंच वियोगी।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। कोटि जन्म अघ नासहु तबही।।

हरिनाम करना यही सम्मुख होना है।

उक्त शिवजी के वचन हैं, जो उमा को बता रहे हैं। रामचरित-मानस शिवजी के मन से निकली है। यह रामनाम से वाल्मीकि के हृदय में प्रकट हुई है। उन्होंने राम का चरित्र हजारों साल पहले ही रामायण में लिख दिया था। तुलसीदास ने इसी का सरल भाषा में अनुवाद कर दिया है। रामायण का मूल तो स्वयं शिवजी हैं।

(श्रीमद्‌भागवत पुराण का अन्तिम श्लोक)

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

मैं उन भगवान् हरि को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके पवित्र नामों का संकीर्तन सारे पापों को नष्ट करता है और जिनको नमस्कार करने से सारे कष्टों से छुटकारा मिल जाता है।

(12.13.23)

21

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 3/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का भक्तों के युगल चरणों में असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ाने की बारम्बार प्रार्थना।

मन को रोकने का अचूक सरलतम साधन

शान्त मन से अपनी माला लेकर एकान्त स्थान में बैठ जाओ। अपने गुरुदेव से आरम्भ कर उनके चरणों में मानसिक रूप से बैठकर उन्हें हरिनाम सुनाते रहो। मन एकाग्र होने तक सुनाते रहो। बाद में क्रम बद्ध अनुसार अपनी गुरु परम्परा ब्रह्मा तक गुरुवर्ग को एक-एक, दो-दो माला सुनाते रहो तथा जो भगवद्रूप हैं उनको भी सुनाना, जैसे गौर-निताई, शिवजी, गणेशजी, हनुमानजी, कपिलजी आदि को भी चरणों में बैठकर सुनाते रहो। बड़े-बड़े समर्थ भक्त हुए हैं, उनको भी। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद,अम्बरीष, पांडवादि को भी। इनकी सेवा में रहकर मन को अधिक रोक सकते हैं। इनको मानसिक रूप से स्नान कराओ, भोजन कराओ, तीर्थों में इनके पीछे-पीछे चलकर इनके चरणों की धूल मन में लगाओ।

मन को रोकने का इतना मसाला है कि जापक इतना हरिनाम कर ही नहीं सकता। ऐसा करने पर इनकी कृपा बरसेगी तथा भगवान् जो इनके हृदय मंदिर में बैठा रहता है, इनकी दृष्टि आप पर पड़ेगी तो शरणागति का भाव उदय हो जायेगा। आपका मन कहीं नहीं चलेगा।

लेकिन शर्त यह है कि जापक का उद्देश्य केवल मात्र भगवद् प्राप्ति का ही होना चाहिए तथा मान-प्रतिष्ठा से दूर रहे। भाव ऐसा हो कि जो मेरे समक्ष है, मेरा हरिनाम सुन रहे हैं, मैं इनको बड़ी लगन से सुना रहा हूँ। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए। बहुत शीघ्र समय में ही इनकी कृपा से अष्ट सात्विक विकार निश्चित ही उदय हो जायेंगे। जब अश्रुपात, पुलक होने लगेगा तो शरणागति का भाव स्वतः ही प्रकट हो जायेगा। भगवान् से सम्बन्ध भी शीघ्र उपलब्ध हो जायेगा। यह सम्बन्ध भगवान् ही प्रदान करेंगे। सम्बन्ध के अभाव में प्रेम का उदय नहीं होगा। भगवान् से नाता जुड़ने पर ही सच्चा प्रेम उदय होता है।

भक्तों को हरिनाम सुनाने से स्वतः ही उसकी छवि हृदयपटल पर दृष्टिगोचर होगी तब ही जापक हरिनाम को सुना सकेगा। जब फोटो ही नहीं होगी तो किसको नाम सुनाएगा ? यह साधन एक दिन में फलीभूत नहीं होगा, धीरे-धीरे अभ्यास करने पर 2-3 माह में सफलता मिल सकेगी। आजमाकर देख लो, मन 100% अवश्य रुक जायेगा। जब तक मन नहीं रोक पाओगे तब तक अगली स्टेज प्राप्त नहीं हो सकेगी। पूरी जिन्दगी व्यर्थ में जाती रहेगी। मन रुके बिना तो संसारी काम ही नहीं होता। सुनने के अभाव में बहुत बड़ा नुकसान भी हो जाता है।

श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का प्रचार इसलिए किया कि पशु-पक्षी आदि जो नाम नहीं कर सकते वह नाम को सुनकर सुकृति इकट्ठी कर सकते हैं। अतः गुरुवर्ग को नाम सुनाना परमावश्यक है।

जो भगवद्प्राप्ति करोड़ों मानवों में केवलमात्र किसी एक को ही होती है वह उक्त साधन करने पर हजार में एक को होगी। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, शास्त्र कह रहा है-

बिबसहु जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।
जो सभीत आया शरणाई। ताको राखूँ प्राण की नाई।।

मन से नाम करना ही शरणागति है। यह कलियुग का धर्म है। यह जब होने लगती है तो भगवान् का अर्चन-पूजन सजीवता

धारण कर लेता है, वरना ठाकुर पत्थर का बना रहता है, क्योंकि जब नाम ही नहीं होगा तो भाव कहाँ से उदय होगा ? भाव नेत्रों के बिना भगवद् दर्शन नहीं होगा। इन जड़ आँखों से ठाकुर दर्शन असम्भव ही है। पुजारी को तो कम से कम एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है, जैसा कि गौरहरि का सबके लिए आदेश है।

पुजारी से भगवान् बोलते हैं, जब भाव से ठाकुर सेवा होती है। वरना ठाकुर मूक बनकर बैठे रहते हैं।

अर्चन मार्गेते गाढ़तर रुचि याँर।
श्रवण-कीर्तन-सिद्धि ताहाते ताँहार।।
नामे ऐकन्तिकी रति हइवे याँहार।
श्रवण-कीर्तन-स्मृति केवल ताँहार।।

अर्चन-मार्ग में जिसकी गाढ़ रुचि है, वह भगवान् का अर्चन तो करेगा परन्तु उसे भी भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला व धामों की महिमा का श्रवण-कीर्तन करना होगा, तब ही उसको अर्चन मार्ग में सिद्धि मिलेगी। हरिनाम में जिसकी एकान्तिकी प्रीति होगी, वह केवल भगवान् के नाम का श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही करेंगे, अर्चन इत्यादि में उनकी ज्यादा रुचि नहीं होती।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि'- भजनप्रणाली 15.39,40)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 5/11/2007
एकादशी

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का सभी भक्तगण के युगल चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्तिस्तर बढ़ते रहने की प्रार्थना।

भगवान् व भक्त की पदरज, पद जल तथा अवशेष (उच्छिष्ट) से प्रेमाभक्ति का उदय

धर्मशास्त्रों मे उक्त वर्णित पदरज, पदजल तथा अवशेष के बहुत उदाहरण मिलते हैं।

प्रथम तो स्वयं भगवान् ने गोकुल में रज खाई। इसका मुख्य कारण है, इस भूमि पर भक्त घूमा करते थे अतः स्वयं भगवान् रज खाकर सभी जनों को शिक्षा दे रहे हैं।

गंगा जी ने भगवान् से प्रार्थना की, कि पापी मुझमें स्नान करके मुझे भी गंदा बना देंगे, तो भगवान् ने आश्वासन दिया कि भक्तजन जब तुम में स्नान करेंगे तो तुम गंदी न होकर पवित्रता प्राप्त कर सकोगी।

भगवान् ने अपनी चरणरज छुवाकर अहिल्या का उद्धार किया। भगवान् कृष्ण ने सुदामा के चरण रो-रो कर अश्रुधारा से पखारे। तथा उसके पादप्रक्षालन का चरणामृत (चरण जल) परिवार को पीने को दिया तथा पूरे घर में छिड़का।

केवट ने गंगापार करवाने से पहले श्रीराम के चरण कठौती में पानी भरकर पखारे तथा परिवार सहित उनका चरण जल सेवन किया। भगवान् कृष्ण ने सिरदर्द का बहाना बना कर नारद को भक्त की चरण रज मँगवाने को कहा, तो नारद को किसी ने भी

अपनी चरणरज नहीं दी। गोपियों के पास जाने को कहा तो गोपियों ने पैरों को रगड़-रगड़ कर बहुत सी चरणरज कपड़े में बाँधकर दे दी और कहा कि शीघ्र ले जाकर उनके सिर पर मल देना ताकि शीघ्र सिरदर्द समाप्त हो सके।

प्रह्लाद की उक्ति है कि, जब तक महन्तजन की चरण का अभिषेक नहीं होता तब तक भक्ति स्तर बढ़ता नहीं है। अपराध क्षमा होता नहीं है। उद्धव ने व्रज में झाड़ी होने की श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, ताकि गोपियों की चरणरज मुझपर पड़ती रहेगी, तो मैं पवित्र होता रहूँगा।

भक्तों की कितनी महिमा है-

पुण्य एक जग में नही दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करहि भक्त सेवा।।
मन क्रम वचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मो समेत विरंच शिव, वस तप के सब देव।।
जाते बेगि द्रबहु में भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदायी।।
कह रघुपति सुन भामिनी बाता। मानऊ एक भक्ति का नाता।।
राखहि गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहि कोऊ जगत्राता।।
कवच अभेद गुरु पद पूजा। एहि सम उपाय विजय न दूजा।।
जो अपराध भक्त कर करहि। राम रोश पावक सो जरहि।।
जे गुरु चरण रेणु शिर धरहि। ते जन सकल विमव बस करहि।।
इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
जो सठ गुरु सन ईर्षा करहि। रौरव नरक कोटि जुग परहि।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहि शरीरा। अयुत जन्म तक पावहि पीरा।।
गुरु के वचन प्रतीति न जेहि। सपनेहु सुगम न सुख सिद्धि तेहि।।

सत्य नित्य प्रेमाभक्ति भगवान् से दास, सखा, शिशु आदि भाव से नाता जुड़े बिना नहीं हो सकती। भगवान् पुत्र है यह नाता तथा सखी, मंजरी भाव का नाता भगवान् देते नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों सम्बन्ध आदि काल से बने बनाए रहते हैं। कश्यप-अदिति, दशरथ-कौशल्या, नन्द यशोदा आदि सब आदि काल से हैं, ऐसे ही

सखि-मंजरी भाव भी आदिकाल से हैं। कोई भक्त इन दो प्रकार का नाता करना चाहता हो तो उसे बहुत उच्च स्तर की परमहंस स्थिति होना आवश्यक है वरना वह निश्चित ही नीचे गिरेगा। साधारण भक्त अपने मतानुसार, यह नाते स्वयं कर लेता है। भगवान् यह सम्बन्ध किन्ही करोड़ों-अरबों में किसी एक को ही देते हैं। ये दोनों नाते खतरे से खाली नहीं हैं। साधारण भक्त इसका अधिकारी नहीं है। अन्य नाते भगवान् भक्त को उसके भावानुसार देते हैं।

भगवान् से जब तक सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा तब तक भगवान् उसे नहीं अपनाते क्योंकि अभी उस भक्त का सम्बन्ध संसार से है। जब संसार से नाता टूटेगा तब ही भगवान् से नाता जुड़ सकता है।

जब भक्त 11 करोड़ हरिनाम सम्पूर्ण कर लेगा तब ही भगवान् उसे उसके भावानुसार सम्बन्ध करा देंगे। स्वयं के मन से बनाया हुआ सम्बन्ध टूट जाता है तथा भगवान् के द्वारा दिया हुआ सम्बन्ध अमर होता है।

11 करोड़ हरिनाम = 11 करोड़ हरिनाम ÷ 16 नाम = 68 लाख 75 हजार हरे कृष्ण महामन्त्र।

हरिनाम मन से होना आवश्यक है तथा नामापराध व मान प्रतिष्ठा सम्बंध प्राप्ति में रुकावट डालती है। जब भगवान् भक्त को सम्बंध देते हैं, तो उसकी पूरी जिम्मेदारी भगवान् स्वयं ले लेते हैं। उसकी कमी पूरी करना तथा जो उसके पास है उसकी देखभाल रखना, भगवान् का काम हो जाता है। उसको जरूरतों की कोई कमी नहीं रहती।

भगवान् भक्त का हो जाता है, भक्त भगवान का हो जाता है।

सादर सुमरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरहि।।
मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

भगवद्नाम भी तब ही फलीभूत हो सकेगा जब भक्त का सच्चा प्यार साधु सन्तों से होगा। भगवान् का संसार साधु सन्त ही हैं। इनकी वजह से भगवान् पृथ्वी पर अवतार धारण करते है। केवलमात्र भारतवर्ष ही भगवान् के अवतार का स्थान है।

भगवान् एक दूसरे को शाप व वरदान दिलाकर भक्त को भारत में भेज देते हैं। इनके अभाव में भगवान् किससे अपनी लीलाओं का विस्तार करे? भगवान् की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। माया को अंगीकार कर के लीलाओं का विस्तार करते रहते हैं।

भक्तों के बिना भगवान् रह नहीं सकते एवं भक्त भगवान् के बिना रह नहीं सकते। इन अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में इन दोनों का गहरा अमिट सम्बन्ध है।

(भगवान् कपिलदेव अपनी माता देवहूति को उपदेश देते हैं।)

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तत् जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिभक्तिरनुक्रमिष्यति।।

शुद्ध भक्तों की संगति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कथाओं तथा उनके कार्यकलापों की चर्चा कान तथा हृदय को अत्यधिक रोचक एवं प्रसन्न करने वाली होती है। ऐसे ज्ञान के अनुशीलन से मनुष्य धीरे-धीरे मोक्ष मार्ग में अग्रसर होता है, तत्पश्चात मुक्त हो जाता है और उसका आकर्षण स्थिर हो जाता है। तब असली समर्पण तथा भक्तियोग का शुभारम्भ होता है।

(श्रीमद्भागवतम् 3.25.25)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 8/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का सभी भक्तगण के युगल चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्तिस्तर बढ़ते रहने की प्रार्थना।

विस्मयात्मक चर्चा

भगवद् सृष्टि में देखने में आता है कि एक कन्या का पाणिग्रहण (शादी) माँ-बाप किसी योग्यता वाले युवक से शास्त्रोक्त विधि से ब्राह्मण द्वारा अग्नि को साक्षी मानकर कर देते हैं तो वह कन्या उसके आश्रित होकर सारा जीवन उसके संग रहकर काट दिया करती है।

वह कन्या पीहर के सगे सम्बंधी, भाई-बंधु, माता-पिता आदि को सदा के लिए छोड़कर ससुराल में अपने पति के साथ घर में रहने लगती है। जब उसे शादी के दूसरे दिन कोई पूछता है कि मेरी बहन तुम्हारी शादी हो गई? तो वह उसे जवाब देती है कि, 'हाँ मेरी शादी रात में हो गई है।' यह इस नाते को एक रात भर में ही पक्का कर लेती है।

जब उसकी सन्तान हो जाती है, तो वह अपनी जन्मभूमि (पीहर) आना-जाना बहुत कम कर देती है। प्रायः वह पीहर को भूल सी जाती है। कभी-कभी उसे शादी और मृत्यु जैसे कारणवश बे मन से जाना भी पड़ जाता है।

अपनी संतान की शिक्षा व शादी करने के बाद तो उसे पीहर में जाना-आना बुरा सा लगने लग जाता है। उसे स्वप्न में भी पीहर के भाई-बंधु व माँ-बाप याद भी नहीं आते। अपने पति के घर को ही अपना पक्का घर मान लेती है। अगर कोई उसे पूछता है कि तुम

किस गाँव की हो ? तो वह अपने पति के गाँव को ही अपना गाँव बताती है। माँ–बाप का गाँव तो दिल से निकल ही जाता है। जन्मभूमि को भी भूल जाती है। कैसी विस्मयात्मक और दार्शनिक चर्चा है।

इसी प्रकार से गुरुदेव अपने शिष्य को भगवद्–मंत्र देकर शास्त्रोक्त साक्षी कर भगवान् के हाथों कुंवारी कन्या की तरह सौंप देते हैं। क्योंकि यह भी माया रूपी माँ–बाप के यहाँ कुँवारा ही है। गुरुदेव इसकी शादी रूपी शिष्यता भगवान् से करा देते हैं। तथा शिष्य को कह देते हैं कि आज ही तुम्हारा जन्म हुआ है। आज से तुम भगवान् के हो एवं भगवान् तुम्हारे हैं। तुम सदा से भगवान् के थे, परन्तु मायावश तुम अपने बाप भगवान् से बिछुड़ गये हो, माया ने तुमको भुलावे में डाल दिया। अब आज से तुम असली बाप की गोदी में रहा करो, अब गोदी छोड़कर दूसरी ठौर मत जाना वरना दुःख पर दुःख भोगोगे। शिष्य कहता है, जो आज्ञा, गुरुदेव!

लेकिन अभागा शिष्य भगवान् को भूलकर फिर माया की गोदी में जा बैठा। माया तो सौतेली माँ है। सौतेली माँ भी कभी दूसरे के बच्चे को सुख दे सकती है ? उसमें वात्सल्य प्रेम का अंकुर ही नहीं है। कहाँ से सुख देगी ? नकली वस्तु कभी असली नहीं हो सकती। अतः दुःख पर दुःख होगा ही।

अब गौर से विचार करना होगा, जैसे कोई भी घर से बाहर किसी कारण वश चला जाता है, तो जब तक वह अपने घर पर नहीं आ जाता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता। विश्राम तो उसे अपने घर पर ही मिल सकता है। अन्य किसी जगह पर नहीं।

इस प्रकार जीव जब तक अपने असली बाप के घर अर्थात् भगवान् के घर नहीं पहुँच जाता तब तक जीव को शान्ति कहाँ ? क्योंकि जीव का स्थायी घर तो भगवद्धाम ही है। यह तब ही उपलब्ध हो सकता है जब उसे कोई ज्ञानरूपी सन्त की उपलब्धि हो जाये तो अज्ञान रूपी नैन खुल जाये तथा सच्चे मार्ग पर गमन कर

अपने स्थायी घर पर पहुँच जाये, जहाँ से उसे वापस आना न पड़े। तो सदैव के लिए अमृतसिंधु उसे उपलब्ध हो जाये।

जिस कन्या का विवाह हो जाता है वह उसके अन्तः करण में इतना गहरा बैठ जाता है कि वह 1% भी स्वयं के पीहर का नाता नहीं मानती, अपने पति के गाँव का नाता, पति के भाई, माँ–बाप का नाता 100% मान लेती है। एक रात में इसका मन एकदम बदल गया।

लेकिन शिष्य का नाता जो कि भगवान् का नित्यदास है, वह पक्का नहीं होता। इसका मुख्य कारण है, इसके पूर्वजन्म के संस्कार, जो तामस, राजस तथा सात्विक हैं। वह इतने रचे पचे हैं कि यह संस्कार उसका भगवान् से नाता जुड़ने नहीं देते। माया मोहित शिष्य इनमें फँसा रहता है। इसलिए भगवान् से पक्का नाता जुड़ नहीं पाता।

पहले जन्म की भक्ति कमजोर है, वैसे भक्ति तो सदैव अमर रहती है। जैसे जड़भरत के पूर्वजन्म के भक्ति संस्कारों ने उसे दूसरे जन्म में भी प्रेरित कर संतों की कुटिया के पास रहने को बाध्य कर दिया तथा वह संस्कार उसे हिरण जाति से अलग करते रहे। जिसने पूर्वजन्म में भक्ति की होगी वह सन्त संग पाकर शीघ्र जागृत हो जाती है।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम।।

मनुष्य चाहे निष्काम हो या सकाम (फल का इच्छुक) हो या मुक्ति का इच्छुक ही क्यों न हो, उसे पूरे सामर्थ्य से निरन्तर हरिनाम करते हुए भगवान् की भक्तिमय सेवा करनी चाहिए, जिससे उसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सके, जिसकी परिणति अंत में शुद्ध भक्ति में हो जाती है।

(श्रीमद्भागवतम् 2.3.10)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 13/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरूद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर भाव रस बढ़ने की प्रार्थना के साथ सप्रेम हरिस्मरण।

शिशु भाव परम सर्वोत्तम

भगवान् के पिता का सम्बंध करना उचित नहीं है। पिता का सम्बंध तो नित्य है, जैसे दशरथ पिता थे, नन्दबाबा, वसुदेव जी, कर्दम-देवहूति आदि आदि भगवान् के नित्य पार्षद हैं। यह सम्बन्ध साधारण जीव नहीं कर सकता। इसमें त्रुटि होने का भय रहता है।

गोपियों का मधुर सम्बन्ध भी नित्य सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध भी साधारण व्यक्ति नहीं निभा सकता। इस सम्बन्ध में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य रहना परमावश्यक है। दास, सखा, शिशु आदि कोई भी सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु यह भी भजन के प्रभाव से भगवान् ही देते हैं, अपने मन से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

शिशु सम्बन्ध के कई शास्त्रीय उदाहरण हैं-

श्रीमद्भागवत महापुराण में 10 वें स्कन्ध के 14 वें अध्याय में श्लोक संख्या 12,13 में स्वयं ब्रह्माजी भगवान् से कह रहे हैं कि, क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?

श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार ने गीता के आरम्भ में लिखा है कि तुम ही मेरे माता-पिता व सखा आदि हो। इसमें भी प्रथम शिशु का भाव वर्णित किया है। गौड़ीय सम्प्रदाय की भजनगीति में अपने को शिशु बोला है। रामायण में भी भगवान् ने स्पष्ट कहा है

कि 'चर–अचर सभी मेरे द्वारा उपजाए हैं, अतः सभी का मैं पिता हूँ।

राक्षस तो भगवान् को शत्रुभाव से वर्तते थे फिर भी भगवान् ने उनका उद्धार किया। तो क्या शिशु भाव में कमी हो सकती है ?

अब प्रश्न उठता है कि, शिशु तो सेवा करवाता है। अतः यह भाव निम्नकोटि का है।

इसका प्रत्यक्ष उत्तर है कि शिशुभाव उच्चकोटि का है। सेवा किसे कहते हैं ? सेवा उसे कहते हैं कि जिसकी सेवा की जाये उसको सुख मिल सके। शिशु भाव में माँ–बाप को हर क्षण शिशु से सुख मिलता है। बच्चा ठुमक–ठुमक कर चलता है, बच्चा हँसता है, बच्चा मिट्टी में लिप्त हो जाता है तो उसे देख–देख कर माता–पिता को रात–दिन सुख मिलता रहता है। जब बच्चा बड़ा हो जाता है, तो माँ–बाप उसकी तरफ देखते तक नहीं।

पशु–पक्षी के वात्सल्य का प्रत्यक्ष आचरण हम सामने देखते रहते हैं कि पक्षी अपने बच्चे से कितना प्यार करता है। चौबीस घंटे उसकी तरफ उसकी चीं–चीं की पुकार से, उसकी बोली से, माँ–बाप आकर्षित होते रहते हैं।

एक बन्दरिया को देख लो। उसका बच्चा मर जाता है, फिर भी वह 6 माह तक छाती से चिपकाए रहती है। बड़ा हो जाने पर उसकी तरफ देखती भी नहीं। शिशुभाव वाले भक्त को भगवान् अष्टप्रहर याद रखते हैं। अन्य भाव वाले भक्त को समय–समय पर याद रखते हैं। माँ–बाप छोटे शिशु को एक क्षण भी याद से दूर नहीं करते। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए।

करोड़ों–अरबों भक्तों में से किसी एक को, भगवान् उसके भाव के अनुसार शिशु भाव प्रदान करते हैं। इतने सारे भक्तों में किसी एक को ही शिशु भाव क्यों देते हैं ? इसका कारण है, भगवान् को अष्टप्रहर उस शिशु का ध्यान रखना पड़ता है। उसकी सेवा में रत रहना पड़ता है। लेकिन यह भाव तब ही देते हैं जब

भक्त 100% उन्हें अपना पिता समझता है। उनके लिए तड़पता रहता है।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद् गद गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

शिशु भाव रखने पर विरोधाभास हुआ है, अतः शास्त्रीय वचनों के अनुसार भक्त-चरणों में अर्पित कर रहा हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। किसी शक्ति ने लिखवाया है। मैंने नहीं लिखा है।

हे कृष्ण प्यारे! अपने दर से ना टालो।

इस शिशु का इकरार, मुझसे लिखा लो।

मैं आपका, आप हैं जो मेरे माता-पिता।

ये झूठा संसार बस आपसे ही रिश्ता।

रिश्ता निभावोगे न, तो क्या देखोगे पिसता।

गोपियों ने कौन सा सत्संग किया था?

फिर भी कृष्ण उनके पीछे-पीछे फिरा था।

केवल अहम् को कृष्ण-चरणों में चढ़ाया।

आठों याम श्याम को दिल में बिठाया।

घर में ही रहकर सब कारज निभाया।

न जप-तप किया, केवल आँखों से आँसू बहाया।

अनिरुद्ध दास जो तेरा शिशु कहाया।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 01/01/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

शास्त्रीय ज्ञान तथा राम वचन

मधुर भाव अर्थात् सखी, मंजरी व कान्ता भाव अत्यन्त उच्चकोटि का भाव है। कान्ता भाव केवल मात्र श्रीराधाजी का होता है। सखी भाव राधाजी के वपु (शरीर) से प्रकट हुआ है। सखी, मंजरी भाव केवल मात्र गोपियों का होता है। रामावतार में संतों ने श्रीराम से प्रार्थना की थी कि 'हम पर भी कृपा होनी चाहिए, कब कृपा करेंगे भगवान् ?' श्रीराम ने कहा, 'जब मैं द्वापरयुग में कृष्ण रूप से अवतरित होऊँगा तब तुम गोपों के घर में जन्म लेना, उस समय मैं तुम्हारे संग में लीला विहार करूँगा। उस समय का इंतजार करते हुए अपने भक्तिपथ पर अग्रसर होते रहो।'

यही संत जन कृष्ण अवतरण पर गोपों के घर में प्रकट होकर गोपी रूप से (साधन सिद्ध) गोपियाँ कृष्ण के संग लीला विहार में सम्मिलित हुए तथा श्रीराधाजी के वपु से प्रकट होकर अन्य गोपियों ने श्रीकृष्ण लीला विहार में संयोग किया। यह सब गोपियाँ नित्य हैं। वह कृष्ण को सुख प्रदान करती रहती हैं।

मधुर भाव को एक साधारण भक्त प्राप्त नहीं कर सकता। एक साधारण भक्त का अन्तःकरण निर्मल नहीं रहता। छः वेग और छः दोष हृदय को दूषित करते रहते हैं। यदि भक्त उक्त भाव का अनुसरण करता है तो अपराधों के चंगुल में फँसकर घोर चरम सीमा का रौरव नरक में दारुण भोग अनन्त युगों तक करता है।

मधुर भाव जो गौर पार्षदों में दृष्टिगोचर होता है, यह सभी नित्यशः मधुर भाव से प्रेरित होकर गोलोक धाम से प्रकट हुए हैं, अतः उनकी पद्य रचना मधुर भाव में वर्णित हुई है।

भगवान् को भक्त, पुत्र के रूप में भजन करते हैं। मैं भगवान् का पिता हूँ, यह भाव भी अपराधों से वंचित नहीं है। भगवान् के साथ पिता का सम्बन्ध भी नित्य ही है। राजा दशरथ ही नन्दबाबा तथा कपिल भगवान् के पिता कर्दम ऋषि के रूप में अवतरित हुए थे।

जब-जब भगवान् के अवतार होते हैं तब तब दशरथ जी ही भिन्न-भिन्न नामों से अवतरित होते हैं। अतः भगवान् को बेटा मानकर (इस भाव से) भजन करना खतरे से खाली नहीं है, अपराध का भागी होना पड़ता है।

मधुर भाव केवल गोपीगण के लिए ही है, जो राधाजी के वपु से प्रकट है। सखा भी कृष्ण के वपु से प्रकट हैं। बहुत ही उच्चकोटि का भक्त इस श्रेणी में आ सकता है, जो अनन्तकोटि भक्तों में कोई एक ही होगा। जो मधुर भाव अपनाता है, संकट में फँस जाता है।

अब शेष रहा शिशु भाव, जो भगवान् को अपना पिता समझकर उस भाव से भजन में रत है। यह सर्वश्रेष्ठ भाव के रूप में विचार करणीय है। सभी भगवान् से प्रकट हुए हैं, अतः सभी उनके पुत्र ही हैं। इस भाव में कहीं भी गिरने का खतरा नहीं है लेकिन अपने सामर्थ्य से यह भाव मिलता नहीं है। **यह भाव भी हरिनाम ही देगा, जब भक्त इस में रत रहकर ग्यारह करोड़ हरिनाम स्मरण सहित करेगा।** क्योंकि भगवद्गीता में भगवान् अर्जुन को बता रहे हैं कि, 'जिस भाव से भक्त मेरा भजन करता है, मैं भी उसी भाव से उसका भजन करता हूँ। जिस प्रकार भक्त मुझे भजता है, मैं भी उसी प्रकार से उसको भजता हूँ।'

शिशु से भगवान् सदैव सुख मानते हैं। माँ-बाप को शिशु पालन में कष्ट न होकर सुख ही होता रहता है। उसकी हलचल, तोतली बोली माँ-बाप को आकर्षित करके सुख-विधान करती

रहती है। शिशु भाव में भक्त दुर्गुणों से बचा रहता है, कोई वेग आदि उसे सताते नहीं हैं, अतः अन्तःकरण शुद्ध होने से भगवान् का प्यारा रहता है।

रोते रहना ही उसके जीवन का आधार है, जो माँ–बाप को अपनी ओर खींचकर माँ–बाप की सुखमय सेवा करता रहता है। इस भाव को कौन काट सकता है, अर्थात् कोई नहीं। यदि यह भाव गलत होता तो अश्रुपुलक से वंचित रहता। ऐसा तो दिखाई नहीं देता, अतः यह भाव सर्वोत्तम है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

राम का वचन (यह वचन शिशु भाव में रहता है)

सेवा का तात्पर्य क्या होता है? इसका गहराई से विचार करना होगा। जिस सेवा से सेवाकारी को सुख का विधान हो, उसे सुख हो वही सेवा सर्वोत्तम होती है।

जीव भगवान् का नित्यदास है अर्थात् नित्य पुत्र है क्योंकि भगवान् ने उसे जन्म दिया है, तो भगवान् उसका नित्य पिता है। यह अकाट्य सिद्धान्त है। इसका कोई भी विरोध नहीं कर सकता। भक्त दास, सखा, शिशु आदि भाव से भगवान् की सेवा भक्ति करता रहता है। कलिकाल में भक्ति का उद्गम केवल मात्र हरिनाम ही है। जो इसे अपनाकर ग्यारह करोड़ हरिनाम को मनसहित उच्चारण करता रहता है, उसे कृपा कर के भगवान् ही भाव सम्बन्ध अर्पण कर देते हैं। यह सम्बन्ध ही भगवान् में प्रेम उदय करा देता है। जब तक भगवान् से कोई भी नाता (सम्बन्ध) नहीं होगा, तब तक भगवान् के प्रति प्रेम का अंकुर नहीं दिखाई देगा एवं न संसारी आसक्ति दूर हो सकेगी। जब तक संसार में आसक्ति रहती है, तब तक भगवान् के प्रति सच्चा सेवा भाव जागृत नहीं होगा। जब सेवा भाव नहीं जागेगा, तो भक्ति केवल दिखावा मात्र होगी। यह भी, नहीं होने से तो उत्तम ही है। भक्ति कभी नष्ट नहीं होती। मरने के बाद, जन्म होने पर फिर से उदय हो जायेगी। जैसे आठवीं कक्षा

पास कर के दूसरे पाठशाला में नवीं कक्षा में भर्ती होना पड़ता है, आठवीं में नहीं।

भगवान् मेरा पुत्र है इस भाव से भजन करना तथा मधुर भाव से भजन करना, एक साधारण भक्त की यह सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि यह छः वेगों तथा छः दोषों से लिपायमान रहता है। वह यदि उक्त भाव में भजन करता है तो घोर अपराध करता है। भगवान् मेरा पुत्र है ऐसा भाव रखकर भजन करने में बहुत बड़ी चेष्टा की आवश्यकता है। माँ बाप, बेटे की हर समय, हर क्षण देखभाल रखते हैं। ऐसा ध्यान रखना एक साधारण भक्त से नहीं हो सकता।

शिशु की कितनी देख–रेख करनी पड़ती है। यह एक साधारण भक्त नहीं कर सकता अतः गहरे संकट में फँस जाता है, अपराध ही हाथ में आता है।

शास्त्रों में देखा जाता है, कि अनन्तकाल तक जंगलों में जाकर भक्त भगवान् की भक्ति करते हैं, तब भगवान् प्रसन्न होकर भक्त के पुत्र होकर अवतरित होते हैं। भगवान् के साथ उनका शिशु बन के तथा सखा के, दास के भाव में भक्त का रत रहना सम्भव है। यह भाव भी ग्यारह करोड़ जप स्मरण पूर्वक करने पर स्वयं हरिनाम ही भक्त को प्रदान करता है। जो योगभ्रष्ट भक्त हो उसे शीघ्र ही इसी जन्म में सम्बन्ध ज्ञान का लाभ मिल सकता है।

स्वयं की शक्ति से सम्बन्ध ज्ञान नहीं हो सकता। जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं है, भक्ति केवल कैतव (कपट) है। सम्बन्ध ज्ञान के अभाव में प्रेम हो ही नहीं सकता। यह अकाट्य सिद्धान्त है।

सम्बन्ध ज्ञान होने पर भक्त में हरिनाम आरम्भ करते ही पुलक अश्रु अष्ट सात्विक विकार नजर आने लग जाते हैं, यही सम्बन्ध ज्ञान की पहचान है। जो भी ऐसे भक्त के नजदीक होगा उसे भी चुम्बक की तरह आकर्षित कर अश्रु पुलक स्वतः ही करा देगा।

एक सामान्य सा विचार है कि सभी भगवान् के पुत्र हैं क्योंकि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों को रचने वाले भगवान् ही हैं, अतः सभी उनके पुत्र समान हैं। ब्रह्माजी ने भी भागवत में भगवान् को कहा है कि, 'मैं आपका पुत्र ही तो हूँ!' जब ब्रह्मा ही पुत्र हैं तो सभी पुत्र हो गये। रामायण में श्रीराम ने भी कहा है कि, 'मैंने सभी को पैदा किया है, अतः सभी मेरे पुत्र हैं।'

शिशु भाव में आँखें बंद कर के चलते रहो कोई गिरने का डर नहीं है। न अपराध का और न प्रतिष्ठा का लोभ। भक्त जैसे भाव में रत रहता है, भगवान् उसे उसी भाव से भक्ति करने देते हैं। भगवद्गीता भी यही बता रही है कि जैसा भक्त करता है, मैं भी वैसा ही करता हूँ। दास व सखा भाव भी उत्तम है। परन्तु, मधुर व पिता भाव खतरे से खाली नहीं है। गौरपार्षदों के भाव पहले से ही अलौकिकता लिए हुए हैं। उनकी चरण रज लेने में ही सार्थकता है।

"यदि कोई लाखों सृष्टियों की सम्पन्नता अथवा शान को भी एकत्र करले तब भी वह शायद ही कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा के एक छोटे से कण के बराबर हो। कृष्ण का पवित्र नाम ही मेरा जीवन है। यही मेरे जीवन का परमलक्ष्य है। यही मेरे लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।"

(श्रील रूप गोस्वामी की पद्यावली से उद्धृत)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 06/01/2008

परमादरणीय श्रद्धेय व प्रेमास्पद श्रीभक्तिप्रचार विष्णु महाराज जी (श्रीचन्द्रशेखर जी) के युगल चरण कमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का असंख्यबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना–

माधुर्य भाव (रस) सर्वोच्च भाव

यह माधुर्य भाव (कान्ता भाव) केवल मात्र श्रीराधाजी में ओत–प्रोत है। इससे कुछ निम्नतर मंजरी, सखी भाव गोपीगणों में विद्यमान रहता है। साधारण साधक इस भाव की तरफ दृष्टि भी नहीं डाल सकता, यदि साधक इस ओर चित्तवृत्ति लगाता है तो घोर संकट में फंस जाता है। नरकों में घोर कष्टदायक नरक, रौरव नरक में अनन्तकाल युगों तक गिरकर भोग भोगता रहता है।

माधुर्य भाव में वही रत रह सकता है, जिसने छः वेग–वाणी वेग, मनोवेग, क्रोधवेग, जिह्वा वेग, उदर वेग और उपस्थ वेग से भगवद् कृपा से छुटकारा पा लिया हो तथा छः दोष अत्याहार, जडविषयों के लिए प्रयास, ग्राम्यचर्चा, असत् संग, अस्थिर सिद्धांत तथा इन्द्रिय तर्पण में रुचि से निवृत्त हो गया हो। स्वच्छ अन्तः–करण तथा इन्द्रिय तर्पण कर लिया हो।

वाचो वेगं मनस् क्रोध वेगं जिह्वा वेगं उदर उपस्थ वेगं।
एतान वेगान् यो विषयेत् धीर सर्वामपीमां पृथ्वी स शिष्यात्।।

(उपदेशामृत श्लोक क्र.1)

वाणी वेग, मनोवेग, क्रोध का वेग, जिह्वा वेग, उदर वेग तथा जननेन्द्रिय का वेग इन वेगों तथा आवेगों को जो नियंत्रित करता है, ऐसा धीर व्यक्ति ही इस पृथ्वी पर शिष्य बनाने में समर्थ गुरु है।

गोपियों में से कुछ गोपियों ने रामावतार के समय में भगवान् से प्रार्थना की थी, तब वह रामकृपा से गोपों के घरों में अवतरित हुई थीं, कुछ गोपी श्रीराधाजी के वपु (शरीर) से प्रकट हुई थीं, कुछ गोपी आदिकाल से ही भगवान् के सुख का वर्धन करती थीं।

नये साधक को इस माधुर्य भाव में पैर रखना खतरे से खाली नहीं है। यदि कोई साधक इधर चित्तवृत्ति लगाता है, तो महा अपराध करने के कारण, वह माया द्वारा घोर दण्ड का पात्र बन जाता है।

माया द्वारा दण्डविधान–

जो मंजरी भाव आचरण करहि। रौरव नरक कोटि युग परहि।।
त्रिजग योनि पुनि धरहि शरीरा। बहुत काल तक पावहि पीरा।।

(बड़ों की नकल करना खतरनाक है)

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने आदेश दिया था कि तुम भी रासपंचा–ध्यायी मत पढ़ना एवं रास जहाँ भी हो रहा हो वहाँ भूलकर भी मत देखना। यदि देखोगे या भागवत की रासपंचाध्यायी पढ़ोगे तो साधन पथ पर रुक जाओगे।

आपके लिए मैं कुछ कह नहीं सकता आप मंजरी भाव के पात्र हो सकते हो, आपका अन्तःकरण निर्मल है। आप पर गुरुदेव और ठाकुर जी की प्रत्यक्ष कृपा है। तब ही तो 21 मठों का संचालन आपके द्वारा हो रहा है। मैं तो अल्पज्ञ, गाँव का गँवार हूँ, मैं तो नीची Stage का साधक हूँ। मुझपर आपकी कृपा सदैव रहे, यही प्रार्थना है।

यह प्रार्थना मैं आपसे जरूर करता हूँ कि अन्यों को मंजरी भाव के प्रति प्रेरित न करें, वरना आप पर अपराध का भार गिर पड़ेगा। सभी तो इस योग्य नहीं बन सकते, अरबों में कोई एक ही इस भाव में रत हो सकता है। वैसे मैं समझता हूँ, इस भाव का अनुगमन करना असम्भव ही है।

मेरे गुरुदेव तथा श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज जी को भगवान् ने मंजरी भाव से ही पृथ्वी पर भेजा है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी भी मंजरी भाव से (कमल मंजरी) इस धरती पर आविर्भूत हुए हैं। सभी तो मंजरी भाव को नहीं अपना सकते।

गौरपार्षद पुस्तक में से भी यह जान पड़ता है कि कोई गोपी तथा कोई गोप बालक गौरपार्षदों के रूप में आविर्भूत हुए हैं। एक साधारण साधक इस भाव का कदापि अधिकारी नहीं हो सकता। उन पार्षदों ने जो पद्य रचना की है वह मंजरी भाव की ही होनी चाहिए। महान् पुरुषों का आचरण करना खतरे से खाली नहीं होता। शिवजी ने विष पी लिया, और कोई पी लेगा क्या?

स्वयं को टटोल कर देखना होगा कि तू किस Stage का साधक है। उसी Stage अनुसार साधन करना श्रेयस्कर होगा। मंजरी भाव में रत रहने वाला साधक भगवान् कृष्ण को अष्टयाम स्मरण करता रहता है। उसे संसार सूना-सूना प्रतीत होता है। उसे एक क्षण युग के समान जान पड़ता है। वियोग में रोता रहता है ऐसी अवस्था तो किसी में दिखाई नहीं देती।

केवल मात्र नामनिष्ठ को हरिनाम (भगवान्) ही सम्बन्ध ज्ञान प्रदान करता है। किसी को दास, किसी को शिशु, किसी को सखा आदि भाव देते हैं। मंजरी भाव तो बहुत ही दुर्लभ है। भगवान् अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों की रचना कर इसमें भक्तों के साथ लीला करते रहते हैं। अतः साधारण तौर पर सभी उनके पुत्र समान हैं ही। स्वयं ब्रह्माजी ने भागवत में भगवान् से बोला है, 'क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?' जब ब्रह्माजी ही पुत्र श्रेणी में आ जाते हैं, तो साधारण जीव तो स्वतः ही पुत्र श्रेणी में आ गया। शिशु भाव में दास, सखा इत्यादि सभी रसों का समावेश है।

हरिनाम करते हुए मन चंचल रहता है, तो उसे सम्बन्ध ज्ञान की प्राप्ति होना बहुत दूर की बात है। स्मरणपूर्वक ग्यारह करोड़ जप होने पर सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

शिशु भाव में न कोई धोखा है, न अपराध, न प्रतिष्ठा की चाह। निर्भर रहकर माँ-बाप को याद कर रोते रहना ही इसका सहारा है। भगवान् को शिशु की चंचलता पर सुख मिलता रहता है। सेवा वही उत्तम है, जिससे सुख मिले।

अब प्रश्न उठ सकता है कि, शिशु भाव में तो भगवान् से सेवा ली जाती है। इसका उत्तर है कि, जिस सेवा से सेवा लेने वाले को सुख मिले वही सेवा सर्वोत्तम है। भगवान् का पुत्र बनकर साधन करने पर भगवान् को पुत्र की चंचलता पर, उसकी हँसी और तोतली बोली पर माँ-बाप के जैसा सुख मिलता है। पुत्र बाप की कोई छोटी सी सेवा भी कर देता है, तो बाप हँस-हँसकर लोट पोट हो जाता है, उसको गोद में चढ़ाकर प्यार भरा चुम्बन देता है। उसे सुख मिलता है।

वैसे विचार किया जाये तो सभी जीव भगवान् के पुत्र ही तो हैं। शिशुभाव निर्भयता का प्रतीक है। रोना ही माँ-बाप को खींच लाता है। माँ-बाप कठोर हो ही नहीं सकते।

गुरुदेव जी ने 1966 में लिखा था-

Chant Harinam Sweetly and Listen By Ear

शिवजी भी यही कह रहे हैं-

सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

जिसको मैं एक लाख हरिनाम करने को कहता हूँ, वह करने लग जाता है। यह मेरी सामर्थ्य नहीं है, इसके पीछे गुरुदेव का ही हाथ है। गुरुदेव की कृपा ही सबसे एक लाख हरिनाम करवा रही है।

मैं तो आपकी चरण रेणु का अल्पज्ञ भिखारी हूँ। आप की कृपा से ही मेरा साधन भजन हो सकता है। मेरे जैसे गृहस्थी में फँसे हुए का, आप जैसे महान् सन्त ही उद्धार कर सकते हैं। जो मेरे मन में था, वह मैंने आपके चरणों में अर्पित कर दिया। अत्युक्ति हो तो क्षमा करें।

तिनेर स्मरणे हय विघ्न विनाशन।
अनायासे हय निज वाञ्छितपूरण।।

मात्र शुद्ध भक्तों का स्मरण करने से जप में आने वाले विघ्नों का विनाश हो जाता है। गुरु, वैष्णवों तथा भगवान् का स्मरण मात्र समस्त कठिनाइयों का नाश करता है और मनुष्य की समस्त इच्छाओं को सहज ही पूर्ण कर देता है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत, आदि लीला 1.12-2)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 10/2/2008

परमकृपालु भक्त प्रवर तथा श्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम एवं प्रेमसहित भजन होने की करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् से सम्बन्ध के अभाव में भक्ति (भगवान में आसक्ति) केवल कपट-मात्र

साधक के अनन्त जन्म-मरण बीत जाते हैं, परन्तु संसारी आसक्ति नहीं जाती। इसका मुख्य कारण है कि, अभी भगवान् से कोई लगाव (सम्बन्ध) नहीं हुआ। जब तक भगवान् से रिश्ता नहीं जुड़ेगा, तब तक भक्ति का आविर्भाव ही नहीं होगा।

मैं जो भी भगवान् के सम्बन्ध के बारे में लेख लिख रहा हूँ, मेरे गुरुदेव के चरण नख ज्योति से हरिनाम करते हुए हृदय में उदय हो रहा है, जो शास्त्रीय ही होगा।

श्रीगुरु पद नख मनि गन ज्योति। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।
उघरहिं बिमल बिलोचन हीय के। मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।।
सूझहि राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

सम्बन्ध ज्ञान क्यों परमावश्यक है ? यह सांसारिक उदाहरण से एकदम स्पष्ट हो जाता है। एक पिता अपनी कन्या का हाथ समाज व अग्नि की साक्षी में किसी सुयोग्य युवक के हाथ में सौंप देता है। अब कन्या का सम्बन्ध पिता के घर (पीहर) से धीरे-धीरे हटकर ससुराल (पति) के घर के जनों से होता चला जाता है। संतान होने के बाद तो उसका मन पीहर में बिल्कुल नहीं रहता। जब कभी पिता के यहाँ कोई आयोजन होता है तो उसे बिना मन जबरन जाना पड़ता है, वह भी दो चार दिन के लिए।

इसी प्रकार श्रीगुरुदेव (पिता) अपनी कन्या (आत्मा) का हाथ भगवान् (पति) के हाथ में सौंप देते हैं। जीव आत्मा (कन्या) का सम्बन्ध जो माया के घर पीहर का था अब वह सम्बन्ध भगवान् (पति) से हो गया। वैसे अन्तःकरण से समझा जाये तो आत्मा स्त्रीलिंग है ही व परमात्मा (परमपति परमात्मा) पुल्लिंग है ही। सभी उसकी संतान हैं, यह निर्विवाद सत्य है ही।

जब भगवान् (पति) से सम्बन्ध बन गया तो अपने आप ही पिता (पीहर) भौतिकता का सम्बन्ध धीरे-धीरे हट्ता गया। अब भगवान् (पति) के जन-परिवार महात्माओं से प्रेम सम्बन्ध अधिक से अधिक जुड़ता चला गया। अर्थात् कन्या (आत्मा) का चाचा, ताऊ, माँ-बाप, भाई आदि का दिखावे का नाता रह गया। पति (भगवान्) के परिवार-सन्त, महात्माओं से सच्चे प्रेम का नाता जुड़ता चला गया। जब भगवान् के प्यारों से आत्मा (पत्नि) का सम्बन्ध बनता चला गया तो भगवान् रूपी पति को आत्मरूपी पत्नि प्यारी लगने लगी। अब तो भगवान् (पति) आत्मा (पत्नि) का हरक्षण ख्याल रखने लगे। पत्नि को कोई तकलीफ न हो, आवश्यक वस्तु की कमी महसूस न हो। हर प्रकार उसे सुखी देखकर राजी होने लगे।

जब तक भगवान् के साथ सम्बन्ध की स्थिति नहीं होगी, तब तक प्रेम सम्बन्ध होगा ही नहीं और अष्टसात्विक विकार, अश्रु पुलक उदय होना असम्भव ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह अवस्था कैसे आये ? इसका एकमात्र उत्तर है कि, श्रीगुरुदेव के वचनों पर पूर्णश्रद्धा हो। हरिनाम का अधिक से अधिक स्मरण हो। स्मरण कैसे किया जाये ? तो दि. 5/2/2008 के पत्र में उल्लिखित शास्त्रीय उदाहरण से हरिनाम स्मरण किया जाये। जो श्रीगुरुदेव ने आदेश देकर लिखवाया है।

जब ग्यारह करोड़ हरिनाम हो जायेगा, तब भगवान् ही अपना सम्बन्ध अन्तःकरण में उदय करा देंगे। माया का सम्बन्ध मूल सहित उखाड़ कर फैंक देंगे। अपने चरणों में सदा के लिए स्थान

प्रदान कर देंगे। सारा का सारा असत्य दुखड़ा मिटा देंगे, जो अनन्त जन्मों से भोगा जा रहा है। अतः मेरे स्नेही बंधु प्रेमी भक्तों से बारम्बार प्रार्थना है कि हरिनाम की शरण ग्रहण करो ताकि यह जीवन सफल हो सके। भूल करना बहुत बड़ी नुकसान की बात होगी। अभी से सम्भलना श्रेयस्कर है वरना पछतावा हाथ लगेगा। मानव जन्म दोबारा नहीं मिलेगा। पिछले जन्मों में भक्ति की होगी, तो भगवद् सम्बन्ध 5-7 करोड़ हरिनाम में भी प्राप्त हो सकता है। यह स्थिति भजन की तीव्रता पर निर्भर है। आतुरता के भाव पर निर्भर है।

नामाचार्य श्रील श्रीहरिदास ठाकुर के नाम के प्रति दृढ़ता के वचन–

खंड खंड हइया देह जाय यदि प्राण।
तबु आमि वदने ना छाड़ि हरिनाम।।

'यदि मेरे शरीर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दिया जाए तथा मैं अपने प्राण खो बैठूँ, तो भी मैं हरिनाम जपना नहीं छोड़ूँगा।'

(श्रीचैतन्यभागवत आदि 11.91)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी

भूलकर भी रास मत देखना

गुरुदेव का मुझे आदेश था कि तुम कभी भी श्रीकृष्ण भगवान् का रास नहीं देखना। रास देखने से तुम्हें घोर अपराध हो जायेगा। क्योंकि रास अलौकिक होता है, एवं तुम उसे लौकिक अनुभव करोगे, तो तुमसे भगवद् दोष बन जायेगा। और कभी भी श्रीमद्-भागवत के रासपंचाध्यायी का पठन मत करना क्योंकि उसमें गोपियों की भगवद् चर्चा है। उसे भी तुम लौकिक अनुभव करोगे क्योंकि अभी भजनस्थिति इतनी उच्च नहीं है। इसलिए अपराध बन जायेगा।

जो साधक गोपियों का भाव लेकर मंजरी या गोपी भाव से भगवान् से नाता, सम्बन्ध जोड़ता है वह नरकगामी होता है क्योंकि उसका अन्तःकरण अशुद्ध है। न उनके वाणीवेग, उपस्थ वेगादि गये हैं न छः दोष गये हैं। जब तक उक्त दोष नहीं जायेंगे उसका गोपी भाव से भजन करना बहुत बड़ा दोष है। अन्य सम्बन्ध भगवान् से होने में कोई दोष नहीं होगा। संबंध ज्ञान तो स्वयं भगवान् ही दिया करते हैं, जब भक्त की उच्च स्थिति हो जाती है। **मनगढ़न्त भाव ठहरेगा नहीं थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जायेगा। हरिनाम से ही भाव प्राप्त होगा।**

जयपुर में एक सज्जन गोपीभाव से भजन करते रहते थे। मैंने श्रीगुरुदेव को सब बातें खोलकर कहीं तो उन्होंने कहा कि, कभी भूलकर भी गोपी भाव से भजन नहीं करना। जब तक अन्तःकरण में दुर्गुण भरे पड़े हैं, तब तक इस भाव की स्वप्न में भी चेष्टा न करना।

एक महाराज कह रहे हैं कि, 'मधुर भाव सर्वश्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध से भजन करना श्रेष्ठ है।' बिल्कुल ठीक है। परन्तु मन भी तो शुद्ध निर्मल होना चाहिए। पार्षदगण तो गोलोक धाम से पधारे

थे। उनका मधुर भाव होना सम्भव था ही। भक्ति विनोद ठाकुर जी तो मंजरी का अवतार थे। अतः उनका भाव मंजरी का होना जरूरी था। हम नीची स्थिति के साधकगण हैं अतः उक्त भाव में खतरा है। नरक भोग करना पड़ेगा।

शिशु भाव तो एकदम निर्मल है। शिशु में न ईर्ष्या–द्वेष है, न कोई इन्द्रिय वेग है और न कोई दोष है। अतः यदि भगवान् ने यह भाव अर्पित कर दिया तो इससे सर्वश्रेष्ठ भाव क्या हो सकता है! इसका कोई विरोध कर नहीं सकता। देखा जाये तो सभी चर–अचर प्राणी भगवान् के पुत्र समान हैं ही। उन्हीं से सब जन्मे हैं, अतः वह सबके पिता हैं ही। शिशु भाव में 1% भी गिरने का डर नहीं है। कहते हैं कि, इसमें तो भगवान् की सेवा का अभाव है। सेवा किसे कहते हैं ? जिसमें सेवा कराने वाले को सुख मिले। तो यह स्पष्ट ही है कि, शिशु की चंचलता पर माँ–बाप को वात्सल्य सुखानुभूति होती है। शिशु की चपलता पर आनंद आता है। जो शत्रुभाव से भजन करता है जैसे कि राक्षस इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं, उन्हें भी सद्गति मिल गई, तो जो भगवान् को अपना बाप समझकर भजन करेगा, क्या उसे नरक मिलेगा ? कैसी विडम्बना है। हँसी आती है। त्रिलोकी में इसे कोई काट नहीं सकता।

भगवान् शीघ्र दर्शन देते हैं केवल मात्र एक ही उपाय है शिशु की तरह रोने से। भगवान् के लिए बिलखन ही भगवान् को जबरन आकर्षित करती है।

अब प्रश्न उठता है कि रोना तो बस की बात नहीं है, फिर रोना कैसे आये ? इसका सरलतम सुलभ उपाय है कि मृत्यु की याद तथा ऐसा चिन्तन—फिर से मानव योनि प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है यहाँ की सभी आराम की वस्तुएँ नश्वर हैं तथा दुःखदायी हैं, सुख केवल दिखता है, सुख है नहीं। यदि ऐसी बाहरी स्थिति अन्तःकरण में जम जाये तो रोना आना सहज है।

विचार करे कि, यहाँ संसार में कोई अपना नहीं है। सभी स्वार्थी हैं, जब किसी से मतलब होगा तब तो पास में आकर

छल–कपट पूर्वक मीठी बातें बनायेगा तथा जब कोई मतलब नहीं होगा तब इधर देखेगा भी नहीं, चाहे वह कितने भी कष्ट में कराह रहा हो। यह है संसार का प्यार। स्वयं की धर्मपत्नी ही बुढ़ापा आने पर दुत्कार देती है, अंट–शंट बक देती है, तो अन्य सम्बन्धियों की तो बात ही क्या है! अपना शरीर ही दुश्मन बन कर पीड़ा देता है।

केवल मात्र भगवान् ही अहैतुक दयावान हैं। वो ही तेरा प्यारा सम्बन्धी है। तू उसका है, और वो ही तेरा है ऐसा दृढ़ता से अन्तःकरण में बैठ जाये तो फिर क्षण–क्षण में रोना ही रोना स्वतः ही आने लगता है। ऐसी स्थिति कब आये, जब सच्चे भक्त का संग मिल जाये तो सहज ही में उक्त स्थिति प्रकट हो पड़ेगी। ऐसा सच्चा सन्त इस धरती पर ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। केवल मात्र भगवान्, सन्तों व गुरुदेव की कृपा से ही मिल सकता है। यह तब ही मिल सकता है जब साधक का सच्चे रूप से मन अकुलाये। छल–कपट ही संत न मिलने की मूल रुकावट है।

अन्तःकरण में ही भगवान् का वास है। यह अन्तर्यामि मन का सभी संकल्प–विकल्प जानते हैं। इसमें (मन में) जब तक संसार बसा हुआ है, तब तक भगवान् की अनुभूति होना सम्भव नहीं है। जब तक मूल उद्देश्य भगवद् प्राप्ति का नहीं होगा और भगवद् प्राप्ति व दर्शन पाने की सच्ची अकुलाहट सहित गहरी भूख नहीं होगी तब तक भगवान् बहुत दूर हैं। भगवान् नजदीक से नजदीक तथा दूर से दूर हैं। यह साधक की तीव्र भूख पर निर्भर है।

भगवान् तो सबके पिता हैं। क्या पिता भी कभी अपने पुत्र का अकल्याण करता है ? पुत्र ही पिता की तरफ देखता तक नहीं, अतः किसी की शरण में न होने से दुःख से रोता फिरता है। इसमें किसका कसूर है, पिता का ? पिता तो हाथ फैलाए खड़े हैं, परन्तु पुत्र संसारी खेल में मस्त है, उधर देखता तक नहीं। अतः दुःख पर दुःख भोग रहा है।

कहते हैं, पहले तो रोना आता था, अब तो एक बूंद भी आँखों से नहीं गिरती। इसका खास कारण है कि, मन में संसारी वासना

की गंध घुस गई तथा सच्चे संग से दूर हो गए। संग छोड़ते ही दीपक बुझ गया, अतः अंधेरा आने से टक्कर खाते रहो इसमें समझाने वाले क्या करें ? गलती खुद की है, जान बूझकर मन को संसार के कीचड़ में फंसा लिया। अतः संत का संग जरूरी है। जहाँ सच्चा भक्तिनिष्ठ महात्मा हो उसको छोड़ना बड़ा खतरनाक है, फिर से संसारी बदरंग मन पर चढ़ जाएगा। यदि भक्ति से भगवान् को प्राप्त करना हो, तो सच्चे महात्मा का संग कभी भूलकर भी नहीं छोड़ें, वरना माया आकर आक्रान्त कर लेगी। अगर गृहस्थ हो तो सब कर्म भगवान् का समझकर करते रहो तो माया दूर से ही त्याग देगी। अतः सच्चा रोना-बिलखना ही भगवद् प्राप्ति का सच्चा रास्ता है। जैसे गौरहरि ने संसार को सिखाया है।

चैतन्य मंजूषा

(श्रीमद्भागवत की एक टीका)

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद् धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमार्थो महान्
श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनका धाम श्रीवृन्दावन है। व्रजगोपियों द्वारा की गयी रमणीक उपासना हमारी उपासना पद्धति है। श्रीमद्भागवत अमल प्रमाण है। प्रेम सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है। श्रीचैतन्य महाप्रभु का यह मत है इस मत में ही हमारा आदर है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 17/2/2008
एकादशी

परमाराध्यतम भक्त प्रवर स्नेह बंधु तथा श्रीशिक्षागुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराजजी,

सबके चरणों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा वैराग्य का चोला पहनाने की प्रार्थना!

अन्तःकरण स्पर्शी चेतावनी

समय जा रहा है, काल खा रहा है, मानव सो रहा है, समस्या पर समस्या छा रही है, दुःखों पर दुःख पा रहा है। अन्त में जन्म मरण पर जा रहा है, अनन्त काल से भवसिंधु में डूबा जा रहा है, फिर भी चेत नहीं रहा है।

अभी तो चेत जाओ, समय रहते अपना जीवन सफल करो। यह संसार दुःखों का खजाना है। सुख का तो इसमें लेश भी नहीं है। जो अनुभव होता है, सब स्वप्न की भांति झूठा है, केवल दिखता है। जब से प्राणी अपने पिता भगवान् की गोद से बिछुड़ा है, तब से दुःख पर दुःख भोग रहा है। न जाने कितने पिता बनाता जा रहा है, असली पिता को भूलकर अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में भटक रहा है।

जब तक अपने पिता (हरिनाम) को हृदय से नहीं पुकारोगे तब तक समस्याओं का अन्त नहीं पाओगे। इसलिए श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का आविष्कार किया है। इसमें जोर से भगवान् को पुकारना ही होता है। जोर से न पुकारने से मन इधर-उधर भटक जाता है। जब आदत में आ जाता है, तब धीरे-धीरे जप में भी मन स्थिर हो जाता है।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी की उक्ति –

बड़ दुःखे डाकि बारबार।

सीता महारानी की उक्ति –

जेहि विधि कपट कुरंग संग धाम चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहत हरिनाम।।

डाकि व रटत– का आशय है कि, जोर से पुकारना। श्रीगौरहरिजी जोर से बोलते थे, हा कृष्ण! तुम कहाँ हो? कहाँ जाऊँ, कहाँ पाऊँ आपका दर्शन? अतः प्रथम में जोर से हरिनाम करना ही पड़ेगा। बाद में मार्ग खुल जायेगा।

गृहस्थ को सब तरह की सुविधा है। सच्ची कमाई करो। उससे शक्ति भर सन्त सेवा करो। अधिक से अधिक हरिनाम करो। रटन से प्रेमावस्था शीघ्र उदय हो जाती है। शिव की उक्ति–

पुन्य एक जग में नहीं दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।
सानुकूल तिन पर मुनि देवा। जो तजि कपट करे सन्त सेवा।।

जो भी गृहस्थी का काम करो भगवान् का समझकर करो तो 24 घंटे का भजन बन जायेगा। पानी पीओ तो भगवान् को मन में पिलाकर (भोग लगाकर) पीओ तो भगवद्चरणामृत बन जाएगा। प्रसाद पावो, तो एक एक ग्रास में हरिनाम करते रहो तो जिह्वा वेग समाप्त होकर अन्तःकरण में अष्टसात्विक धारा बहने लगेगी। हरिनाम में निरन्तर मन लगने लगेगा। इसमें 1% भी संशय न समझना। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। हरिनाम जोर से करने पर थकान होगी। बाद में धीरे–धीरे भी होने से मन स्थिर होने लगेगा।

उदाहरण– अध्यापक बच्चों से जोर–जोर से पहाड़े बुलवाते हैं। एक बच्चे को खड़ा करके उससे जोर से बुलवाते हैं। उसके पीछे सब बच्चे जोर–जोर से बोलते हैं। बाद में धीरे–धीरे भी याद हो जाते हैं।

आज तक जितने भी पत्र मेरे द्वारा लिखकर आप के चरणों में सेवा हेतु भेजे गये हैं, उन पत्रों में मेरे मन के उद्गार नहीं हैं।

इनमें मेरे गुरुदेव व ठाकुरजी साक्षी हैं। यदि कोई भी साधक मेरी उक्त बातों को मनगढ़न्त समझेगा, उसे न तो भक्ति में कोई लाभ होगा, बल्कि अपराध का भागी होगा।

विचार करो, मुझे तो आप साधकों से कुछ लेना देना नहीं है, न किसी तरह का मुझे लोभ है, न मुझे प्रतिष्ठा की भूख है। यदि प्रतिष्ठा की भूख होती तो मेरा 3 लाख हरिनाम कब का छूट गया होता। विरहाग्नि बुझ जाती। ऐसा तो नहीं हो रहा है।

मुझसे अदृश्य शक्ति जो भी मुझे प्रेरणा करके लिखवाती रहती है, यह मेरी भक्तों की सेवा का द्योतक है। इससे प्रत्यक्ष में सभी साधक लाभान्वित होते जा रहे हैं। विरोध करने वालों से मैं बराबर क्षमा मांग रहा हूँ। मैं इन पत्रों को नहीं छपवाऊंगा। जो भगवान् का प्यारा होगा, जिसकी सुकृति अधिक होगी जिसको भगवद् भूख व प्रेम होगा वह स्वयं ही Photostate करवा कर ले लेगा। मुझे ठाकुरजी व सद्गुरु देव जी की सेवा होने से मुझे दोनों हाथों में लड्डू उपलब्ध रहेंगे।

मुझे तो कोई नुकसान होगा नहीं। पत्रों को झूठा समझने वाले को अवश्य ही घोर अपराध का नुकसान होगा। क्योंकि उन्होंने ठाकुर व सद्गुरु देव के आदेश को ठोकर मार दी है। जो भी लेख लिखा गया है, शास्त्र के बाहर का है ही नहीं।

इसलिए मुझे यह लेख लिखना पड़ रहा है कि, किसी साधक को कोई नुकसान न हो जाये। मेरा तो कर्म था आदेश पालन करना।

मेरी तो हार्दिक कामना है कि मेरे अंतरंग स्नेह बंधु भक्त प्रवर यहाँ पर गोविन्द के दरबार में निरन्तर आते रहें, तो मेरा सहज ही में उद्धार हो जाये। मठ में रहने पर कई नुकसान नजर आ रहे हैं। कुछ-कुछ विरोधबाजी, भक्त साधकों से कपड़े धुलवाना, झूठा खिलाना, पैसा लेना आदि सेवा लेने से भजन में ह्रास हो जाता है। जितना यहाँ घर पर भजन बढ़ता है, उतना वहाँ पर नहीं बढ़ता।

भगवान् सब इंतजाम करते रहते हैं। मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। चिंता है केवल मात्र संग के अभाव की। भक्तों का संग मुझे मिलता रहे। मैं चाहता हूँ कि जो भी मेरा संग करे वह **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** का अधिकारी बन सके एवं जिन भक्तों का मैं संग करूँ तो मेरा भी बेड़ा पार हो जाये। मुझे ठाकुर की हमेशा के लिए गोद मिल जाये।

मेरे अंतरंग भक्त कोई शंका न करें। सभी कुछ भक्तों की देन है। मेरा कुछ नहीं है। संकोच करना ठीक नहीं है। गोविंद का घर, गोविंद का जन। मेरा क्या है ? मेरा तो केवल मात्र भक्त संग ही अतुल सम्पत्ति है।

मैं उसी को सेवा समझता हूँ, जो अधिक से अधिक हरिनाम का अवलम्बन करता है। जो वास्तव में भगवान् को प्राप्त करना चाहता है, वही मेरा प्यारा अंतरंग साथी है। संसार तो बंधन का कारण है। संतजन ही यह बन्धन तोड़ सकते हैं, अतः संतों का समागम ही मेरे लिए परमनिधि है।

सच्चाई छुप नहीं सकती कभी कागज के फूलों से।
सफाई आ नहीं सकती कभी झूठे उसूलों से।।

मेरे श्रीगुरुदेव के आदेशपत्रों को सभी भक्ति राहगीर पढें ताकि हरिनाम में रुचि बन सकें।

मेरी सब भक्तों से प्रार्थना है, कि मन से अधिक से अधिक हरिनाम करते रहें इसी में भलाई है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तो जीते जी पाये जा सकते हैं।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तात्त्वतः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.3)

कई हजार मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होता है और इस तरह सिद्धि प्राप्त करने वालों में से विरला ही कोई एक मुझे वास्तव में जान पाता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 20/2/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर, प्रेमास्पद श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के युगल चरणारविंद में अधमाधम अल्पज्ञ दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिस्मरण निरन्तर होने की करबद्ध प्रार्थना।

भाववृत्ति में दिव्य आकर्षण शक्ति

भगवान् तो अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों के नायक होते हुए भी भक्त के अनुचर मात्र हैं। क्यों अनुचर हैं? भक्त भगवान् को प्रेमभावमयी वृत्ति से आकर्षित कर सामने खड़ा कर लेता है। प्रेम भाववृत्ति भगवान् को जबरन खींच लेती है। भगवान् का अवतार ही केवल मात्र भक्तों के हेतु हुआ करता है, अन्य कोई कारण नहीं है। कारण केवल यही है कि भक्तों का वियोग भगवान् को सहन नहीं होता। भगवान् का मन भक्तों के बिना एक क्षण भी नहीं लगता। राक्षसों को तो भगवान् अपनी टेढ़ी भौंओं से तथा इशारे से ही मार सकते हैं, लेकिन लीला विस्तार करने हेतु अवतार लेकर राक्षसों से क्रीड़ा करते रहते हैं। इसलिए कि जीव मेरी लीलाओं का स्मरण करके, दुःखों का घर जो भवसागर है, उसे सहज में ही पार कर जाये यह भाव भगवान् के अन्तःकरण में रहता है।

भाव के अभाव में सृष्टि का चक्कर चलता ही नहीं। भाव के अभाव में कोई भी कर्म होता ही नहीं। प्रथम अन्तःकरण में भाव उदय होता है, तब वह भाव स्थूल वृत्ति में आता है, तब कर्म सम्पूर्ण होता है।

भाव भी शुभ व अशुभ दो प्रकार का होता है। माँ के प्रति अलग प्रकार का भाव होता है, पत्नि के प्रति अलग प्रकार का होता है, भाई के प्रति अलग, बहन के प्रति अलग, पुत्र के प्रति अलग,

पुत्री के प्रति अलग प्रकार का भाव होता है। इसी प्रकार भगवान् के प्रति जब तक कोई भी भाव सम्बन्ध नहीं होगा तब तक भगवान् की भक्ति (भगवान् में आसक्ति) कभी हो ही नहीं सकती। भौतिक आसक्ति का भाव ही अन्तःकरण में रहकर दूषित वातावरण बनाता रहेगा।

भगवान् के अन्तःकरण में भी भाव रहता है तथा जीवमात्र के अन्तःकरण में भी भाव रहता है, जब दोनों भाव आपस में आकर्षण शक्ति से जुड़ते हैं तब प्रेम की धारा अन्तःकरण से बाहर निकलती है। अष्टसात्विक विकारों से ओत-प्रोत हो पड़ती है। इन्द्रियों में भी भाव-कुभाव की वृत्तियाँ समाहित रहती हैं। इनमें मन ही मुख्य कारण है।

भाव नेत्रों से भगवद् दर्शन करने पर श्रीविग्रह (भगवान् की मूर्ति) जागृत हो जाता है, वरना तो जड़ स्थिति में नजर आता है। इसी प्रकार भावमयी श्रवण से सुना जाता है, तो अष्टसात्विक विकार, अश्रु, पुलक उदय होने लग जाते हैं। भाव के अभाव में सृष्टिक्रम चलना ही असम्भव है। भाव से भगवान् मिल जाते हैं। भाव से ही संसार मिला हुआ है।

भगवद् लीलाओं को शिव और ब्रह्मा तक कोई समझ नहीं सकते, केवल मात्र भगवान् की कृपा से ही कुछ भक्त ही समझ पाते हैं। क्योंकि भगवान् भक्त के हृदय में लीला स्फुरित कर देते हैं। मैं अल्पज्ञ, अज्ञानी, मूढ़, गाँव का गँवार, अनन्त दोषों का भंडार, इन्द्रिय वेगों का शिकार क्या भगवद् सम्बन्धी लेख लिखने में सक्षम हो सकता हूँ? कभी स्वप्न में भी सम्भव नहीं है।

रात में जब हरिनाम जपते हुए विरह अश्रुधारा बहने लगती है, तब उस धारा में यह शब्द भाव रूपी हीरे, मोती, पन्ना बनकर बहकर बाहर प्रकट होने लग जाते हैं। किसी अदृश्य शक्ति द्वारा बाध्य होकर भक्तों की सोई हुई भावमयी वृत्ति को जगाने हेतु वह शक्ति मेरे द्वारा लिखवा देती है, इसमें मेरा 1% भी प्रयास नहीं है। ऐसी भक्तप्रवर के चरणों में मेरी हृदयगम्य प्रार्थना है। मैं भक्त

नहीं हूँ। भक्त होने का प्रयास करके आपके चरणों से भक्ति प्राप्त करने की कोशिश में हूँ। आप मुझ दीन पर अवश्य कृपा करेंगे ही।

यह जो कुछ भी मुझ में भक्तों को अच्छाई नजर आ रही है वह केवल मात्र श्रीसद्गुरुदेव का आवरण मेरे ऊपर चढ़ा हुआ है तथा संतों की कृपा वर्षण से मैं स्वच्छ दिख रहा हूँ तथा अन्य एक कारण और भी है। मुझे आप सब की कृपा प्रार्थना करने से भगवान् के प्रति शिशु भाव का उदय हो गया है। शिशु का अन्तःकरण रूपी दर्पण एकदम साफ रहता ही है। जब शिशु तीन साल से ऊपर की वयस में चला जाता है तो उसमें कुछ–कुछ दुर्गुण तथा वेगों का संचार दिखाई देने लग जाता है। अन्तःकरण में तो जन्म–जन्मान्तर के संस्कार भरे पड़े ही हैं, जो ठग रहे हैं।

भगवान् की प्रत्येक वस्तु में आकर्षण शक्ति का भाव ओत–प्रोत रहता है। भगवान् का अभाव किसी वस्तु में न हो ऐसा शत–प्रतिशत हो ही नहीं सकता। पहाड़ों में, नदियों में जाने पर हर एक का मन उधर आकर्षित होकर आनन्दानुभव करता ही है।

चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। पत्थर आकाश की ओर फेंकने पर पृथ्वी के आकर्षण से वह नीचे आ गिरता है। इसी प्रकार जिसमें जो आकर्षण शक्ति का भाव अन्तःकरण में होता है, वह सामने वाले को अपनी ओर खींच लेता है।

जब युद्ध का आक्रमण होता है तो नगारों पर चोट दी जाती है, तो सब जवानों में जोश भाव का आकर्षण होने लग जाता है। इसी प्रकार से शराबी के पास जाने या बैठने पर जाने वाले पर उसका आकर्षण भाव उसे खींचकर शराबी का नशा उस पर चढ़ा देगा।

कहने का निष्कर्ष यह है कि संत समागम करने पर नास्तिक भी अवश्यमेव सन्त बन जायेगा। क्योंकि संत के अन्तःकरण में भगवद्प्रेम रूपी सरिता (नदी) प्रवाहित होती रहती है। उनके पास जाने वाले को भी यह उपलब्धि हो पड़ेगी।

सृष्टि ही भगवान् ने ऐसी रची है कि एक का आकर्षण दूसरे को अपनी ओर खींचता है। फिर वह आकर्षण चाहे बुरा हो या चाहे अच्छा हो।

प्रत्येक मानव के शरीर के चारों ओर एक ज्योति पुंज (प्रभामंडल) होता है, जिसे औरा (Aura) भी कहते हैं। कबीर जी की ज्योति पुंज की ज्योति सौ कोस (300 कि.मी.) तक प्रभाव डालती थी, आकर्षित करके खींच लेती थी। भगवान् की ज्योति पुंज का कोई आर-पार नहीं है। अनुकूलता ही इसका प्रमाण है। पांडवों में अनुकूलता थी, तो कृष्ण को पहचान गये। उधर कौरव प्रतिकूलता के भाव के कारण पहचान नहीं सके।

सम्पूर्ण पत्र लेख में मेरे कहने का आशय यह है कि, जो मेरे अन्तरंग भक्त हैं, मुझपर कृपा करके, यहाँ गोविन्द के घर में आ सके तो उनका संग मेरे लिए सोने में सुगन्ध का काम कर दे। उनके संग में बैठकर हरिनामामृत पान करके मैं निहाल हो जाऊँ। भक्त संग का आकर्षण भाव बहुत बलिष्ठ होता है। मेरी सोई हुई आत्मा शीघ्र जागृत हो जाये। क्योंकि काल का बिल्कुल भरोसा नहीं है, कभी भी अचानक आकर निगल सकता है। आपके अवलम्बन से मेरा भी निस्तार हो जाये। मैं तो आने में असमर्थ हूँ। आप सब समर्थ हो, मुझ दीन पर अवश्य कृपा करेंगे ही, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

मुझपर ऐसी कृपा करो कि मैं भावमयी वृत्ति से श्रीविग्रह का दर्शन करूँ। भाव से भगवद्कथा श्रवण करूँ, भाव से भगवद्भक्ति व संतसेवा कर सकूँ। भाव से हरिनाम का मनन करूँ, भाव से झुककर भक्त और भगवान् को प्रणाम करूँ, भाव से तीर्थाटन करूँ, मेरा अन्तःकरण भाव आपके रंग में रंग जाये। कुभाव मूलसहित नष्ट हो जाये, तो मेरा जीवन आपकी कृपावर्षण से सरोबार हो जाये, सफल हो जाये।

31

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 28/02/2008

परमाराध्यतम भक्तराज स्नेहास्पद, तथा मेरे शिक्षागुरु श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणारविंद में अधमाधम दासानुदास अनुचर का साष्टांग दण्डवत् तथा भजन स्तर प्रेमसहित बढ़ने की प्रार्थना।

मन को कैसे वश में किया जाये

(सुगम और सरलतम उपाय)

श्रीमद्भागवत महापुराण में श्रीकृष्ण उद्धव से, यदु महाराज के प्रश्न करने पर कुछ विवेचन कर रहे हैं। मन कैसे वश में हो। मन तो हवा से भी अधिक दौड़ने वाला है। रसेन्द्रिय को वश में करने पर सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। रसेन्द्रिय का उपस्थ इन्द्रिय (जननेन्द्रिय) से सीधा सम्पर्क रहता है। रस सहित भजन हेतु नैष्ठिक ब्रह्मचर्य परमावश्यक है। वरना हजारों साल की तपस्या एक क्षण में समाप्त हो जाती है। जो प्रेम की लहर बह रही होती है, वह एकदम रुक जाती है। श्रीगौरहरि का वचन है–

ग्राम्य-कथा ना शुनिबे, ग्राम्य-वार्ता ना कहिबे।
भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे।।

न तो सामान्य लोगों की तरह सांसारिक बातें बोलो और न उसे सुनो। तुम न तो स्वादिष्ट भोजन करो और न ही सुन्दर वस्त्र पहनो।

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला 6.236)

चारों युगों में देखा गया है कि जो भी सन्तगणों ने जिह्वा को रूखा सूखा देकर पेट की अग्नि बुझाई है, वही भगवान् की प्राप्ति

कर पाये हैं। स्वादिष्ट खाने से उपस्थ इन्द्रिय जाग जाती है। इससे सारा किया कराया भजन धूल में मिल जाता है।

रूप, सनातन, रघुनाथदास आदि गोस्वामीगण चार चुल्लू भर छाछ पीकर अष्टयाम भजन में रत रहते थे। जिनसे भगवान् हाथ जोड़कर कहते थे कि मुझे बिना नमक की रोटी नहीं भाती, थोड़ा नमक तो डाल दिया करो। सन्त कहते कि, आज तुझे नमक चाहिए, कल तुझे मीठा चाहियेगा। मुझे इतना समय कहाँ, जो तेरे लिए भजन छोड़कर भागता फिरूँ। यह भक्तों की भक्ति है, जो भगवान् को भी फटकार सुननी पड़ती है। यशोदा माता से डरकर भगवान् थर–थर काँपते थे, जिससे काल भी थर्राता है। यह है भक्ति।

इस उक्त आचरण से साधक के अन्तःकरण में ज्ञान का सूर्य उदय होकर अज्ञान का अन्धेरा विलीन होते रहता है। मन जो भी माँग करे, उसे ठुकराते रहने से मन मरता रहेगा। मन ही तो अनन्तकोटि योनियों में घुमा रहा है। इसका कहना कभी भूलकर भी नहीं मानना चाहिए। इसका कहना मानने से यह उछलांग हो जाता है एवं बुरे रास्ते पर ले जाता है।

जब तक साधक उक्त स्तर पर नहीं चलेगा तब तक उसको भगवद् प्राप्ति के लिए अनेक जन्म लग जायेंगे। भरत महाराज ने राजपाट छोड़कर इसी वृत्ति से जीवन यापन किया है। अवधूत दत्तात्रेय ने भी सब साधकों को यही शिक्षा दी है।

जिह्वा वेग समाप्त होने पर वैराग्य स्वतः ही उदय हो पड़ता है। क्योंकि साधक इन्द्रियों के चक्कर में फँसा रहता है। यह साधक को भजन करने ही नहीं देती। इन्द्रियाँ सबसे बड़ी दुश्मन हैं। साधक को भटकाना ही इनका काम है। जिह्वा वेग से मन चंचल रहता है। मन चंचल है तो भगवद् प्राप्ति बहुत दूर है।

मन के कहे न चलिए जो चाहो उद्धार।
मन के कहे चलन पर सदा ही होगी हार।।
मानुष देह न बारम्बारा। मिल गई भगवद् कृपा अपारा।।

श्रीमद्भागवत पुराण में आया है कि देवता व मानव चाहते हैं कि हमारा जन्म कलियुग में हो ताकि हरि का नामस्मरण करके आवागमन से छूट जायें। ऐसा सरल सुगम रास्ता अन्य युगों में नहीं है। भारतवर्ष में भी किसी सुकृतिशाली को ही मानव का जन्म मिलता है। गंगा, यमुना आदि नदियों का जल जो पीते रहते हैं, उनका मन सहज में ही निर्मल रहता है। दक्षिण भारत में अधिकतर ये नदियाँ हैं। ज्ञान का सूर्य उदय होकर अज्ञान के अन्धेरे को विलीन करता रहता है।

यदि जिह्वा वेग को नहीं रोक सके तो मात्र प्रसाद पाने के समय प्रत्येक ग्रास में हरिनाम स्मरण तो प्रत्येक साधक कर ही सकता है, यदि साधक इसका प्रयास नहीं करना चाहता, तो समझना होगा कि, अभी उसको विषयों में राग है। वह भगवान् को नहीं चाहता। केवल सबको धोका दे रहा है। छल–कपट उसके अन्दर है।

मन का स्वभाव ही है कि, प्रत्येक क्षण–निमेष में संकल्प–विकल्प करना। यह संकल्प–विकल्प होता है संसार के तामस–राजस गुणों से प्रेरित होकर। यदि यह संकल्प–विकल्प आध्यात्मिकता की ओर मुड़ जाये तो सारा का सारा दुःख समाप्त हो जाये। लेकिन यह तब ही हो सकेगा, जब साधक का हरिनाम स्मरण खाते–पीते, चलते–फिरते, सोते–जागते, विश्राम पर होता रहेगा। जो भी कर्म करे भगवान् का समझकर ही करे, तो सहज में ही मन का झुकाव निर्गुण वृत्ति में झुक जायेगा। ऐसा अनुभव है व शास्त्र भी यही कह रहा है।

जैसे चुम्बक के पास लोहा खिंचा चला आता है, सोना, पीतल, चांदी नहीं खिंचेगी क्योंकि वह सजातीय नहीं है। सजातीय ही सजातीय को आकर्षित करती है, विजातीय को नहीं।

इसी प्रकार सुकृतिवश यदि साधक का भगवान् और भक्त की कृपा से कोई नामनिष्ठ सन्त का सम्पर्क बन जाये,तो वह सम्पर्क साधकों को नामनिष्ठ बनायेगा। लेकिन साधक की भी यही कामना होनी चाहिए वरना प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे कि, साधक यज्ञ आदि को

अधिक महत्व देता है और उसी में इसकी अधिक निष्ठा है तो फिर नामनिष्ठ का संग करने पर भी नामनिष्ठ नहीं बन सकेगा। यह विपरीत वृत्ति सजातीय नहीं है।

जिसको भगवद् प्राप्ति की सच्ची लगन है, उसे नामनिष्ठ का संग करने पर सच्चा वैराग्य स्वतः ही उदय हो जाता है। जब तक वैराग्य उदय नहीं होगा, तब तक समझना होगा कि इसे भगवद् प्राप्ति की सच्ची लगन नहीं है। इसमें अज्ञान ही मुख्य कारण है।

देखा व सुना गया है कि, राजा लोग नाचना-गाना कराते हुए भोजन करते थे। उनकी भावना कलुषित रहती थी। अतः उनकी विषयी वृत्ति होना स्वाभाविक था। जिस वृत्ति से भोजन किया जाता है, उसी वृत्ति का प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ता रहता है। पानी भी जिस वृत्ति से पिया जाता है, वैसा ही प्रभाव उसके स्वभाव में आ जाता है। यदि पानी भगवद् चिन्तन में पिया जायेगा तो वह भगवद् चरणामृत बन जायेगा, तो इससे उसका स्वभाव निर्गुण बनता रहेगा। लेकिन ऐसा कोई साधक करता नहीं है, तब ही तो सारे जीवन में भगवद् प्रेम उपलब्ध नहीं हो पाता। बड़ी मुश्किल से जो मानव जन्म मिलता है, यों ही गँवा देता है। चौरासी लक्ष योनियों के चक्कर में फिर से घूमता रहता है। कितनी मूर्खता है। मूर्खता की भी हद हो गयी। समझाते-समझाते थक गये, परन्तु एक भी बात नहीं मानी। इसका कारण है दुर्भाग्य।

आनन्द सिंधु में से जो रसमयी धारायें बहती हुई बाहर निकलती हैं, उनमे से हीरे, मोती, पन्ना आदि अमूल्य रत्न बहकर आ जाते हैं। जो भी साधक इनके सम्पर्क में आ जाते हैं, वे मालामाल हो जाते हैं।

मैं इन धाराओं की चमत्कारिक चमक का पात्र नहीं हूँ। ये धाराएँ श्रीठाकुर जी व गुरुदेव की कृपा वर्षण से बहकर बाहर आती हैं। इसे कोई भी मेरी पात्रता न समझे वरना अपराध हो जायेगा।

भगवान् ऐसे ही नहीं मिलते, वह तो प्रेम सहित विरहमयी अकुलाहट से मिला करते हैं। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना' रूपी स्वभाव से मिला करते है।

शरीर तीन प्रकार के होते हैं–

1. **स्थूल शरीर** – हड्डी, मांस तथा रुधिर का

2. **सूक्ष्म शरीर** – जो कर्मानुसार मरने के बाद साथ में जाता है।

3. **कारण शरीर** – जिसके द्वारा मृत्यु होती है, यह होता है स्वभाव का शरीर, जैसा जिसका स्वभाव होता है, अन्त समय मरने के ठीक समय में जो भाव जागृत होता है, उसी भावानुसार अन्य शरीर की प्राप्ति होती है। अतः स्वभाव को उन्नत बनाने हेतु सन्त महात्मा आते–जाते हैं। पूरी जिन्दगी भर जो कर्म करते रहते हैं, उसी कर्म से मानव का स्वभाव बनता रहता है। शास्त्र इसलिए कहते रहते हैं कि, सत्संग करने पर स्वभाव उन्नत बनता जाता है। अन्त समय में उन्नत स्वभाव का विचार अन्तःकरण से फूट पड़ता है, तो उन्नत लोकों में वह भावमय सूक्ष्म शरीर गमन करता है।

शरीर में 5 कोष होते हैं–

1. अन्नमय कोष – जो खाने–पीने पर निर्भर है।
2. प्राणमय कोष – जो प्राणवायु पर निर्भर है।
3. मनोमय कोष – जिससे संकल्प–विकल्प जागृत होते रहते हैं।
4. विज्ञानमय कोष – जो बुद्धि पर निर्भर है।
5. आनन्दमय कोष – जो परमानंद का द्योतक है। आत्मा तथा परमात्मा यहीं पर विराजती है। जिसने निर्गुणता को अपना लिया है, उसके आवागमन (जन्म मृत्यु का चक्कर) का अन्त हो गया। तीन गुण ही जन्म–मरण का मुख्य कारण हैं जो भक्ति की कृपा से नष्ट हो जाते हैं। जिह्वा पर नियन्त्रण करने पर सभी दुःखों का अन्त हो जाता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी

मनचाही सन्तान की उपलब्धि

श्रेष्ठ पुत्र अथवा पुत्री

जीव स्वयं के भाग्य की रचना स्वयं ही करता है। भगवान् इसमें निर्लिप्त है। जैसा कर्म मानव करता है, उसी कर्मानुसार भाग्य की रचना हुआ करती है। कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं– कर्म, विकर्म तथा अकर्म। कर्म उसे कहा जाता है, जिस कर्म को करने को धर्मशास्त्र आदेश प्रदान करता है। अकर्म उसे कहा जाता है जो शास्त्र के विरुद्ध होता है। विकर्म उसे कहा जाता है जो नास्तिकवाद के अन्तर्गत आता है।

बस इन तीनों कर्मों से ही शुभ–अशुभ भाग्य का निर्माण होता है। कर्मानुसार ही भावी जन्म का विधान रचा जाता है। भगवान् तो केवल साक्षी मात्र है। जीव स्वयं भोक्ता बनकर अपना जीवनयापन करता रहता है। यही इसकी सबसे बड़ी भूल है। भोक्ता केवलमात्र भगवान् ही है। जीव तो भगवान् के द्वारा भोग्य है।

दम्पत्ति (स्त्री–पुरुष) यदि आपस में संग करते हुए स्त्री जाति का चिंतन करते हैं तो कन्या की उपलब्धि होगी तथा पुरुष जाति का चिंतन होता है तो पुत्र की उपलब्धि होगी। मन का संकल्प–विकल्प ही तो भविष्य में स्थूल रूप में प्रकट होता है। जिस प्रकार उदाहरण स्वरूप मकान बनाने का मन का संकल्प–विकल्प स्थूल रूप में मकान को प्रकट कर देता है। इसी प्रकार सन्तान उपलब्धि का मनोमय विज्ञान संतान को आविष्कृत कर देता है।

संग करते हुए दोनों स्त्री पुरुष को किसी पुरुष लिंग का चिन्तन हो गया तो पुत्र का आविष्कार होगा। इसी प्रकार यदि स्त्री लिंग का चिंतन हो गया तो पुत्री का आविष्कार हो जायेगा।

अतः संग करते हुए दोनों को अपने गुरु जो पारदर्शी तत्वज्ञ हो, उनका चिंतन करना होगा। तो श्रेष्ठतम भक्त पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी। श्रीगुरुदेव के संस्कार उस आत्मा में अर्थात् जीव में ओत-प्रोत हो जायेंगे। यदि अपनी पत्नि का चिंतन अर्थात् स्त्री लिंग का चिंतन करे तो पुत्री का आविष्कार कर देगा। किसी भी महापुरुष या स्वयं की स्त्री का चिंतन शुभकारक होगा।

उक्त उपलब्धि का साधन है केवल मात्र 21 दिन दोनों हरिनाम याने कि महामंत्र की मन सहित नित्य ही माला जप करें। कम से कम 32 माला स्त्री करे, तथा 32 माला पुरुष करे, हो सके तो दोनों प्रत्येक दिन 64 माला (एक लाख नाम) करे। इस प्रकार 21 दिन में दोनों का 21 लाख हरिनाम का जाप सम्पूर्ण होगा। इस जप से दोनों का अन्तःकरण भक्तिमय हो जायेगा व सात्विक तथा निर्गुण वृत्ति जागृत हो जायेगी।

यदि उक्त विधान को अपनायेंगे तो श्रेष्ठ संतान पायेंगे। इस श्रेष्ठ कर्म से श्रेष्ठतम शुभ भाग्य की उपलब्धि बन जायेगी। 108 दिनों तक संयम रखना सर्वोत्तम है यदि संयम से नहीं रह सके तो ऋतु धर्म होने के 16 दिन बाद संग कर सकते हैं जिनमें गर्भधारण करने का संयोग नहीं रहता। इसके पहले गर्भ रह सकता है जो प्रतिकूल वृत्ति का हो सकता है। जो दुःख का कारण बनेगा।

इस अनुष्ठान नियम के बाद शुभ दिन-रात चुनकर, रात में 10 बजे,12 बजे तथा 2 बजे 3 बार संग करें। इससे पहले कमरा स्वच्छ कर लें, अच्छे-अच्छे चित्र टांग दें। उस दिन केवल दूध पीकर ही रहें। पंचमी, अष्टमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी यह शुभ दिन होते हैं। मंगलवार, एकादशी वर्जित है। कभी भी दिन में, सन्ध्याओं में, पर्व पर, रुग्णावस्था में, क्रोध में संग करने पर राक्षस वृत्ति की संतान पैदा होगी। पुत्र की कामना हो तो दाहिनी करवट लेकर स्त्री लेटे। पुत्री की कामना हो तो बायीं करवट पर लेटे। बीच में ही सुबह तक उठकर चले नहीं, वरना शक्ति निकल जायेगी। संग करने से पहले पेशाब करना होगा।

प्रातः जगने पर महापुरुष या पतिदेव के दर्शन करे। तो संतान में इनका स्वभाव आरोपित हो जायेगा। उक्त सारा विवेचन धर्म–शास्त्रानुसार श्रीमद्भागवत ग्रंथ में वर्णित है। चाहो तो दिखा सकता हूँ तथा अनुभव से सत्य है। 100 दिन संयम रखने से बहुत बड़ा महापुरुष जन्म लेगा। उक्त अनुसार न करने पर मन के विपरीत होगा। आजकल मोबाइल हाथ में होने से होटल वेश्याघर बनते जा रहे हैं। युवक युवतियाँ वहाँ जाकर अपनी कामाग्नि बुझाते रहते हैं। इससे राक्षस वृत्ति की संतानें पैदा होती हैं जो माँ–बाप तक को मार देती हैं तथा अन्यों को भी दुःख देती हैं।

यह उत्तम शिक्षा किसी भी युवक–युवतियों को उपलब्ध नहीं होती अतः दुराचरण में अपने मन व तन को नष्ट करते रहते हैं। इस युग में इस शुभ शिक्षा की बहुत जरूरत है। ऐसी उत्तम शिक्षा देना कोई बुरी बात नहीं है, न दी जाती है न भविष्य में कोई भी देगा अतः वातावरण बिगड़ता जायेगा। इसका मुख्य कारण है, शर्म। अन्धों को आँख वितरण करना सर्वश्रेष्ठ धर्म कर्म है, ऐसी शिक्षा मुख से न देकर लिखित रूप में देना श्रेयस्कर होगा।

देश भी इस उत्तम शिक्षा से धार्मिक व उन्नत होगा। सात्विक संतानें प्रकट होकर पूरे देश में सत्युग बना देंगी।

इस लेख को कोई बुरा न समझे। यह तो ब्रह्माजी की शुभ सृष्टि का लेख है। छिप–छिपकर गलत मार्ग पर चलना स्वयं के ही दुःख का कारण बनता रहता है। अनजान होने से राक्षस वृत्ति की संतानें इस जगत में पैदा होती जा रही हैं। इसका कारण है धर्म विरुद्ध आचरण।

नोट–

प्रत्येक अवस्था में भाव ही प्रधान है। जिस भाव में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, उसी भाव के अनुसार सत्व, रज और तमोगुण उसे प्रेरित करके अगला जन्म देते हैं।

इसी प्रकार जिस भाव में संतान प्राप्ति हेतु संग होता है, उसी प्रकार के भाव की आत्मा गर्भाशय में खिंच कर आ जाती है। फिर चाहे पुत्र हो या पुत्री। त्रिगुण में जैसा भाव होगा उसी भाव के अनुसार उसका शुभ अशुभ आचरण होगा। यह सृष्टि बढ़ाने के अमृतमय सिद्धान्त हैं। इसको अपनाकर उचित गर्भ संस्कारों के द्वारा ऋषि-मुनि समान भक्तों को प्रकट करना कितना श्रेयस्कर होगा।

गर्भवती अवस्था में प्रथम रामायण पढ़नी चाहिए बाद में श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि ग्रन्थ पढ़ने चाहिएँ।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 5/3/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर स्नेह बंधु तथा शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में नराधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर प्रेम सहित होने की करबद्ध प्रार्थना।

प्रवचन का प्रभाव

धर्मशास्त्रों की आड़ में परमानन्द की प्राप्ति कराने वाले प्रवचन-कारों का प्रभाव श्रवणकारियों पर क्यों नहीं पड़ता ? इसका मुख्य कारण केवल मात्र है प्रवचनकारों के अन्तःकरण में शुद्ध आचरणों की कमी। पांडित्य से कोई किसी को सुधार नहीं सकता। सभी जगह धन उपार्जन हेतु प्रवचन होता है, न कि भगवद्प्रेम वितरण के हेतु। उससे तो श्रवणकारियों का धन अर्जन करने का स्वभाव बनता है क्योंकि जो कुछ बाँटा जायेगा वही सुनने वाले पर हावी बनता जायेगा। अतः ऐसी ठौर में प्रवचन सुनना उचित नहीं है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रवचनकार कभी-कभी अश्रुपात का ढोंग भी करता है ताकि सुनने वाले उसे सन्त शिरोमणि समझे तो उसको रुपया पैसा अधिक देंगे।

गौरहरि का कहना है कि, स्वयं आचरण करो तथा दूसरों को सिखाओ। जिसके पास जो गुण होगा वही गुण वह अन्यों को दे सकेगा। जैसे किसी की रुचि यज्ञ करने की है, तो जो भी उसके सम्पर्क में आयेगा तो यज्ञ करने की वृत्ति उसमें जागृत हो पड़ेगी। किसी में योग का, किसी में तपस्या का, किसी में हरिनाम स्मरण करने का गुण होता है। जिसमें जो गुण समाया हुआ है वही गुण अन्यों में, जो सम्पर्क में आयेगा उसमें ओत-प्रोत हो जायेगा।

जिसमें कोई गुण नहीं है, केवल छल-कपट से पैसा बटोरने का स्वभाव है वह अन्यों को भी छल-कपट और पैसा ही दे सकेगा। यह सिद्धांत भी है कि प्रत्येक मानव में एक ज्योति पुंज जिसे आभा (Aura) भी कहते हैं वह दूसरे को अपनी ओर खींचता है। शराबी, जुआरी, आदि-आदि, जो इनके सम्पर्क में आयेगा वह वैसा ही बन जायेगा। बच नहीं सकता।

सच्चा साधु किसी को कुछ संसारी वस्तु देगा ही नहीं एवं यदि सुपात्र माँगता है तो उसे कुछ दिन बाद में आने को कहेगा। स्वयं आचरणशील होगा तब ही तो अन्यों को कुछ देगा। ऐसे उदाहरण शास्त्रों में पढ़े हैं।

जो उर्दू नहीं जानता, क्या वह अन्यों को उर्दू सिखा सकेगा? जिसके पास Bank Balance नहीं है, क्या वह किसी को पैसा दे सकेगा? बड़े-बड़े ढोंगी साधु जिनके प्रवचन में हजारों लाखों मानव सुनने के लिए आते हैं, जब उनको नजदीक से सम्पर्क करते हैं, तो मालूम पड़ता है कि इन्होंने कौनसी कुरीती छोड़ी है। वह तो अवगुणों के भंडार हैं। केवलमात्र पांडित्य से बोलने का तरीका होने से जनता को रिझा लेते हैं। श्रोताओं ने इधर प्रवचन सुना, उधर रास्ते में ही खाली। प्रवचनकर्ता स्वयं अपना भी सत्यानाश कर रहे हैं तथा औरों का भी सत्यानाश करके समय बर्बाद कर रहे हैं। इस कलियुग में छल-कपट से ही साधु कमा रहे हैं। बड़े-बड़े आश्रमों में बहुत सारी युक्तियों से कमाई हो रही है। न जाने क्या-क्या कुकर्म करते रहते हैं।

टी.वी. पर जो धार्मिक पिक्चर आते हैं जो शास्त्र विरुद्ध भी होते हैं। उनमें भूमिकाएँ करने वालों का चरित्र एकदम शर्मनाक होता है। इसलिए उनको देखने से कोई लाभ नहीं होता।

कलियुग में हरिनाम ही सार है। जहाँ हरिनाम का बोलबाला हो वहीं पर अधिक से अधिक सम्पर्क करना श्रेयस्कर होगा वरना समय की बर्बादी के अलावा कुछ नहीं है। केवल अपनी आयु का

क्षय करना होता है। यह क्षय ही सबसे बड़ा नुकसान का कारण बनेगा।

हरिनाम में मन लगाना और अन्य कार्यों से मुख मोड़ना ही उत्तम है। स्वयं हरिनाम करो तथा दूसरों से भी करवाओ, भगवान् को प्रसन्न करने का इससे बड़ा दूसरा कोई लाभ ही नहीं है।

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय।।

गोविन्द से मिला दिया, सामने लाकर खड़ा कर दिया, तब गुरु की बलिहारी होती है। गोविन्द से तो मिलाया नहीं और गुरु बन गये– इसलिए अकेले खड़े गुरु की महिमा नहीं है। महिमा उस गुरु की है जिसके साथ गोविन्द भी खड़े हैं अर्थात्– जिसने भगवान् की प्राप्ति करा दी है।

पारस केरा गुण किसी पलटा नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा।।

अगर पारस के स्पर्श से लोहा सोना नहीं बना तो वह पारस असली पारस नहीं है अथवा लोहा असली लोहा नहीं है अथवा बीच में कोई आड़ है। इसी तरह अगर शिष्य को तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तो गुरु तत्त्वप्राप्त नहीं है अथवा शिष्य आज्ञापालन करने वाला नहीं है अथवा बीच में कोई आड़ (कपट भाव) है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 3/3/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर अन्तरंग साथी आपके चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर प्रेम सहित होने की प्रार्थना।

साध्य और साधन

हरिनाम साध्य है तथा संसार से मुख मोड़ना मुख्य साधन है। इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति हो सकती है। इसके लिए अन्तःकरण चतुष्टय को निर्मल करना आवश्यक है। अन्तःकरण शुद्ध कैसे हो ? इसका सरलतम, सुगम, सुलभ साधन है कि संसार की लिप्सा, आसक्ति हृदय से निकाल दो।

कैसे निकालें ?

किसी सिद्ध महात्मा की शरण ग्रहण करो।

सिद्ध महात्मा कहाँ उपलब्ध होंगे ?

गुरु व भगवान् से बारम्बार आतुरता से प्रार्थना करो। भगवान् दया निधि हैं। सिद्ध महात्मा से मिला देंगे।

सिद्ध महात्मा मिलने पर क्या करना होगा ?

उसकी तन, मन, प्राण से सेवा करनी होगी। भक्त की सेवा से भगवान् शीघ्र प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। तब सिद्ध महात्मा उपदेश करेंगे, उनकी वाणी का प्रभाव आप पर गहरा पड़ जायेगा तो संसारी आसक्ति छूटती जायेगी। जब संसारी लगाव छूटेगा तो भगवद्भक्त के प्रति आसक्ति अन्तःकरण में जमती जायेगी। तब भगवान् में आसक्ति होने लगेगी और जब भगवान् में आसक्ति होने लगेगी तो स्वतः ही भगवान् को मिलने की छटपट उदय हो जायेगी। जब छटपट उदय होगी तो नींद व प्रसाद (भोजन) में अरुचि होने लगेगी। न भूख लगेगी न नींद होगी। रातभर तड़पन होकर रोना ही अच्छा लगेगा।

जब रोने की सीमा ही नहीं रहेगी तो भगवान् को भी अकुलाहट होने लगेगी। भगवान् का मन भी उचट जाएगा। एक क्षण युग के समान हो जायेगा। अब दोनों विरहियों का संगम हो जाएगा। अब केवल भक्त व भगवान् का ही संसार रहेगा।

महात्मा शरणागत को उपदेश देगा। क्या उपदेश देगा ? संसार में सुख नहीं है, सभी किसी न किसी चिंता में ग्रसित हो रहे हैं। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक दुःख सागर में डूबना होता है। संसार की सभी चीजें नश्वर हैं। जो भी वस्तु हस्तगत होगी वही वस्तु उसे दुःख देती रहेगी। एक गाड़ी को ही ले लो, कभी पंक्चर, कभी टक्कर, कभी राज्यशासन का डर, कभी पड़ोसी के माँगने का डर, दूसरों से ईर्ष्या का डर, कहने का मतलब है कि सुख कहीं पर नहीं है, केवल दिखता है। महात्मा पहले संसार की असारता समझाकर उसका मन संसार से हटा देगा। अपने परिवार से रिश्तेदारों से भी दुःख ही दुःख मिलता रहता है। अपने मन व शरीर से भी दुःखी रहना पड़ता है। मन अशान्त तथा शरीर के रोग होने लगते हैं।

जब साधक की संसार के प्रति दुःख बुद्धि हो जायेगी तो स्वतः ही मन संसार से नाता तोड़ने लगेगा। जब नाता मन से टूट जायेगा तो भगवान् से स्वतः ही नाता हो जायेगा। श्रम करने की जरूरत नहीं होगी।

अब भक्ति की ओर तन, मन और भाव आकृष्ट होने लगेंगे। लेकिन साध्य (हरिनाम) को हरदम पकड़ना होगा। हरिनाम को अधिक से अधिक स्मरण करना होगा। तब ही उक्त स्थिति प्राप्त हो सकेगी वरना सभी श्रम व्यर्थ हो जायेंगे।

उक्त लाभ तब ही होगा जब भक्त अपराध से व निन्दा-स्तुति से बचते रहोगे। निन्दा-स्तुति न सुनो न कहो। फिर कोई डर नहीं है। पहले के सिद्ध महात्मा केवल करवा व लंगोटी के अलावा कुछ नहीं रखते थे क्योंकि सभी वस्तुएँ भजन में बाधा कारक हैं। **गृहस्थों को भी आवश्यक सामान ही रखना उचित है। जितना बटोरोगे उतना ही फँसोगे।**

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 5/3/2008

परमाराध्यतम प्रेमास्पद स्नेहबंधु तथा शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में नराधम अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

श्रृंगार रस (मधुर भाव) का प्रवचन अपराधजनक

स्थान-स्थान पर वक्ता गोपियों के सखीभाव, मंजरी भाव के विषय में प्रवचन करते रहते हैं। इस दिव्य भाव को साधारण श्रोता क्या समझेंगे? श्रीकृष्ण व गोपियों में अवर्णनीय, अलौकिक वार्ता का समागम होता है। इस वार्ता में गलत भावना करके वक्ता व श्रोता दोनों ही बहुत बड़ा जघन्य अपराध करते रहते हैं।

लाखों साधकों में कोई एक विरला ही सच्चे रूप की भावना को समझ सकता है, जो बहुत ही उच्च स्थिति में पहुँचा हुआ हो। छः दोष व छः वेग साधक में और साधारण श्रोता में भी समाये रहते हैं। वह उक्त भावनाओं को समझ ही नहीं सकते। जो त्रिगुण में समाया हुआ है वह निर्गुण भावना को कैसे समझ सकता है?

आजकल केवल श्रोताओं को लुभाकर पैसा बटोरना ही कुछ वक्ताओं का कर्म रह गया है। रसमयी कथा प्रवचन उससे हो ही नहीं सकता वह रजोगुण प्रधान ही कथा करेगा क्योंकि उसके पास रजोगुण वस्तु ही बिक्री में है। अन्तःकरण में जो भाव रहता है, वही भाव अन्य सम्पर्क वालों के हृदय में उदय हो जाता है। यह सत्य सिद्धान्त है।

समझदार श्रोता को उक्त तरह का प्रवचन सुनना ही नहीं चाहिए वरना भजन स्तर से गिरना पड़ेगा। भगवद् रसिक ही सम्पर्क में आने वाले प्राणी को रसिक बना सकता है। इस कलिकाल में केवल मात्र पैसे का ही बोलबाला है। भगवान् को कौन चाहता है ?

भगवान् को चाहने वाला ही, दूसरों को भगवान् में लगा सकता है। सब जगह छल–कपट ही नृत्य कर रहा है। आजकल सभी का मन–चंचल है। इस चंचल मन को काबू करने हेतु सभी शास्त्र भरे पड़े हैं। सत्संग भी चंचल मन को रोकने हेतु ही हुआ करते हैं। इस संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं है न कोई किसी का मित्र है। शत्रु है तो अपना ही मन और मित्र है तो अपना ही मन।

जन्म–मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाला मन अपना मित्र है एवं माया में त्रिगुणों में फंसाने वाला मन अपना बहुत बड़ा शत्रु है।

अब प्रश्न उठता है कि इसे कैसे वश में किया जाये ? तो बस एक ही तरीका है कि अन्तःकरण में वैराग्य का बीज अंकुरित हो जाये। यदि सोचे कि वैराग्य होना अपने बस की बात नहीं तो ऐसा कुछ नहीं है। यह मुश्किल नहीं है। स्वयं एकान्त में बैठकर विचार करते रहो कि तेरे सामने सब मरते जा रहे हैं, तू भी एक दिन अवश्य मरेगा। फिर 84 लक्ष योनियों में जो दुखों की योनियाँ हैं उनमें भटकता फिरेगा। फिर दोबारा यह मानव शरीर नहीं मिलेगा। इसी शरीर से आवागमन का चक्कर मिट सकता है। इसको तू मूर्खतावश बेकार में खो रहा है। और खुद का बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है। त्रिलोकी में इस नुकसान से अधिक कोई नुकसान नहीं है। अतः मन को समझाओ कि हे मन! अब भी समय है, तू किसी भजनशील सिद्ध सन्त की शरण ले ले। वे तुझको अपने जैसा बना लेंगे। यहाँ की सब वस्तुएँ नश्वर हैं एवं दुःखदायी हैं। कभी इनसे सुख प्राप्त हुआ है ? कभी भी नहीं। यह तेरा स्वप्न है। स्वप्न झूठा है। ऐसे ही सभी वस्तुएँ भी झूठी हैं।

बार–बार ऐसे विचार करने से मन में वैराग्य उदय हो जायेगा लेकिन इतना विचार करने के लिए मानव साधक के पास समय ही कहाँ है ? उसे तो संसार से एक क्षण के लिए अवकाश ही नहीं है, सोचेगा कहाँ से ? अतः रोता हुआ जायेगा एवं निरंतर अनन्तकाल तक दुःख ही पायेगा। अब भी जो समय बचा है, उसमें वैराग्य पूर्ण भावना करके अपने को आनन्द सिंधु में डुबाले। वैराग्य होने से स्वतः ही मन स्थिर होकर भगवद्चरणों में चिपक जाता है। इसमें तनिक भी संशय होने की गुंजाईश नहीं है।

चाहे मन (अन्तःकरण) में संसार रमालो, चाहे भगवान् सम्बन्धी विचार रमालो। एक ही भाव रम सकता है, दो भाव कभी भी रम नहीं सकते।

इस भाव को रमाने की एक ही युक्ति (मार्ग) है, कलिकाल में उद्धार करने का जो रास्ता है, उसे अपनालो। वह है केवलमात्र हरिनाम की शरण लेना। शरणागति कब मिल सकती है, जब किसी साधक में बहुत बड़ी सुकृति हो। सुकृति ही साधक को किसी सिद्ध नामनिष्ठ सन्त से मिला देगी।

उसका संग करने पर वह साधक को अपनी अलौकिक साधना से अपनी ओर आकर्षित कर लेगा। यह कुछ ही दिनों में नहीं होगा। निरन्तर संग उपलब्ध होना परमावश्यक है। स्वतः ही वैराग्य उदय होकर मन नाम में स्थिर हो जायेगा।

मन स्थिर होते ही अश्रु–पुलक भाव में डूबना हो जायेगा। फिर आनन्द आने लगेगा तो मन वहाँ से कहीं नहीं जायेगा। मन को जहाँ आनन्द मिलता है, वो वहीं चिपक जाता है।

शराबी 10 कोस (30 कि.मी.) भी शराब पीने चला जाता है क्योंकि वह शराब के बिना नहीं रह सकता। इसी प्रकार जिसको भगवद्रस का चस्का लग जाता है उसको वह रस ही डुबो देता है। गोपीगण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। कृष्ण को वह दिल से निकालने का प्रयास करती थीं, फिर भी नहीं निकलता था वह अष्टयाम उनके दिल में बसा रहता था।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 7/3/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के युगल चरणारविंद में नराधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमाभक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना।

भगवद् भक्ति के मुख्य शत्रु

संत अपराध, अहंकार तथा मान–प्रतिष्ठा की चाह

यदि यह तीनों अन्तःकरण से दूर रहें तो शीघ्र ही अष्टसात्विक विकार की उपलब्धि साधकगण को हो जाये। लेकिन इन तीनों में से कोई न कोई हृदय में उदय होते ही रहते हैं, जिनके कारण बीच–बीच में भक्ति रसाभास विलीन होता रहता है।

मेरे जो अंतरंग भक्तसाथी हैं, उनसे यह कहते सुना है कि क्या बात है ? हमारा भजन रससहित हो रहा था लेकिन अचानक भजन रुचि समाप्त होती जा रही है। मानव साधक के अनन्त जन्मों के राजस, तामस तथा सात्विक गुण (स्वभाव) पीछे से बार–बार प्रेरित करते रहते हैं तथा वर्तमान संग दोष से भी भजन पथ में रुकावट आती रहती है।

यदि अन्तःकरण से भावपूर्ण भजन (हरिनाम) चलता रहे एवं उक्त तीन शत्रु हृदय में उदय न हों तो भजन पथ में कोई रुकावट आ ही नहीं सकती। निरंतर तैलधारावत् भजन चलता रहे।

तैलधारावत् भजन तब ही हो सकेगा जब सांसारिक आसक्ति हृदय से निकलती रहेगी। आसक्ति तब ही निकल सकती है जब संसार दुःखों का सागर दिखाई दे तथा अस्थिरता नजर आये अर्थात्

सब संसारी वस्तुएँ प्रायः क्षण–क्षण नष्ट होती रहती हैं, ऐसा दिखाई दे। अगर इतनी बात हृदय में रम जाये तो संसार से वैराग्य होकर भगवद् चरणों में राग हो जाये। जब तक चित्त में संसारी आसक्ति रहेगी तब तक स्वप्न में भी भगवद् आसक्ति उदय नहीं होगी।

गृहस्थों को थोड़ा संयम भी रखना चाहिए। ब्रह्मचर्य खंडित होने से रसाभास सूख जाता है। शास्त्रों में देखा जाता है कि हजारों वर्षों की तपस्या एक क्षण में समाप्त हो जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि ब्रह्मचर्य कैसे सम्भव हो सकता है? क्यों न हो ? रसेन्द्रिय (जीभ) को नियंत्रित करना पड़ेगा। रूखा–सूखा खाकर रात में 2–3 बजे उठकर नाम को कान से सुनो, जिस प्रकार सीताजी अशोकवाटिका में नाम को रटा करती थीं। भरत जी रूखा–सूखा खाकर (गायों को गेहूँ खिलाकर) गोवर से गेहूँ चुनकर दलिया बनाकर खाते थे और रामनाम उच्चारण करते थे। श्रीगौरपार्षद गण पेड़ के नीचे आसन बिछाकर मधुकरी से अपना जीवन यापन करते थे।

जिह्वा का सीधा कनेक्शन उपस्थ इन्द्रिय से रहता है। स्वादिष्ट भोजन उपस्थ इन्द्रिय को जागृत कर देता है तब साधक का मन काबू में नहीं रह सकता।

या तो संसार का मजा ले लो या भगवद् आनन्द का रस पी लो। किसी एक की ही उपलब्धि हो सकती है। दोनों से एक साथ आनन्द नहीं मिलेगा। सभी गौर पार्षदगण गृहस्थ थे। उन्होंने अपने जीवन से हमको शिक्षा दी है। उन्होंने सन्तान की भी प्राप्ति की थी। लेकिन संयम से काम लिया एवं भजन भी किया।

शास्त्र का उदाहरण–

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहति हरिनाम।।

भरत–

पुलक गात हिय सिय रघुवीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।

इस प्रकार जीभ से उच्चारण करके हरिनाम स्मरण करना होगा। मठ मन्दिर की सेवा भी तब ही फलीभूत होगी जब साथ में हरिनाम होगा जो कलियुग का सार साधन है। इसके अभाव में रसानुभूति नहीं होगी।

सेवा वही फलीभूत होती है, जिस सेवा से सेवाधिकारी खुश हो। जिस सेवा से सेवाधिकारी को सुखानुभूति हो। जब तक हरिनाम की शरणागति नहीं होगी तब तक सेवाधिकारी (भगवान्) को सुख नहीं होगा।

पुजारी जी को तो कम से कम एक लाख हरिनाम स्मरण पूर्वक प्रत्येक दिन करना चाहिए। वैसे इनको काफी समय मिलता भी है। अधिक भी हरिनाम कर सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते तो भगवान् इनकी सेवा को अंगीकार नहीं करते। जब भगवान् ने सेवा को अंगीकार नहीं किया तो दर्शकगण भक्तों को भी ठाकुर दर्शन का लाभ नहीं मिल पायेगा। क्योंकि पुजारी ही भगवान् को चेतन करता है। यदि भगवान् चेतन नहीं हुए तो भक्त भी चेतन नहीं हो सकते। आकर्षण शक्ति ही इसमें काम करती है। चुम्बक लोहे को ही खींच पायेगा, सोना, चांदी को नहीं।

पुजारी ही दर्शकगणों को भगवान् के दर्शन प्राप्त करने की आकर्षण शक्ति देगा, अन्य उपायों से कुछ नहीं होगा। अपराध से बचो, भगवान् क्या कह रहे हैं–

सुन सुरेश उपदेश हमारा। रामहि सेवक परम पियारा।।
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक वैर–वैर अधिकाई।।

सेवक के वैरी को मैं छोड़ता नहीं हूँ क्योंकि वह मेरा भी वैरी है। सेवक से भी ज्यादा मेरा वैरी है।

इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला। काल दण्ड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहि। भक्त द्रोह पावक सो जरहि।।
जो अपराध भक्त सन करहि। राम रोष पावक सो जरहि।।

अहंकारी को भगवान् लात मारकर दूर फेंक देते हैं। मान प्रतिष्ठा शूकरविष्ठा। जो मान-प्रतिष्ठा चाहता है, वह भगवान् से दूर हो जाता है उसका मन उधर ही आकर्षित रहता है।

यदि **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** करनी हो तो उक्त दोषों से बचो, वरना यह जीवन व्यर्थ में ही चला जायेगा। मानव जन्म का मौका भगवान् ने दिया था उसे समझ नहीं पाया अतः भविष्य में मानव-जन्म नहीं मिलेगा, भगवान् उसे यहीं दण्ड देंगे।

सभी धर्मशास्त्र पुकार-पुकार कर कह रहे है-

क्यों दुःख सागर में गोता खा रहे हो, अभी भी समय है, माँ की गोद से बिछुड़े हुए शिशु की क्या गति होती है, वही गति तुम्हारी होगी।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

जिह्वार लालसे जेई इति-उति धाय।
शिश्नोदर - परायण कृष्ण नाहि पाय।।

जो अपनी जीभ का दास है और जो इस प्रकार इधर-उधर घूमता रहता है एवं अपने जननांग तथा पेट के प्रति समर्पित होता है, वह कृष्ण को प्राप्त नहीं कर सकता।

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला 6.227)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/03/2008

परमाराध्यतम श्रद्धेय भक्त प्रवर तथा श्रीशिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज

आप सभी के युगल चरणों में अधमाधम नराधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा संग प्राप्ति की करबद्ध प्रार्थना।

परमानन्दमय (अमृतमय) निमन्त्रण

मेरी व इस गोविन्द के परिवार की हार्दिक कामना है कि भगवान् के प्यारे श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी और उनके संग में मेरे अन्तरंग अन्तःकरण के अलौकिक नामनिष्ठ प्रेमी साथी आप सब इस गोविन्द के आश्रम में पधारकर हम सबको अनुगृहीत करें।

मुझे याद आ गया, एकबार श्रीगौरहरि श्रीवास पण्डित के घर पर कीर्तन कर रहे थे, उस दिन उन्हें संकीर्तन में आनन्द नहीं आ रहा था तो उन्होंने श्रीवास को बोला, कि आज मुझे संकीर्तन में रस नहीं आ रहा है, इसका मुख्य कारण मुझे यह महसूस हो रहा है कि आज कोई बाह्यवृत्ति वाला यहाँ छुपकर बैठा है। जब तलाशी हुई तो मालूम पड़ा कि श्रीवास की सास छुपकर संकीर्तन सुन रही थी। तो श्रीगौरहरि ने कहा कि इस मूर्ख को यहाँ से बाहर निकालो। यह संकीर्तन सुनने की अधिकारी नहीं है।

कहने का आशय यह है कि इस गोविन्द के घर में ऐसा तो कोई आयेगा ही नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि यह नामनिष्ठों का संग अलौकिक आनन्द प्रदान करेगा। अतः आप सभी यहाँ पधारकर मेरी कामना पूर्ण करें। घर के लोग मुझे कहते हैं कि– "हम आपको मठ में इस कारण से नहीं भेजते हैं कि वहाँ के भक्त आपकी सेवा करते हैं और सेवा लेना भक्ति के विरुद्ध है।

दूसरा कारण यह है कि, आपके यहाँ से जाने से आश्रम (घर) सूना-सूना हो जाता है। आप जाओं अवश्य परन्तु, किसी से सेवा मत लेना तथा 10-15 दिन रहो और फिर वापस यहाँ पर आ जाओ। अधिक दिन रहना उचित नहीं है। क्योंकि एक दिन आप भार बन जाओगे। मठ में गृहस्थों का रहना ठीक नहीं है। यदि आप संन्यासी होते तो ठीक था।

आपके पत्रों की पुस्तक छप नहीं रही है। यह हमें बड़ी ख़ुशी है। जब हमने सुना कि पुस्तक छपेगी, तो हमें गहरी चिंता हो गई कि प्रतिष्ठा होने से यह जो गोविन्द का आश्रम है वह खंडित हो जायेगा।"

मैंने कहा कि, 'मैं भी यही चाहता हूँ। यदि कोई नामनिष्ठ बनना चाहे तो वह मेरे इन पत्रों को टाइप करवाकर लेलें, वरना कौन भगवान् को चाहता है ? संसार में अधिकतर तो दिखावट ही फैल रही है। सच्ची भूख तो किसी विरले को ही होती है।'

अतः मेरी ओर से इस परिवार की प्रार्थना है कि आप सब यहाँ आकर हमें अनुग्रहीत करें।

'साधु संत येती घरा, तोचि दिवाली दसरा'

जब साधु-सन्त घर में आते हैं, वही वास्तव में
दिवाली तथा दशहरा का उत्सव होता है,
जो आनन्द-वर्धन करता है।

– सन्त तुकाराम महाराज

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 13/3/2008

परमाराध्यतम श्रद्धेय भक्त प्रवर, तथा शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

भगवद्सेवा में किसी भी प्रकार की कमी रहने पर वह हरिनाम से ही पूर्ण हो जाती है

हरिनाम स्मरण के अभाव में सभी सेवाएँ भगवद्भक्ति से शून्य हो जाती हैं। उसके बिना भगवान् किसी भी भक्त की सेवा को अंगीकार करते ही नहीं हैं। यज्ञ, योग, कर्म, श्रीविग्रह सेवा आदि करने पर भी हरिनाम के अभाव में वह निष्फल हो जाते हैं।

वृन्दावन में याज्ञिकी ब्राह्मण यज्ञ में आहुति देते समय 'ॐ गोविन्दाय स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण कर रहे थे। लेकिन भाव से नहीं केवल कर्म समझकर स्वाहा स्वाहा करके यज्ञ में आहुति दिया करते थे। अतः उन्होंने गोविंद के ग्वाल बालों की तरफ ध्यान नहीं दिया, जब ग्वालबाल भोजन की याचना करने लगे तो उनको फटकार भी दिया। लेकिन गोविंद नाम ने ही, जो स्वाहा-स्वाहा करके यज्ञ में आहुति डाल रहे थे जो भी बिना भाव से एक कर्म समझ के कर रहे थे-फिर भी नाम ने ही अपार कृपा का भागी बना दिया। वे यदि स्वाहा-स्वाहा करके नाम उच्चारण नहीं करते तो कृपा होने में संदेह था। उनकी धर्म-पत्नियाँ इस कृपा का कारण बनीं।

भगवद्नाम के अभाव में भगवद्कृपा स्वप्न में भी नहीं हो सकती, भाव से या कुभाव से भी नाम का उच्चारण किया जाये तो

कल्याण का भागी हो ही जाता है। धर्मशास्त्रों में नाम के अनेक उदाहरण हैं।

हरिनाम स्मरण से इसी जन्म में अष्टसिद्धि, नवनिधि तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि हो जाती है यदि कोई भी साधक मन को एकाग्र करके जपे तो! और एकाग्रता तब ही आयेगी जब संसार से वैराग्य की भावना उदय होगी। भावना भी तब ही उदय होगी जब मन में यह भावना हो जाये कि यह संसार दुःखों का खजाना है। यहाँ सुख नहीं है। तब ही भगवान् की ओर मन मुड़ जायेगा।

श्रीनानकदेव जी की उक्ति है–

पोस्त डोडा भांग धतूरा उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका चढी रहत दिन रात।।

अर्थात् भाँग–धतूरा आदि नशीले द्रव्यों का सेवन करने वालों का नशा प्रातःकाल होने तक उतर जाता है परन्तु भगवन्नाम का जो नशा है वह दिन रात चढ़ा ही रहता है।

बस! फिर मानव जन्म सफल है। लेकिन यह स्थिति तब ही उपलब्ध हो सकेगी जब किसी सुकृतिवान को किसी नामनिष्ठ सिद्ध संत का संग मिल जाये। वरना उक्त स्थिति उदय होना बहुत दुष्कर है।

हरिनाम स्मरण से ही उक्त कृपा उपलब्ध हो सकेगी, यदि इसे प्रेम से उच्चारण किया जाये तो!

नाम कृपा की बाट में जो हृदय अकुलाय।
नाम ही नानका संत से तुरतहि जाय मिलाय।।

भक्त की कृपा के बिना भगवान् कृपा नहीं करते। याज्ञिकियों की धर्म पत्नियाँ भक्त थीं, इसी कारण याज्ञिक ब्राह्मणों को भगवद्कृपा उपलब्ध हो गई। यदि इनकी पत्नियाँ भक्त नहीं होतीं तो याज्ञिकी ब्राह्मण यज्ञकर्म से भगवद्कृपा प्राप्त नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे तो कर्म–मार्ग के उपासक थे।

यदि किसी नामनिष्ठ संत की उपलब्धि न हो सके तो नामनिष्ठ संत की याद भी उद्धार का कारण बन सकेगी। जैसे कि, नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर नामनिष्ठ संत थे, श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज आदि का चिंतन भी लाभप्रद होता है। नारदजी, वाल्मीकि जी आदि संत हरिनाम पर ही जीवनयापन करते थे।

स्वयं की बढ़ाई जब सुनो तो गहरा दुःख होना चाहिए। क्यों दुःख होना चाहिए ? इसलिए कि, कितनी बुराइयाँ मुझ में भरी पड़ी हैं, इन बेचारों को यह पता नहीं है। तो फिर अहंकार नहीं आयेगा। अहंकार भजन नष्ट करने का अमिट शत्रु है।

इस कलिकाल में जिस साधक को हरिनाम में रुचि हो गई, हरिनाम स्मरण का स्वभाव बन गया, हरिनाम की शरण में हो गया, तो वह साधक सत्संग, शास्त्र श्रवणादि आध्यात्मिक विषय में पूरी तरह से उत्तीर्ण हो गया।

यदि हरिनाम में रुचि नहीं हुई, तो सब साधन का केवल श्रम ही प्राप्त हुआ। स्वयं की शक्ति से कुछ उपलब्धि नहीं हो सकती, संत, गुरु व भगवान् से प्रार्थना ही इस उपलब्धि का कारण बनेगी। भक्ति कभी नष्ट नहीं होती, श्रम का भी लाभ होगा। सिर्फ देर हो जायेगी।

देवता तक तरसते हैं कि हमारा जन्म कलिकाल में हो जाये तो हम हरिनाम की शरण में होकर भगवद्चरणों में पहुँच जायें। सत्युग, त्रेता व द्वापर में साधन करने में जो कठिनाई है, वहीं कलियुग में उसके एक प्रतिशत भी नहीं है। घर में रहते हुए भगवद् प्राप्ति हो जायेगी। केवल मात्र हरिनाम में रुचि हो जाये। हरिनाम में रुचि तब ही हो सकती है जब उक्त आचरण कर के भगवद्प्रेमी संत की उपलब्धि हो जाये। इससे उसके आकर्षण से हरिनाम में रुचि हो सकती है। यह रुचि भी तब ही होगी जब संसारी आसक्ति कम होती जाये और भगवद् आसक्ति बढ़ती जाये, वरना संत का प्रभाव भी नहीं हो सकेगा। **स्वयं की कृपा तथा संतकृपा दोनों का समावेश होना परमावश्यक है। एक हाथ से ताली नहीं बजती।**

सत्व, रज और तमोगुण की अन्तःकरण में लहर उठती रहती है। भगवद्भाव में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। इनकी परवाह न करके अपनी ध्येय वृत्ति पर हृदय से चिपके रहे तो सफलता अर्थात् विरहावस्था उदय होने में देर नहीं हो सकती। जो भगवान् को न चाहकर संसार को चाहता रहेगा उसे केवल श्रम ही हाथ लगेगा। संसार से वैराग्य होना परमावश्यक है। वैराग्य ही मन को भगवद्–चरणों में लगा सकता है। जब तक संसार के प्रति दुःख बुद्धि रखकर उससे नहीं हटेंगे तब तक भगवद्प्रेम बहुत दूर रहेगा। यह युक्ति शास्त्र बता रहा है, मैं नहीं बता रहा हूँ।

साधक को भगवद् प्राप्ति की भूख होना आवश्यक है। यह भूख ही भगवद्दर्शन करा देगी। नामनिष्ठ संत के सानिध्य में भी गये लेकिन भूख तो है ही नहीं, तो साधक को संत भूखतृप्ति की सामग्री देगा लेकिन साधक खाना ही नहीं चाहता तो जाने से कोई लाभ नहीं। संत का समय भी बर्बाद किया तथा अपने समय का भी कोई मूल्य नहीं समझा। ऐसे साधक को तो कोई उपलब्धि नहीं हो सकती।

जब खेत में कभी गया ही नहीं और सोच रहा है कि कोई नुकसान नहीं हो रहा है, लेकिन जब गया तो क्या देखता है कि खेत में दाना तक नहीं है, तो–

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत!

यह सभी का हाल है। बातें तो आसमान जैसी ऊँची बनाते हैं, लेकिन तथ्य कुछ और ही है। बस ऐसे लोगों का काम ही है कि दोनों का समय बर्बाद करना। ऐसों से तो दूर ही रहना श्रेयस्कर होगा। करना तो कुछ चाहते ही नहीं तथा जो चाहते हैं उनका माथा खाते हैं कि ऐसा क्यों नहीं हुआ, वैसा क्यों नहीं हुआ ? मुख में ग्रास भी दे दिया लेकिन चबाकर निगलते तक नहीं। ऐसों को कैसे समझाया जाये ? जो कुछ भी प्राप्त करना है उसके लिए स्वयं को भी तो कुछ करना ही पड़ेगा।

हर रोज रात–दिन सुनते हैं भगवद् सम्बन्धी कैसेट, परन्तु जो चलाते हैं कैसेट, उनका तो एक प्रतिशत भी भगवान् की तरफ मन

नहीं होता। पास वालों को Disturb करना ही उनका काम है। कैसेट सुनकर कोई भक्ति की ओर नहीं मुड़ता, वह सुनना तो हवा की तरह उड़ जाता है। केवल कानों को तृप्त करना ही उनका ध्येय होता है। रात में न खुद सोते हैं और न पड़ोसियों को सोने देते हैं। ऐसे मानव तो राक्षस प्रवृत्ति के ही होते हैं। इससे तो केवल अपराध ही हस्तगत होता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमे वैष वृणुते तेन लभ्य
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।

(कठोपनिषद 1.2.23) और मुण्डक-उपनिषद 3.2.3)

यह परब्रह्म परमात्मा तो न तो प्रवचन से प्राप्त होते है, न बुद्धि से और बहुत अधिक श्रवण से भी प्राप्त नहीं होते। वे तो केवल उस व्यक्ति के (शुद्ध भक्त के) द्वारा प्राप्त होते हैं, जिसे वे स्वयं चुनते हैं। ऐसे व्यक्ति के सामने वे अपना स्वयं-रूप प्रकट करते हैं।

• हरिनाम से ही शुद्ध भक्त का संग प्राप्त होता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 16/4/2008
एकादशी

श्रीयुत भक्त व शिक्षागुरुदेव के चरणकमलों में नराधम अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवद् भाव जागृति की बारम्बार प्रार्थना।

भगवद् भाव प्राप्ति हेतु अहम् का सर्वोत्तम महत्व

मानव का अन्तःकरण चतुष्टय बना हुआ है, मन–बुद्धि–चित्त व अहंकार से। यह चतुष्टय एक दूसरे से सूक्ष्म है। अहंकार इतना झीना व सूक्ष्म है कि इसे पकड़कर महसूस करना स्वयं के अधिकार से बाहर है। जिस साधक पर भगवान् और भक्त की कृपा बरसती रहती है, वह ही इस अहम को पकड़कर अपना विकृत स्वभाव बदल सकता है।

प्रश्न उठता है कि, यह अहम् क्या बला है ? अहम् अपनत्व का द्योतक है। अपनत्व का आशय होता है– **'मैं और मेरा'** तथा **'तू और तेरा।'** 'मैं और मेरा' माया से सम्बन्ध रखता है और 'तू–तेरा' भक्त व भगवान् से सम्बन्ध रखता है।

अब माया का सम्बन्ध कैसे तोड़ा जाये तथा भक्त व भगवान् से कैसे जोड़ा जाये ? जैसे एक पौधे को खोदकर दूसरी क्यारी में लगा दिया जाये। लेकिन खोदने के लिए औजार नहीं है, अर्थात् भक्त रूपी खुरपी साधक को उपलब्ध नहीं है। भक्त के सम्बन्ध के अभाव में माया का नाता तोड़ा नहीं जा सकता।

अहम् को भक्तचरणों में जोड़ दे। भक्त ही माया का नाता तोड़ने में सक्षम है। भक्त की उपलब्धि के अभाव में माया का सम्बन्ध तोड़ा नहीं जा सकता। जिस प्रकार प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति

से मिलने के लिए प्रथम उनके बॉडीगार्ड (अंगरक्षक) से प्रार्थना करनी पड़ेगी। वैसे ही भक्त ही भगवान् का बॉडीगार्ड है।

भक्त भी सजातीय होना आवश्यक है। भक्त जिस साधन से भगवद्भाव जागृत करना चाहे, वही सजातीयता भक्त को भगवान् से मिला देगी। सजातीय के अभाव में अहम् बदला नहीं जा सकता। क्योंकि चारों युगों के लिए भगवद् प्राप्ति के साधन भिन्न–भिन्न हैं। जिस युग का जो साधन है, अगर वही साधन भक्त अपनायेगा तो वही साधन भगवान् की उपलब्धि करा देगा। यदि साधन युग के प्रतिकूल होगा तो भगवद् प्राप्ति कदापि नहीं होगी।

कलियुग के लिए भगवद् प्राप्ति का साधन है हरिनाम संकीर्तन और जप। यदि साधक यज्ञ, ध्यानादि करने लगेगा तो भगवद् प्राप्ति कभी भी नहीं होगी। क्योंकि कलियुग दोषों का भंडार है। कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं है, न कोई यज्ञ करने वाले शुद्ध अन्तःकरण वाले हैं। साधक को निष्फलता ही प्राप्त होगी।

युग के साधन अनुसार सजातीय भक्त से नाता जोड़ना पड़ेगा। अर्थात् नामनिष्ठ का संग करना परमावश्यक है। वही नामनिष्ठ नाम में अन्तःकरण को जोड़कर अहम् को माया से हटाकर नाम में रुचि उपलब्ध करा देगा। क्योंकि वह चुम्बक है। वह अपनी ओर आकर्षित कर देगा। उसकी नामनिष्ठा नाम से परमानन्द का भाव जागृत करा देगी।

इसलिए नाम ही जो सर्वशक्तिमान है वह नामनिष्ठा ही साधक की धीरे–धीरे जगत् की आसक्ति छुड़ाकर भक्त व भगवान् के प्रति आसक्ति जागृत करा देगी। अर्थात् अहम् को भौतिक भाव से हटाकर आध्यात्मिक भाव में पलट देगी। नाम ही संसारी नश्वरता का बीज अन्तःकरण में बो देगा। जब संसारी आसक्ति नहीं रहेगी तो भक्त व भगवान् से आसक्ति जुड़ जायेगी। जब ऐसी स्थिति अन्तःकरण में रम जायेगी तो मन–बुद्धि–चित्त स्वतः ही छाया की भांति अहम् से जुड़ जायेगा। जब अहम् से जुड़ जायेगा तो मन

छाया की तरह उससे चिपक जायेगा। मन को वश में करने का यह सरलतम उपाय है। पूरे लेख का आशय यह है कि सजातीय का संग करो।

कलेर्दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग परं व्रजेत।।
कृते यत् ध्यायते विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्हरिकीर्तनात्।।

हे राजन् यद्यपि कलियुग दोषों का सागर है, फिर भी 'इस युग में एक अच्छा गुण भी है– केवल कृष्णनाम का कीर्तन करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त होकर दिव्य धाम को प्राप्त कर सकता है।

सत्ययुग में भगवान् का ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से तथा द्वापरयुग में भगवान् के चरणकमलों की सेवा (अर्चन–पूजन) करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुग में केवल हरि–कीर्तन (हरिनाम) से प्राप्त होता है।

(श्रीमद्भागवत 12.3.51,52)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 16/12/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणों में मेरा साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति का सरलतम स्वयं सिद्ध अकाट्य साधन

हरिनाम को कान से सुनना

रामवचन–

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

उदाहरणार्थ– जैसे एक शिशु घर के बाहर चौक में अपनी मस्ती में खेलता रहता है। शिशु की माँ घर के अन्दर काम करती रहती है लेकिन माँ का पूरा ध्यान बच्चे की ओर ही रहता है। वह सोचती रहती है कि मेरा शिशु कहीं गिर न जाये। या किसी बुरी चीज को खा न जाये, आदि–आदि।

जब शिशु माँ–माँ पुकारते हुए रोने लगता है, तो माँ तुरन्त घर का काम छोड़कर शिशु के पास दौड़कर आ जाती है। फौरन गोद में उठाकर प्यार भरा चुम्बन करती है, पुचकारती है, स्तनपान कराती है। और जब माँ देखती है कि बच्चा तो अपने खेल में मस्त है तो माँ दबे पाँव वापस घर में आकर अपना काम करने लग जाती है। यह है संसारी माँ का शिशु के प्रति वात्सल्य भाव।

अब विचार कीजिए कि जो जन्म–जन्मान्तर की माँ (भगवान्) है उसमें शिशु (भक्त) के प्रति कितना वात्सल्यप्रेम होगा ? अकथनीय है। भगवान् तो वात्सल्यरस के समुद्र हैं। जब भक्त थोड़ी भी आँसू

की बूँदें बहाता है तो भगवान् रूपी माँ कैसे ठहर सकती है, उसका दयालु हृदय काँप उठता है। शीघ्र भक्त के पास आ जाती है। लेकिन भगवान् जब देखते हैं कि यह तो मुझे नहीं बुला रहा है, हरिनाम करते हुए खेत व दुकान का चिंतन कर रहा है, तो भगवान् आकर चले जाते हैं।

शिव वचन–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

मन दशों–दिशाओं के अलावा कहीं जाता ही नहीं है, अतः जहाँ मन हरिनाम को ले जायेगा, वहाँ का मंगल (लाभ) ही कर देगा। क्योंकि हरिनाम का स्वभाव है चारु चिन्तामणि, वाञ्छा कल्पतरु। जिसका चिंतन करोगे उसका कल्याण कर देगा।

माँ–माँ पुकारना ही हरिनाम पुकारना है। माँ–माँ पुकारना संसारी माँ को बुलाना है एवं '**हरे कृष्ण हरे राम**' पुकारना भगवान् को पुकारना है।

भगवान् तो जन्म–जन्मान्तर की माँ है क्योंकि सभी चल–अचल जीवमात्र उसने पैदा किये हैं, सभी भगवान् के बच्चे हैं।

साधक जब नाम जपता है तब नाम के मुखारविंद से निकलते ही भगवान् भक्त के पास आ जाते हैं, परन्तु भगवान् जब देखते हैं कि जापक का मन मुझमें न होकर संसार में भटक रहा है, तो भगवान् फौरन वहाँ से चले जाते हैं अतः मन को रोकने का उपाय केवलमात्र श्रवण ही है। जब हम किसी को कहते हैं कि अमुक काम करना है तो स्वयं का कान भी इस शब्द को सुनता है तथा जिसको काम बताया जाता है वह भी उस शब्द (वाक्य) को सुनता है, फिर हृदय में उस काम का अहसास होता है तब ही काम सूचारु रूप से सफल हो जाता है। जब मन का संचार होगा तब ही जिह्वा हरकत में आयेगी। तीनों जगह में ही मन द्वारा ही कोई भी काम सम्पूर्ण होता है। तीन जगह कौन सी हैं ?

1. मन जिह्वा को बोलेगा कि–यह काम बोलो।

2. कान उसे सुनेगा, कान उस वाक्य को हृदय तक पहुँचाएगा।

3. हृदय उसको बुद्धि द्वारा संचारित करेगा तब काम पूरा होगा। यदि मन को कान के पास नहीं ले गए तो बिना सुने काम बेकाम हो जायेगा।

जब संसार का ही काम उक्त तरीका अपनाये बिना नहीं हो सकता तो भगवान् से सम्बन्धित काम कैसे सफल हो सकता है ? थोड़ा गहरा विचार करके देखना चाहिए। वरना यह जीवन व्यर्थ में चला जा रहा है एवं चला जायेगा। **मैं केवल नाम पर ही जोर देता हूँ, क्योंकि यही प्रमुख बीज है और अन्य सभी तो इसी की शाखा, पत्र, फल इत्यादि हैं।**

श्रीचैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी को उपदेश देते हुए कहते हैं–

नित्य-सिद्ध कृष्ण-प्रेम 'साध्य' कभु नय।
श्रवणादि-शुद्ध-चित्ते करये उदय।।

कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम जीवों के हृदयों में नित्य स्थापित रहता है। यह ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे किसी अन्य स्रोत से प्राप्त किया जाए। जब हरिनामादि श्रवण तथा कीर्तन से हृदय शुद्ध हो जाता है, तब यह प्रेम स्वाभाविक रूप से जागृत हो उठता है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला 22.107)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 25/12/2006

परमादरणीय आराध्यतम प्रातः स्मरणीय श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेम-प्राप्ति की प्रार्थना।

हरिनाम में अपार अकथनीय शक्ति

(दार्शनिक सिद्धान्तानुसार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से)

अनन्त ब्रह्माण्डों में नाम शब्द के बिना कोई भी कर्म हो ही नहीं सकता। किसी वस्तु विशेष का नाम उच्चारण करके ही कोई भी कर्म सम्पन्न होता है। नाम का शब्द भी यदि कान में चला गया तो कर्म सम्पन्न हो जायेगा एवं यदि शब्द कान में नहीं गया तो वह कर्म निष्फल हो जायेगा।

प्रत्येक नाम शब्द में सुख एवं दुःख की ही अनुभूति रहती है, तीसरी कोई स्फुरणा नहीं होती। प्रत्येक नाम शब्द में अपार शक्ति निहित रहती है। उदाहरणार्थ- जैसे किसी ने किसी को अपशब्द (गाली) बोला, और यदि कान में यह शब्द श्रवण हो गया तब तो उसके हृदय में उथल-पुथल मच गई, अर्थात् क्रोध का भाव प्रकट हो गया, दुःख की अनुभूति इस शब्द ने कर दी।

दूसरी तरफ यदि नाम शब्द कान में नहीं गया अर्थात् इस समय सुनने वाले का मन कहीं दूसरी ओर था तो इस नाम शब्द का कोई प्रभाव उस सुनने वाले पर नहीं होगा। उसके हृदय में कोई उथल-पुथल नहीं होगी।

दूसरी तरफ, यदि किसी को प्रेम भरा नाम-शब्द बोल दिया, जैसे कि, 'बहुत दिनों में आपका पधारना हुआ, आज हमारा शुभदिन

उदय हुआ।' तो सुनने वाले के हृदय में प्रेमभाव की लहरें उठने लगेंगी और सुख का भाव जागृत हो जायेगा। शब्द ने ही तो हृदय का उफान लाया।

इसी तरह से **'हरे कृष्ण राम'** शब्द में अपार अकथनीय प्यार भरा समुद्र लहराता रहता है। यह किसी सुकृतिशाली को ही सुलभ हो जायेगा। परन्तु होगा नाम श्रवण से ही।

हरिनाम शब्द में भी अपार शक्ति निहित है। यदि किसी सुकृतिशाली को इन नामों में श्रद्धा बन जाये तो इसी जन्म में छद्म रूप में भगवद्दर्शन होकर जन्म-मरण से छुटकारा मिल जायेगा तथा गोलोक धाम की प्राप्ति हो जायेगी।

शब्दों से जुड़कर मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें अपार शक्ति भर दी गयी है, जिनसे एक क्षण में ही सृष्टि का विनाश हो सकता है तथा एक क्षण में ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हो सकता है। मंत्रों से राक्षस आकाश में हवा में उड़कर देवताओं से युद्ध करते हैं। दीप राग गाकर दीपक जला देते हैं। मेघ राग से बरसात बरसा देते हैं आदि-आदि।

शब्द के बिना सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। जरा गहरा विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम जापक के पास समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तथा अष्टसिद्धियाँ और नव-निधियाँ सुलभ हो जाती हैं।

जब भगवान् ही मिल जाते हैं, तो इससे बड़ा लाभ क्या हो सकता है?

परन्तु लाभ होगा केवल मात्र हरिनाम श्रवण से ही। वरना अनेक जन्म बीत जाएँगे। श्रवण बिना कुछ नहीं मिलेगा। सुनना तो Most Essential (बहुत आवश्यक) है। सुने बिना तो सृष्टि का काम ही नहीं चल सकता तो भगवान् कैसे मिल जायेंगे ? असम्भव ही है। चार माला कान से सुनकर करने से भगवान् के लिए छट-पट प्रकट हो जाती है, अगर यदि कोई अपराध न हो तो।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 27/12/2006

कान से ही बन्धन और मुक्ति

चारों युगों का शास्त्रीय महत्वशील सरल साधन नाम का एक मात्र श्रवण

इन्द्रियों का राजा है कान। कान नरक दे सकता है और वही कान भगवद्चरण को भी दे सकता है।

अनन्त जन्मों से कान ही भौतिक वार्ताएँ सुन-सुनकर भवसागर में डाल देता है एवं कान ही आध्यात्मिक वार्ताएँ सुन-सुनकर भगवद्चरणों में पहुँचा देता है। अतः इन्द्रियों में कान ही इन्द्रियों का राजा है। यदि कान से मन को वश में कर लिया जाये तो सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

यदि कान से हरिनाम को सुना जाये तो इसी जन्म में प्रभु दर्शन हो जाता है। ठाकुर जी साक्षी है। अकाट्य सिद्धान्त है। दो वस्तुओं का घर्षण तीसरी वस्तु को प्रकट कर देता है। जिस प्रकार दो अरणियों के घर्षण से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। ऑक्सीजन+ हायड्रोजन मिलकर पानी बन जाता है। तीली और माचिस का घर्षण अग्नि को जन्म देता है, आदि-आदि। इसी प्रकार जिह्वा (उच्चारण) एवं कान (श्रवण) इन दोनों का घर्षण विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित कर देता है। यदि ठाकुरजी के किसी प्यारे को चार माला का कान से सुनकर अभ्यास हो जाये तो 100% ठाकुर के लिए छटपट हो जाये। इसमें कोई पाप या अपराध अड़चन नहीं कर सकता, न ही कुसंस्कार। आजमाकर देखना चाहिए। मानव जन्म बार-बार नहीं मिलता, अवसर चूकने पर पछताना पड़ेगा। काल का कोई भरोसा नहीं है कि कब अचानक आकर निगल जाये।

इसमें एक शर्त है कि सुकृतिवान जापक का एकमात्र लक्ष हो भगवद् प्राप्ति तथा भगवद्प्रेम। सुकृतिवान को ही ठाकुरजी यह मौका देंगे वरना पढ़कर भी यह हृदयंगम नहीं होगा। जापक एक-एक लाख हरिनाम करते हैं परन्तु 40-50 साल तक करने पर भी उनका कारण शरीर (स्वभाव) नहीं बदला। इसका कारण केवल मात्र मन का भटकना, प्रमाद से जप करते रहना है।

मुखारविंद रूपी दीपक में जिह्वा रूपी बाती डालकर, कानरूपी कुप्पी से हरिनाम श्रवणरूपी तेल निरन्तर डालते रहने से ज्ञानरूपी दीपक जल उठेगा और जन्म-जन्मान्तर का घोर अज्ञानरूपी अंधकार सदा के लिए विलीन हो जायेगा।

पत्रद्वारा गुरुदेव का आदेश-

CHANT HARINAM SWEETLY & LISTEN BY EAR

तब से गुरु आदेश गुरुकृपा से ही पालन किया जा रहा है। आजमा कर देखिए। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। करके देखिए क्या-क्या गुल खिलते हैं! कहने में अकथनीय है। सारा का सारा जीवन बदलकर आनन्दमय हो जायेगा, वह भी बड़ी सरलता से। **उस जापक को कोई पहचान नहीं सकता, जिस पर ठाकुर कृपा है वही पहचान पायेगा। भक्त ही भक्त को पहचान सकता है। जौहरी ही हीरे की परख जान सकता है।**
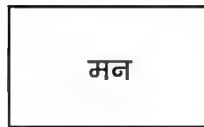
प्रेमप्राप्ति के बाद भगवद् दर्शन होता है, नाम को कान से सुनते-सुनते हृदय में प्रेमांकुर अंकुरित होगा। इसके बाद विरहाग्नि प्रकट होगी। विरहाग्नि में सारे दुर्गुण जलकर भस्म हो जाएँगे तथा मिलन की छटपट इतनी तेज होगी कि एक-एक क्षण युग के

समान बीतने लगेगा। बार-बार सांस रुकने लगेगी। प्राण छोड़ने को तैयार हो जायेगा। तब भगवान् से रहा नहीं जायेगा तथा भक्त को दर्शन देने को बाध्य हो जायेगा। लेकिन यह अवस्था तब ही आयेगी जब संसार उसे सूना-सूना महसूस होने लगेगा। उसे भगवान् के सिवाय कोई भी अपना नहीं लगेगा।

ऐसी स्थिति में उसका वियोग भी सुखकारक होगा। दुःख तो संसार में है। वहाँ तो (भगवान् के सान्निध्य में) दुःख की छाया भी नहीं है। उस वियोग में भी संयोग ही है। कथन से बाहर है, जो चखता है उसे ही मालूम है। दूसरे को बताना तो असम्भव ही है।

श्रीगौरहरि ने भक्त के रूप में प्रकट होकर भक्ति कैसे की जाती है यह प्रत्यक्ष रूप में आचरण करके दिखा दिया। सुकृतिवान ही उसको पकड़ सका। विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुए बिना क्या कोई ठाकुर जी को पा सकता है ? कदापि नहीं। उक्त बताए अनुसार ही विरहाग्नि प्रकट होगी, अन्य उपाय से नहीं। जोर से कीर्तन सुनकर ही तो गौरहरि ने विरह की प्राप्ति की थी।

मन को वश में करने का शास्त्रीय सरलतम तरीका-

उक्त Rectangle में मन फँसा पड़ा है। उसको निकलने के लिए कहीं जगह ही नहीं है। हरिनाम का जीभ से उच्चारण करके उसे कान के द्वारा सुनो। जब सुनोगे तब जिसका नाम ले रहे हो वह आँखों के सामने आयेगा। जब सामने आयेगा तब क्या चाहते हो यह प्रश्न उठेगा। तो बताओ, मन कहीं अन्य ठौर जा सकेगा ?

प्रमाद से हरिनाम लेना भी अपराध है लेकिन कान के द्वारा सुनने से अपराध खंडित हो जाता है।

सिद्धांत यह है कि सजातीय वस्तु सजातीय के पास आकर्षित होती है। और विजातीय वस्तु विजातीय के पास आकर्षित होती है। इसमें दो राय नहीं है। आत्मा परमात्मा की सजातीय है अतः आत्मा परमात्मा के संग में रहकर ही आनन्दलाभ कर सकेगी, विजातीय अर्थात् भौतिक जगत के संग में नहीं।

हरिनाम वाञ्छा कल्पतरु है, चारु चिन्तामणि है, जहाँ पर मन हरिनाम को ले जायेगा वहाँ उसका कल्याण कर ही देगा। हरिनाम जपते हुए मन में अगर दुकान की याद आ गई तो दुकान में मुनाफा हो जायेगा। एवं यदि कान से नाम सुना जायेगा तो वह बाहर कहाँ जायेगा? हृदय में जाकर आत्मा से मिल जायेगा। मिलते-मिलते, सुन-सुनकर प्रेम हो जायेगा एवं जन्म-मरण का चक्कर ही सदा के लिए हट जायेगा।

शास्त्रीय प्रमाण-

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

प्रमाद से लिया हुआ नाम भी कल्याणकारी होता है।

शास्त्रवचन-

गिरते पड़ते अकस्मात् यदि नाम मुख से निकल जाये तो कल्याण कर देता है। मन नाम को दशों-दिशाओं में ले जाकर उन दिशाओं का कल्याण कर देगा लेकिन स्वयं का कल्याण तो श्रवण द्वारा ही होगा।

प्रश्न - मन की परीक्षा कैसे की जाय कि मन संसार को चाहता है या भगवान् को चाहता है?

उत्तर - मन की परीक्षा स्वयं ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं। जब माला से हरिनाम शुरु करें और उसमें मन रमे, रमने से अलौकिक आनन्द का अनुभव हो। स्वप्न अपने प्रयास से जैसा चाहे वैसा नहीं आ सकता। जिसमें मन को आकर्षण होगा वही

स्वप्न आयेगा। भगवान् में सच्चा मन होगा तो नींद में भी तड़पन होगी। कब मुझे भगवान् मिलेंगे? नाम जपने पर अपने पास भगवान् को बैठने, खड़े होने, मुस्कुराने, अप्रकट होने, मूकबात करने आदि का अनुभव होगा। कोई कार्य अगर कठिन जान पड़ेगा तो तुरंत हो जायेगा, तो वह भक्त ऐसा समझेगा कि भगवान् मुझे कितना चाहते है, तो वह रो पड़ेगा। ऐसे कई लक्षण हैं, सारे लेख में नहीं आ सकते।

मन का उद्गार

क्या उदारता का स्वभाव और अब नहीं है?
अधमों से कोई दरकार अब नहीं है?
पाते थे जिन-चरणों से, हिम्मत लाखों अपराधी।
अब अपराधियों का, कोई अवतार अब नहीं है?
क्षमा का अवतार लेकर आए इस जग में।
क्या वह करुणा सिंधु का, स्वभाव अब नहीं है?
बैठा अनिरुद्ध दास ताक में, दिल में क्षमा क्या अब नहीं है?

प्रश्न – क्या गौरहरि की भक्ति करना परमावश्यक है?

उत्तर – अवश्य! कलिकाल पापियों का सागर है, सागर में रहकर कहाँ बच पाओगे। श्रीकृष्ण ने पापियों को हथियारों से मारा। उनके मन में पापियों के लिए दया नहीं थी। जैसा किया वैसा भोगो, यह विचार सभी भगवद् अवतारों का था। लेकिन गौरहरि अगाध दया के सागर हैं, क्योंकि वह राधा का भाव लेकर प्रकट हुए हैं। राधा में अदोष-दर्शिता कूट-कूटकर भरी है। अतः गौरहरि का भजन इस समय परमावश्यक है।

तब ही तो गौरहरि का अवतार 28 वें द्वापर के बाद एकबार ही होता है। ऐसा शास्त्रों में लिखा है। जो इस गौरहरि की कड़ी से जुड़ गया, चाहे उसने खास भजन भी नहीं किया हो। इस जन्म में न सही, दूसरे-तीसरे जन्म में अवश्य ही जन्म-मरण से छूट जायेगा। वरना तो इसी जन्म में आवागमन सदा के लिए हट जायेगा। अधूरे का अगला जन्म श्रीमानों के घर में ही होगा।

भजनगीति में भी नरोत्तमदास ठाकुर एवं भक्तिविनोद ठाकुर ने प्रार्थना की है कि मैं गौरहरि एवं श्रीकृष्ण में भेद नहीं समझूँ ऐसी कृपा करो कि मेरा मन गौरहरि में लग जाए क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण ही गौरहरि हैं।

अब चतुर्मास आरम्भ होने वाला है, भगवान् मुझे तीन लाख हरिनाम करने की शक्ति प्रदान करें। कहाँ करना चाहिए ? जैसी ठाकुर की मर्जी होगी, वहीं पर बैठक हरिनाम की होगी। निर्जला एकादशी आपकी कृपा से निराहार हो गई, गर्मी कुछ कम थी, बरसात हो गई थी। अन्तिम सांस आ रही है, भजन करना ही सच्ची कमाई है। आप ऐसी शक्ति प्रदान करते रहें कि मेरा आवागमन हट जाये।

अवंती ब्राह्मण कहते हैं–

"न तो ये लोग मेरे सुख तथा दुःख का कारण हैं, न ही देवता, न मेरा शरीर, न ग्रह, न मेरे विगत कर्म तथा काल। प्रत्युत यह तो एकमात्र मेरा मन है जो सुख तथा दुःख का कारण है और भौतिक जीवन को निरन्तर घुमाता रहता है।"

(श्रीमद्भागवत 11.23.42)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 24/8/2007
एकादशी

परमाराध्यतम श्रद्धेय, मेरे शिक्षागुरुदेव 108 श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना।

शास्त्रीय सत्य सिद्धांत में अंधापना

द्वापरयुग का धर्म-कर्म है कि अर्चाविग्रह को साक्षात् भगवान् समझकर शुद्ध भक्तिद्वारा ठाकुरजी का श्रद्धा और प्रेम से अर्चन-पूजन करना। ठाकुर जी की यह शुद्ध अर्चन-पूजा तब ही श्रद्धा व प्रेम से हो सकेगी जब पुजारी जी के पास भक्तिभाव हो। पुजारी के पास भक्तिभाव तब ही होगा जब वह कम से कम 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम जो कि कलियुग का धर्म-कर्म है उसे श्रवण करेगा।

जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है- महाप्रभु श्रीगौरहरि। जिन्होंने अपने भक्तजनों को आदेश दिया कि सभी को एक लाख हरिनाम श्रवण नित्य करना होगा ताकि इन पर ठाकुरजी की अल्पकाल में कृपा हो जाये। नाम ही रुचि पैदा करा कर संसार से आसक्ति छुड़ा देगा। संतों का संग करा देगा।

बिनु हरिकृपा मिलहि नहि सन्ता।

हरिनाम श्रवण के अभाव में ठाकुरजी का अर्चन-पूजन एक कठपुतलीवत होगा। बिना हरिनाम के श्रद्धा तथा प्रेम होगा ही नहीं। क्योंकि हरिनाम श्रवण रूपी धन पुजारी जी के पास है ही नहीं। बिना धन के कोई काम होता ही नहीं।

द्वापरयुग की भक्ति जो ठाकुर जी का अर्चन-पूजन है वह इसलिए परमावश्यक है कि, साधकगण ठाकुर जी की शरण में

रहकर, कलियुग का धर्म–कर्म जो हरिनाम श्रवण कीर्तन है इसे शान्तिपूर्वक कर सके। मठ–मन्दिर में ठाकुरजी का विराजना होता है, इनके संरक्षण से हरिनाम श्रवण संकीर्तन बड़ी सुगमता से होता रहता है। हरिनाम के अभाव में उक्त साधन होना असम्भव ही है क्योंकि अराजकता फैलने का भय बना रहता है।

इसी कारण गृहस्थ भक्त अपने घर के एक कमरे में ठाकुर जी का चित्रपट विराजमान करके निर्भयता से सोता रहता है। उन्हें अपना स्वामी समझकर हरिनाम श्रवण कीर्तन का आयोजन नित्य सुगमता से करता रहता है। क्योंकि वहाँ अराजकता का भय नहीं होता।

गृहस्थ भक्त नित्य ठाकुर को भोग अर्पण करता है, शयन कराता है। गर्मी में पंखा करता है। सर्दी में गर्म शॉल उढ़ाता है। कष्ट आने पर ठाकुर से प्रार्थना करता है। बैठकर उनसे मूक बातें भी करता है। समस्याओं का हल पूछता है। संतों की कथा ठाकुर को प्यारी लगती है तो उनका चरित्र सुनाता है। ठाकुर जी को हर प्रकार से सुखी करके देखना चाहता है। ठाकुरजी भी उसे सुखी करते रहते हैं। ठाकुरजी कहते हैं कि जैसा भक्त मुझे भजता है, मै भी भक्त को वैसे ही भजा करता हूँ। Action Reverse Reaction जैसी हरकत वैसी बरकत होगी ही। यह गीता का वचन है।

अब रहा कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम श्रवण कीर्तन। जहाँ यह नहीं हो रहा है वहाँ ठाकुर का अर्चन–पूजन भी निःसंदेह नहीं हो रहा है। वहाँ अराजकता जरूर फैलेगी। नाम श्रवण कीर्तन के अभाव में ठाकुर जी का अर्चन–पूजन जो द्वापरयुग का धर्म–कर्म है वह भी शक्तिहीन ही रहता है। क्योंकि मूल वृक्ष की जड़ में जो नाम श्रवण रूपी जल नहीं दिया गया तो ठाकुर जी का अर्चन–पूजन रूपी वृक्ष सूखकर बिना पत्ते, फूल, फल के नंगा ही रहेगा और एक दिन वह गिर भी पड़ेगा। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक मठ वासी ब्रह्मचारी, संन्यासी कम से कम एक लाख हरिनाम श्रवण अवश्य करते रहें, तब ही कथा, कीर्तन, प्रवचन में बल प्रकट हो

जायेगा। वरना सभी साधन बल–हीन होते रहेंगे। अन्यथा केवल समय को बर्बाद करते रहो। कुछ उपलब्धि हासिल नहीं होगी।

पहली कक्षा में तो बैठे नहीं एवं बी.ए. की कक्षा में बैठ गए तो क्या कुछ उपलब्धि हो सकेगी ? केवल हाथ पर हाथ रखकर समय गुजारते रहो। इससे अधिक मूर्खता क्या हो सकती है ? मानव जन्म जो भगवान् की कृपा से मिला है, उसे व्यर्थ में खोते रहो। अमूल्य रत्न हाथ लगा था। पत्थर समझकर कूड़े में फेंक दिया। फिर दुबारा मिलने के लिए तरसते रहो।

ठाकुरजी का अर्चन–पूजन ठाकुर के सुख के हेतु श्रद्धा और प्रेम से होना चाहिए। ऐसी भावना नहीं होनी चाहिए कि संसार मुझे भक्त कहेगा, मुझे धन मिल जायेगा, मुझे खूब अच्छा खाने को मिलता ही है, जो संसारी लोग ठाकुर को भोग लगाते रहते हैं। यह भावना काम भक्ति की श्रेणी में आती है।

मैं ठाकुरजी को आज ऐसी सुन्दर पोशाक पहनाकर सजाऊँगा कि, दर्शकगण देखते ही रह जायेंगे। इत्र और फूलों से ठाकुर के कमरे को महका कर ठाकुरजी को तरह तरह के भोग अर्पण करूँगा, फिर ठाकुरजी भोग पाकर तृप्त हो जायेंगे, इस प्रकार ठाकुर के सुख हेतु जो अर्चन–पूजन होता है, वह शुद्ध निर्मल भक्ति की श्रेणी में आता है। जो ऐसी ठाकुर सेवा करता है, उससे ठाकुरजी बातें भी करते हैं। हर काम को ठाकुर का विधान समझना चाहिए। सेवा करते–करते श्रद्धा बढ़ जाती है।

धीरे–धीरे रे मना सब कुछ अच्छा होय।
मालीं सींचे सौ घड़ा रितु आवे फल होय।।

श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी एकबार खीर चोर गोपीनाथ के मन्दिर में दर्शन हेतु गए तो किसी ने कहा कि यहाँ रात को अमृत केलि खीर का भोग लगता है। माधवेन्द्रपुरी जी की इच्छा हुई कि थोड़ा–सा खीर भोग मुझे चखने को मिल जाये तो मैं भी मेरे गोपाल को ऐसी खीर का भोग लगाऊँगा। थोड़ी ही देर में वह पछताने लगे और खुद

को कोसने लगे कि मेरी जीभ खाने की इच्छा कर रही है। तो इस कारण वह दुःखी हुए।

यह प्रत्यक्ष उदाहरण सामने है कि, जब भगवान् के सुख के लिए भक्त सोचता है, तो भगवान् भी भक्त के सुख की सोचते हैं। तो फिर रात में पुजारी के स्वप्न में गोपीनाथ जी आये और उन्होंने कहा कि, मैंने भोग में से खीर का कुल्हड़ चुराकर बाजू में रख दिया था, तुम उसे लेकर माधवेन्द्रपुरी को देकर आ जाओ, वह अभी बाजार में बैठकर हरिनाम कर रहे हैं। पुजारी ने तुरन्त वह खीर ले जाकर माधवेन्द्रपुरी जी को देकर सब बात बताई। फिर उन्होंने वह खीर खाई। उन्होंने उस कुल्हड़ को फोड़कर अपने गलवस्त्र में बांध लिया एवं उन टुकड़ों को नित्य खाते रहे क्योंकि यह ठाकुरजी के द्वारा दिया हुआ महाप्रसाद था। वह हरिनाम लेते रहे और ठाकुरजी की इस कृपा के लिए रोते रहे। अतः हरिनाम ठाकुर के सुख हेतु लेना चाहिए। ऐसा भाव हो कि, मैं पुकार रहा हूँ, ठाकुर को सुखी कर रहा हूँ। मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं।

नोट– यदि मठवासीगण एक लाख हरिनाम नहीं करते, तो साफ प्रकट है कि इनका खास उद्देश्य भगवद् प्राप्ति नहीं है। केवल मान प्रतिष्ठा, धन कमाना, मौज उड़ाना आदि है। टी.वी., मोबाइल रखकर क्या ब्रह्मचारी भगवान् को चाहेंगे ? 100% नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि, ये घर छोड़कर आए हैं, तो क्या वह भगवान् को नहीं चाहेंगे ? यदि चाहते तो नाम करते, टी.वी., मोबाइल से दूर रहते। संसार में बहुत साधु हैं, करोड़ों में से कोई एक ही भगवान् को चाहता है। सभी असाधुता में रमण कर रहे हैं। गीता भी यही कहती है। शास्त्रीय सिद्धान्त को न अपनाने से प्रत्येक मठ मन्दिर में अराजकता फैलती जा रही है। फिर भी सचेत नहीं होते। यह कलियुग का प्रकोप है। हरिनाम के बिना बचना असम्भव ही है।

यह लेख मैंने नहीं लिखा है, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा प्रेरित कर लिखवाया गया है। यह सच मानो। क्या गृहस्थी में फँसा हुआ प्राणी दूसरों को लिखकर उठा सकता है ? खुद ही गिरा पड़ा है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 25/9/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय व प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव शिक्षा प्रदाता श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा ठाकुरजी के प्रति विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

अभी शरणागत हो जाओ, मौत सामने खड़ी है

पतंगा (जुगनू) अपने सजातीय सूर्य के चरणों में जाना चाहता है अपने सामर्थ्य पर, लेकिन यह सबका अज्ञान ही है कि कहाँ सूर्य सर्वशक्तिमान, कहाँ अल्पशक्ति तुच्छ जुगनू। क्या करे, सूर्य उसको आकर्षित करता रहता है अतः जुगनू मजबूर है, उड़ने पर। यह सूर्य तक पहुँच पाये या न पाये, यह इसका जन्म–जात स्वभाव ही है।

हरिनाम में रुचि न होने के निम्न कारण –

1. भक्त अपराध, मन से, वचन से व कर्म से।

2. भक्त व संत के चरणों में उनकी इच्छा के विरुद्ध चरण स्पर्श करने या दण्डवत् प्रणाम करने से भक्ति का ह्रास होता है, भक्ति क्षीण होती रहती है एवं इच्छा के विरुद्ध चरण धोने से तो भारी क्षीणता आ जाती है।

3. मठ में ठाकुर की सेवा भार समझ कर बे मन से करना। ऐसा मन में समझना कि मेरे कारण यह सेवा हो रही है, यह सेवा अपराध है। मुझसे ठाकुरजी सेवा ले रहे हैं यह विचार श्रेयस्कर है। इससे नाम में रुचि हो जाती है।

4. मठ रक्षक के नाते, मठ में भजनशील भक्त के प्रति सद्भाव रखे तथा भजन न करने वाले के प्रति प्रेम से सुझाव देते रहे। धीरे-धीरे ठाकुरजी का सेवक समझकर सद्व्यवहार करते रहे। शरणागति पूर्वक प्रार्थना करने से वातावरण शुद्ध हो जाता है। ठाकुर जी की कृपा से Tension (तनाव) दूर होकर हरिनाम में रुचि हो जाती है।

मेरे सिर पर राधा-माधव बैठे हैं। वह अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं। उनसे कुछ छुपा नहीं है, वह अपने आप सब काम करेंगे। द्रोपदी व गजेन्द्र जैसी शरणागति होने पर सब कार्य उत्तम हो जाते हैं। एकबार भगवान् पर सब कुछ छोड़कर तो देखो! क्या फांसी थोड़े ही लग जायेगी!

ठाकुरजी भी हँसते रहते हैं। कैसा मूर्ख है, सब भार अपने ही सिर पर लेता रहता है। लेने दो! पूर्ण शरणागति कहाँ हुई। इसमें स्वयं का सूक्ष्म अहंकार ही कारण है। झीना अहंकार महसूस नहीं हो रहा है। अतः नाम में रुचि नहीं हो रही है। भय किस बात का ? जहाँ भय होगा वहाँ ठाकुर पर पूर्ण श्रद्धा नहीं, अल्प श्रद्धा है। पूर्ण शरणागति नहीं, अल्प शरणागति है।

सब कुछ जानते हुए भी कि मौत सामने खड़ी है, फांसी का तख्ता सामने दिख रहा है परन्तु फिर भी निश्चिन्त होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह केवल विचार में ही उतरा है। अन्तःकरण में अभी इसका ज्ञान नहीं हुआ है। जिस क्षण अन्तःकरण इस ज्ञान को पकड़ लेगा उसी क्षण ठाकुर के प्रति अपनापन, शरणागति, अवलम्बन स्वतः ही प्रकट हो जायेगा। हरिनाम ही प्यारा लगेगा एवं इस नाम से विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो जायेगी। ठाकुर के बिना एक-एक क्षण युग सा प्रतीत होने लगेगा।

जिसने आज ही श्रीसद्गुरुदेव की शरणागति ली है, वह भी भक्त की श्रेणी में आ जाता है। उसकी भी इच्छा के विरुद्ध उसके चरण धोना यह भी भक्ति क्षीण करा देता है। इसका भी अपराध

लागू हो जाता है। जैसा कि गीता कह रही है कि, उसका उद्देश्य मुझे प्राप्त करने का है अतः वह साधु ही मानने योग्य है।

5. मान–प्रतिष्ठा की कामना जैसे कि कोई मुझे भक्त समझे, मेरा आदर करे। ऐसा भाव होने पर हरिनाम में रुचि व ठाकुर के प्रति अकुलाहट नहीं होती। अपने को सबसे छोटा समझे। किसी के दण्डवत् करने पर स्वयं भी करे तो अहंकार नहीं आयेगा।

6. ठाकुरजी की झांकी न कर, दर्शन करे। चरण से लेकर मस्तक तक ध्यानपूर्वक दर्शन करे। मन ही मन अपना रोना रोए की जब से गोद से बिछुड़ा है अब तक गोद नहीं मिल पाई। झाँकी और दर्शन में रात–दिन का अन्तर है।

7. संसारी आसक्ति न रखते हुए अधिक बखेड़ा न फैलावे, घर को मन्दिर समझकर ठाकुर का मुनीम बन कर रहे। लाभ होगा तो ठाकुर का और नुकसान होगा तो ठाकुर का। मुनीम का क्या जायेगा ?

8. अनमने मन से हरिनाम लेना– इससे सुकृति इकठ्ठी होगी और सांसारिक लाभ होगा परन्तु ठाकुर का प्यार नहीं मिलेगा। नौवा अपराध होता रहेगा। एक लाख से कम नाम जपने से ठाकुर से प्यार नहीं होगा, गौरहरि की उक्ति अनुसार।

9. खान–पान, आचार विचार, युक्त शयन का ध्यान रखना। ज्यादा मौन रहना। आवश्यकता पड़े तब भगवद्चर्चा ही करना। संसारी चर्चा से दूर रहना। स्त्री जाति से एकदम दूर रहना। ब्रह्मचर्य पालन परमावश्यक है। मन बिगड़ने पर,

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
राम राघव राम राघव राम राघव त्राहि माम्।।

इसका जोर–जोर से उच्चारण करने से गन्दी वासना की गंध समाप्त हो जाती है।

10. जहाँ तक हो सके क्रोध का दमन करे वरना ठाकुर के प्रति मन का आकर्षण समाप्त हो जाता है।

11. गुरुवर्ग का चिंतन करते हुए जप करे। ठाकुर से ज्यादा भक्त का चिंतन अधिक प्रभावशाली होता है। उनके चरणों में मानसिक रूप से बैठकर हरिनाम करते रहे।

शिवजी उमा को बता रहे हैं–

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।
उघरहि विमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

श्रीगुरुदेव के चरण नख का ध्यान त्रिकालदर्शी बना देता है।

(भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा)

ये मे भक्त-जनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्त-तमा मताः।।

जो मेरे प्रत्यक्ष भक्त हैं, वे वास्तव में मेरे भक्त नहीं हैं,
किन्तु जो मेरे भक्तों के भक्त हैं,
वास्तव में वही मेरे भक्त हैं।

(आदिपुराण/चैतन्यचरितामृत, मध्य 11.28)

ये सच है, यदि गौरहरि अवतार न होता।

तो कौन अधमों को आकर बचाता,

अगर न होते अधम ही जग में

तो अधम उद्धारण क्यों जग में आता

अनेक अपराध जीवों को क्षमा वो करते है, बात सही है।

परन्तु अपराधी ही न होते तो कौन उसे क्षमा कराता

पलट वो सकते हैं भाग्य जनों के,

तभी तो निमाई दयालु कहलाते हैं

तो क्या गरज थी किसी को जो उनके लिए अश्रु बहाता

क्योंकि वे सबके जन्म मरण हटाते हैं,

अनिरुद्ध दास को तो वे गोदी चढ़ाकर, प्यार करते है।

अजी हरिनाम से रोना आ गया।

वह निश्चित ही प्रेमपदार्थ पा गया।।

रोने में जो मजा है वह किसी में है नहीं।

रोकर कोई देखे क्या यह बात सही है।।

प्रभू रोने से खिंचे आते हैं। आकर फिर दिल में बैठ जाते हैं।।

गौर निताई ने रोना सिखाया। रोकर भक्तों के मन भाया।।

कीर्तन का मजा तब ही है। जब आँखों से नीर बहे हैं।।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 14/9/2009

मन के खेल तमाशे पर तात्विक विचार विवेचन

सारी भगवद् सृष्टि ही मन पर आधारित है। मन के अभाव में भगवद् सृष्टि का संचालन हो ही नहीं सकता। मन एक वृत्ति विशेष है। या यों कह सकते हैं कि मन एक कारण शरीर है। शरीर तीन प्रकार के हुआ करते हैं। पहला है **स्थूल शरीर**–जो खान–पान का शरीर है। दूसरा हैं, **सूक्ष्म शरीर**– जो मरने के बाद साथ में जाता है, अर्थात् एक प्रकार से इन्द्रियों का शरीर है। तीसरा है **कारण शरीर** अर्थात् स्वभाव का शरीर। या यों कह सकते हैं, कि अनन्तकोटि संस्कारों का शरीर जो मानव को स्वभावानुसार प्रेरित कर के कर्म में ढकेलता रहता है। इन तीनों शरीरों से ही अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में सृष्टि का संचालन होता रहता है।

मन ही इनको संचालन के कर्म में लगाता रहता है। एक प्रकार से भगवान् की वृत्ति विशेष है यह कारण शरीर! अर्थात् स्वभाव, जो संस्कारों का पुंज है यह जुड़ा रहता है तथा कर्म में संलग्न रखता है।

अब बड़े ध्यान से विचार करने का विषय है– गीता में भगवान् अर्जुन को (जो भगवान् का प्यारा भक्त है अर्थात् नर–नारायण से जुड़ा अवतारी पुरुष है उसे) बोल रहे हैं कि, 'हे पार्थ! मैं तुमको मेरा वैभव विशेष खोलकर बता रहा हूँ, ध्यान पूर्वक श्रवण करो।

ग्यारह इन्द्रियों में मन को तुम मुझे (भगवान् को) ही जानो, जो तुमने बेहक से अनाधिकार चेष्टा से अपने कब्जे में कर रखा है, यह उचित नहीं है। यहाँ पर माया का साम्राज्य है अतः माया के चंगुल में आत्मा रूप से मन द्वारा मैं फँस गया हूँ अतः इसी वजह

से तू दुःखी है। बेहक की कोई भी वस्तु किसी को सुखी नहीं कर सकती। अपनी वस्तु ही सुखकारक हुआ करती है, अतः तू इसे मुझको समझकर सम्भाल। अगर तू यह बोले कि, मैं किस उपाय से आपको सम्भालूँ तो यह तुम्हें मैं बाद में बताऊँगा।

अब तू पहले मेरे वैभव विभूतियों को सुन ले। देख, पेड़ों में पीपल मैं ही हूँ। चार पैरों वालों में ऐरावत हाथी मेरे को ही जान, पक्षियों में गरुड़ मैं हूँ, सर्पों में वासुकी नाग मैं हूँ। मनुष्यों में राजा मैं हूँ। जिसमें जितना वैभव दिखाई देता है उसे मेरा ही जान। उसी प्रकार इन्द्रियों में **मन** मैं हूँ।

अष्टसात्विक विकारों का भाव मेरे से ही उदय होता है। क्योंकि मेरे नाम को उच्चारण कर कान द्वारा सुनने से सात्विक भावों का उदय होता है, नाम के रूप में मैं ही प्रकट होता हूँ। संचारी भाव, उद्दीपन भाव आदि मेरे अष्टसात्विक विकारों की देन है, यह जिस भक्तप्रवर में उदय हो जाते हैं इन भावों को वह रोक नहीं सकता क्योंकि इनका सम्बन्ध भगवान् से है। ये विरह के उद्गार कलेजे को चीर कर रख देते हैं। कुछ अच्छा नहीं लगता, पागल जैसी वृत्ति उदय हो जाती है। रात-दिन की भूख-प्यास, नींद हराम हो जाती है, केवल अपना निजी जन्म-जन्म का साथी राधा-गोविंद ही सब ओर नजर आने लगता है परन्तु, उनसे लिपटकर रोना ही मन को भाता है।

सारा संसार उनके लिए सूना-सूना ही नजर आता है। पल-पल उसे भारी बनकर युग के समान व्यतीत जान पड़ता है।

क्योंकि भक्त का मन भगवान् के पास चला गया तो मन आनन्द समुद्र में तैरने लग जाता है, इसके पहले मन माया के दुःख सागर में गोते खा रहा था। मन ही संसार में फँसा देता है तथा मन ही अलौकिक देश में पहुँचा देता है, यही तो मन का खेल तमाशा है लेकिन भगवद्कृपा के बिना यह मन का खेल-तमाशा दिखाई नहीं देता। यही माया के अज्ञान का विस्तार का राज्य है।

इस मार्ग के सच्चे राहगीर संत की कृपा के बिना आँखों का मोतिया-बिन्दु हटता नहीं है। अतः सच्चा संत, जो अष्टसात्विक विकारों का रोगी है उसी रोग को अपनाना होगा। यह अछूत का रोग है, पास में जाने से ही लग जाता है, तो पास में जाने वाला इसी रोग से ग्रस्त हो जाता है।

सुना है, रोना बंद होना चाहिए। यह कैसे हो सकता है ? यह तो अपनी शक्ति के बाहर है। जिसका एकलौता बेटा शादी-शुदा तथा अपनी संतान को छोड़कर मर जाये, तो क्या उसके माँ-बाप रोने को रोक सकते हैं ? कभी नहीं! कहना और बात है, तथा करना और बात है।

जिसको शरीर में काम वृत्ति का आवेग उदय हो गया, क्या वह उसे रोक सकता है ? जिसे किसी कारण से किसी पर क्रोधवृत्ति उदय हो गयी, तो क्या वह क्रोध को रोक सकता है ? कभी नहीं। जिसको लोभ वृत्ति विशेष मन में छा गयी क्या वह लोभ को छोड़ सकता है ? लोभ के लिए माँ-बाप की भी अवज्ञा कर सकता है।

जिसको मोह ने घेर रखा है, क्या कोई उसे मोह से छुड़ा सकता है ? इनसे भी ऊपर अहंकार का राज्य है, यह सब पर हावी होकर रहता है। इस वृत्ति से वह बुरे से बुरा कर्म कर सकता है, अहंकार का बाप **मैं-मेरा** है- इसी ने सब को अपने जाल में फँसा रखा है।

अतः सारे लेख का आशय यही है कि, सच्चा भक्त जो भगवान् का सच्चा ग्राहक है वह विरह वृत्ति को कैसे दूर कर सकता है ? वह तो भगवान् के लिए छटपटाता ही रहेगा। चाहे उसे कोई कुछ भी कहे। वह इस रोने के भाव को कम या दूर नहीं कर सकता। क्योंकि यह हृदयाकाश की लहरें विशेष हैं जो उत्तरोत्तर बहती रहती हैं। इनका वेग नियंत्रित करना सामर्थ्य के बाहर है।

प्रेमास्पद भक्तप्रवर! अब ध्यान देकर सुनो कि, यह विरह की लहरें कैसे प्रकट होकर बह सकती हैं ? तो केवल हरिनाम को कान से सुनकर ही यह संभव है।

हरिनाम सुनने से हृदयाकाश में अमृत बरसेगा तो संसारी आसक्ति रूपी जहर को ढककर अपना अमृत सिंधु का ज्वार भाटा प्रकट कर देगा। इस सिंधु से ही भगवान् को प्रकट करा देगा। जब भगवान् प्रकट हो जायेंगे तो जहर के पानी का अंश या तो जल जायेगा या सूख जायेगा। अर्थात् संसार की माया का राज्य, जो दुःख का भंडार है वह हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा।

यह सभी मन का खेल-तमाशा है। इस तमाशे को गौर से देखने पर अज्ञान जाता रहेगा एवं ज्ञानरूपी दीपक की रोशनी दशों दिशाओं में फैलती रहेगी। साधक का प्रत्येक क्षण सुख का विस्तार कर देगा।

मेरे प्रेमास्पद भक्त प्रवर! सारे लेख का सार ध्यान देकर सुनो, माया तथा भगवान् के सम्बन्ध से जो भी खेल-तमाशा हो रहा है, इनके ऊपर है मन के राज्य का वैभव। मन यदि साधक के वश में हो जाये तो यह खेल-तमाशा का रहस्य समझ में आ जाये।

मन को वश में करेगा, भगवान् का नाम! जो भी साधक जो भगवान् का राहगीर है अगर वह कम से कम एक लाख अर्थात् 64 माला नित्य कान से सुनकर करेगा तो उसका मन स्वयं ही वश में हो जायेगा। संसारी आसक्ति ही मन को वश में होने नहीं देती।

हरिनाम सुनते रहने से मन का मैल, जो अनन्त कोटि जन्मों से चढ़ा हुआ है वह स्वच्छ होकर अन्दर से भगवद्दर्शन होने लग जायेगा। तब मन भगवद्दर्शन का आनन्द लेने लगेगा, तो स्वतः ही संसारी आसक्ति रूपी मैल हटने लगेगा। कितना सरल और सुगम उपाय है। अतः इस रविवार के आयोजन में 80% उपस्थिति देते रहो क्योंकि यह आयोजन भगवद् आकाश वाणी से खोला गया है। भगवान् इस आयोजन में आने वालों को सद्गुणों से भरकर दुर्गुणों को जलाकर अपने चरणों मे बुला लेंगे।

श्री शिवशंकर का यह उद्‌घोष है–

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं।।

अर्थात्, प्रेमसहित भगवद् नाम को कान से सुनकर जो नित्य अपनायेगा उसका जीवन आनन्दपूर्वक गुजर जायेगा जिस प्रकार गाय के पाँव के खुर को लांघ जाये। तो गाय के खुर को लांघना कौन–सी मुश्किल की बात है ? छोटा बच्चा भी लांघ सकता है। उसी प्रकार यह अथाह भवसागर गाय के पाँव के खुर के अंदर जितना पानी होता है, उसके समान छोटा बन जाता है, जिसे हम बड़ी आसानी से लाँघ सकते हैं। जो इस आयोजन में बताये गए गुरु वचनों को ध्यान पूर्वक अपनायेगा वह इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति कर सकेगा एवं पूरा जीवन बिना किसी बाधा के गुजारेगा। क्योंकि उसके रक्षक गुरु तथा भगवान् रहेंगे। ऐसे भक्त का पालन करना तथा उसके पास जो भी कमी हो वह पूरी करना भगवान् की जिम्मेदारी होगी। फिर चिंता किस बात की ?

भक्तप्रवर, ध्यान देकर सुनो! श्रीगुरुदेव जी बोल रहे हैं–

जिस साधक को शीघ्र नाम भगवान् में रुचि उदय करनी हो तथा अष्टसात्विक विकारों में Overlap होना हो तो जिनसे अनन्त ज्योति बिखर रही है उन श्रीगौरहरि के चरणकमलों मे बैठकर वह साधक भगवद्‌नाम का जप किया करे, तो एक तो अपराधों का मार्जन होगा, दूसरा नाम में रुचि प्रकट हो जायेगी क्योंकि, कृष्ण तो अपराधों को देखते हैं तो सजा भी दे देते हैं परन्तु गौरहरि में तो परम दयालु श्रीराधा है जिसका दर्जा माँ का है वह राधा तो वात्सल्य रस भाव की प्रत्यक्ष मूर्ति है, वह अपराध को देखती ही नहीं है, अतः श्रीगौरहरि के चरण दर्शन करते हुए जो नाम जपता है वह बहुत जल्दी ही पंचम पुरुषार्थ प्रेमावस्था की पदवी पर पहुँच जाता है। कितना सरल सुगम साधन श्रीगुरुदेव जी सब पर कृपा वर्षण करके बता रहे हैं। **अतः ठाकुरजी भी हैरान होकर कह रहे हैं कि–**

"माधव (श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी) ने तो सभी युक्तियाँ बता–बताकर मेरे को साधकों से बँधवा दिया।

ऐसे तो मेरे भक्तों की भरमार होती रहेगी, कुछ तो संयम रखना चाहिए। मेरे प्रेमास्पद माधव की कृपा को मैं कैसे निरस्त कर सकता हूँ। मेरे बाँध को तोड़ दिया और सारा पानी बह गया। माधव ने कुछ भी छुपाकर नहीं रखा। ऐसा बिना विधान का आयोजन तो कभी भूतकाल में हुआ ही नहीं था, अब इस द्रुतगामी आयोजन को मुझे सफल करना ही पड़ता है। इस आयोजन में आने वालों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। अन्त समय में उन्हें सम्भालने की मेरी परम जिम्मेदारी हो गयी। मुझे मजबूर कर दिया। माधव ऐसा मत करो।"

मुझे प्रत्यक्ष में बोला गया है कि, आपका रोना उचित नहीं है। तथा प्रेरणात्मक हृदय आकाशवाणी से भी मालूम हुआ है कि कुछ भक्तप्रवर तथा साधारण भक्तगण इस रोने को औपचारिक समझ रहे हैं।

अतः आप सभी के चरणों में मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि, जो यह रविवार का आयोजन श्रीगुरुदेव जी ने आरम्भ किया है तथा ठाकुर जी ने श्रीगुरुदेव को आदेश देकर करवाया है तथा आप भक्तप्रवरों की सेवा मुझ पर कृपा करके सोंपी गई है इसलिए मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ तथा जब से आयोजन आरम्भ हुआ है तब से मेरा सारगर्भित भजन उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

मैं इस विरह उद्‌गार के रोने को बंद करने में असमर्थ हूँ। जब भी हरिनाम मेरी जिह्वा पर नाचता है तो अंदर से अन्तःकरण में रोने की लहरें आरम्भ हो जाती हैं। कलेजा फटने लग जाता है। इन भावों को मैं जिह्वा से बता नहीं सकता। इसके लिए अन्तःकरण की जिह्वा होना जरूरी है। शिशु का रोना ही सम्बल (सहारा) है, रोना सबको खींच लेता है।

मैं सभी सज्जन वर्ग को चेतावनी दे रहा हूँ कि इस प्रचण्ड धधकती हुई आग में पैर न रखें, नहीं तो जलकर राख हो जाओगे।

जो सलाहकार होगा वह भी इससे बचेगा नहीं। जो मन ही मन गलत चिंतन भी करेगा वह भी दग्ध होगा।

मैं इस आदेश से अधिक से अधिक सबका मंगल करने आया हूँ या नाश करने आया हूँ? ये विरह उद्गार में रोना बंद करना मेरी असमर्थता के बाहर है। मैं इसे रोकने में असमर्थ हूँ। यह तब ही रुक सकता है, जब इस रविवार के आयोजन को जो श्रीगुरुदेव जी ने चलाया है उसे बंद कर दिया जाये। मेरा रोना तो कभी बंद होगा नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण ने मुझ पर जादू की दृष्टि फेर दी है। श्रीगुरुदेव का आदेश पालन ही मेरा ध्येय है।

अतः सबसे मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि, सावधान होने में ही कल्याण है। मैं स्वप्न में भी किसी का बुरा नहीं करना चाहता लेकिन भगवान् के रोष को रोकना मेरे बस की बात नहीं है अतः सावधान होने में ही भलाई है।

इसका प्रत्यक्ष में तथा अप्रत्यक्ष में भी षडयंत्र हो रहा है लेकिन मैं इसकी 1% भी परवाह नहीं करता क्योंकि श्रीगुरुदेव जी के साथ में ठाकुर जी का मेरे सिर पर हाथ है।

सभी ध्यानपूर्वक सुनें कि शिवजी पार्वती को क्या बोल रहे हैं कि भक्त का अपराध कितना खतरनाक है। यह श्रीगुरुदेव का प्रत्यक्ष अपराध हो रहा है।

इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहि। भक्त द्रोह पावक सम जलहि।।
जो भक्त से ईर्शा करहिं। रामरोष पावक सो जरहिं।।

ये पावक अर्थात् अग्नि कैसी प्रचण्ड होती है जिससे लोहा पानी बनकर बह जाता है। वह अपराधी जल्दी मरता नहीं है, पूरी जिंदगी तड़पता ही रहेगा भगवान् के रोष में। इन प्रचण्ड हथियारों से जो मरता नहीं है, भक्त अपराध उसे छोड़ता नहीं है! पिछले कई उदाहरण हैं, याद करो।

कोई सज्जन बोल रहा था कि, अनिरुद्ध का यह कहना गलत है कि हरिनाम से तेरा अमुक काम बन जायेगा, तू हरिनाम कर। यह गलत है ही नहीं, शास्त्र का वचन है कि जो हरिनाम की शरणागति कर लेगा उसे इसी जन्म में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि 100% होगी। इतनी मूल्यवानों की उपलब्धि हो सकती है तो क्या तुच्छ इच्छाएँ पूरी नहीं होंगी ? कितने आश्चर्य की बात है ? हरिनाम से क्या असम्भव है ?

शास्त्र के वचन हैं, कि अमुक यज्ञ करें तो स्वर्ग का वास होगा। बच्चा जब पाठशाला नहीं जाता तो उसे मिठाई का, पैसे का लोभ दिया जाता है तो थोड़े दिन के बाद उसका स्वतः ही पाठशाला जाने का मन हो जाता है। इसी प्रकार पहले स्वर्ग का लोभ देकर ही भगवान् की तरफ मन को खींचा जाता है यह भागवत पुराण कह रहा है।

इसी प्रकार हरिनाम में मन लगाने हेतु साधक को लोभ दिया जाता है लेकिन ऐसा न समझे कि हरिनाम से काम सिद्ध नहीं होगा। हरिनाम स्वयं भगवान् है, इसलिए श्रद्धा होगी तो हरिनाम इच्छानुसार काम पूरा कर देगा। मानव को कैसे पहचाना जाये कि यह स्वर्ग से आया है या नरक से आया है ?

जो मानव स्वर्ग से आता है, उसका स्वभाव होता है, दान देना, दूसरों का हित करना, मीठा बोलना, संत की सेवा करना, उनको संतुष्ट रखना, सत्य भाषण करना, दयालु, शुद्ध आचार-विचार, भगवद्भक्ति में रत रहना।

जो नरक से आता है उसका स्वभाव होता है, दूसरों के दुःख में सुख मानना, ईर्ष्या-द्वेष करना, झूठ बोलना, सदैव क्रोधवृत्ति करना, सदैव कटु बोलना। साधु को कैसे पहचाने - साधु के पास जाने से मन में शान्ति की स्फूर्ति होना। उनके चरणों में बैठे रहने की इच्छा रहना। संसार को भूल जाना। भगवद्वृत्ति में आसक्त हो जाना। साधु के मुख से भगवद्चर्चा ही निकलना। प्रेम का अंकुर प्रकट होना। कपटी साधु के लक्षण इसके विपरीत हैं।

कपटी साधु आपकी श्रद्धा जमाने हेतु उसके पास जाते ही भगवद् चर्चा करने लगेगा लेकिन इस चर्चा मे वहाँ बैठने वाले का मन नहीं लगेगा। वहाँ से उठने का मन करेगा। क्योंकि मन तो स्वयं इन्द्रियों के बीच में भगवान् का ही है। जब साधक बुरे काम में हाथ रखेगा तो मन मना करता ही है परन्तु मन की कोई मानता ही नहीं है क्योंकि मन को तो माया के पिंजरे में बंद कर रखा है। बुद्धि विचार कर निर्णय देती है, परन्तु मन की चलती नहीं है, बुरा काम कर बैठता है फिर मन पछताता है कि तेरी चलने नहीं दी अतः अन्त में पछताना ही पड़ता है।

कहने का मतलब यही है कि मन को भगवान् को देना है अर्थात् हरिनाम को कान से सुनना ही मन भगवान् को देना होता है।

मैंने बारबार आयोजन में बोला है कि बिल्कुल रात में सोते समय पहले यह बोलना है कि हे भगवान्, अन्त समय में जब मैं मरने लगू तो आप अपना नाम मेरे साथ भेज देना, कहीं भूल न जाना।

यह कहने से भगवान् भी घबरा गये कि–मेरे प्रेमास्पद ने मुझे बाँधने की यह बड़ी युक्ति बता दी। अब मैं इस युक्ति को निरस्त नहीं कर सकूँगा, मुझे साधक को साथ में गोलोक धाम ले जाना ही पड़ेगा। इसको नाम में रुचि देनी ही पड़ेगी। तब ही अन्त समय में मेरा नाम इसके हृदय में गूँजेगा तो स्वतः ही मुक्त हो जायेगा।?

अब मैं मेरे गुरुदेव के वक्तव्य को विश्राम देता हूँ तथा सब भक्तों को दण्डवत् प्रणाम करता हुआ आशीर्वाद की भिक्षा माँगता हूँ कि मेरे भजन की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे।

नोट– निन्दा को सबसे ज्यादा बुरा क्यों बताया गया है, इसलिए कि जिसकी निन्दा हो रही है उसका दुर्गुण निन्दा करने वाले पर छा जाता है तथा भक्त की निन्दा हो तो भगवान् के रोश में दुख पाता है। कबीर जी बोल रहे हैं,

निन्दक नियरे राखिए आंगन कुटि छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय।।

अगर कोई निन्दा करता है तो सुखी होना चाहिए कि दुर्गुणों की सफाई हो रही है।

दीपक के नीचे अन्धेरा रहता ही है लेकिन वह चारों ओर रोशनी फैलाता है। कृष्ण के सामने रहने पर भी कौरव उन्हें नहीं पहचान सके। यशोदा के सामने कृष्ण ने क्या ऐश्वर्य लीला नहीं की? परन्तु यशोदा की प्रेमाभक्ति से ऐश्वर्य लीला दब गई और वह उन्हें अपना बेटा ही जान पाई।

श्रीचैतन्य महाप्रभु को ही साधकगण नहीं समझ सके अतः अपराध होने की वजह से महाप्रभु जी ने संन्यास लेना उचित समझा ताकि साधकगण अपराध से बच सकें। महाप्रभु ने सोचा कि, मैं इनका उद्धार करने आया हूँ, लेकिन यह तो उल्टा ही हो रहा है अतः संन्यासी बनना श्रेयस्कर होगा। तब साधकगण उन्हें समझ सके।

ध्यान देकर सुनें, यदि उपस्थ वेग को मारना है तो जिह्वा वेग को अर्थात् खान-पान पर नियंत्रण करो। उपस्थ वेग भगवद्प्रेम भाव को दबा देता है। फिर दुबारा उदय होने में देर हो जाती है। रसेन्द्रिय का उपस्थ इन्द्रिय के साथ सीधा सम्बन्ध रहता है। अतः रुखा-सूखा खाना चाहिए। यदि खान पान पर नियंत्रण नहीं होता है तो एक सरल सुगम उपाय है कि मन ही मन हरिनाम करते हुए प्रसाद पाओ तो भी उपस्थ वेग पर नियंत्रण हो जायेगा। सात्विकता हृदय में आ जायेगी। बुरा विचार नहीं आयेगा।

मेरे गुरुदेव ने बोला है कि, तुम अपने आप को छुपाकर मत रखो क्योंकि तुम एक साधारण गृहस्थी हो। यदि तुम संन्यासी होते तो सब तुम पर श्रद्धा करते। फिर मैंने प्रार्थना की कि, श्रीगुरुदेव मुझे अहंकार आ जायेगा क्योंकि सब मेरी सेवा करेंगे तथा सिर झुकायेंगे। श्रीगुरुदेव ने बोला कि, इसकी जिम्मेदारी मेरी है, तुम्हें अहंकार छुएगा ही नहीं। मैं जैसा बोलूँ वैसा करते रहो।

46

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 23/9/2009

किसान के खाद्य बीज का हरिनाम बीज से तुलनात्मक विवेचन

भगवद् नाम में मन क्यों नहीं लगता इसका उत्तर किसान के उदाहरण से भक्त प्रवरों को बहुत अच्छी तरह से समझ में आ जायेगा कि नाम स्मरण करने में कोई न कोई कमी हो रही है, गुरुदेव इसको खुलासा रूप में समझाने का प्रयास कर रहे हैं, ध्यान देकर श्रवण करें।

दसों इन्द्रियों में कान का महत्त्व सबसे अधिक है। मन तो भगवान् है ही। किसान अपनी फसल उपलब्ध करने हेतु अपने खेत पर जाता है। वह साथ में दो बैल, एक हल, बीज, गेहूँ, जौ, चना, सरसों, तिल, मूँग, मोठ तथा बाजरा इनमें से कोई भी बीज अपने खेत में बोने हेतु तैयार होकर जाता है।

हल के पीछे एक पाईप बांधकर रखता है जिसे ओरा बोला जाता है, यह ऊपर से कीप की तरह चौड़ा होता है। जिससे बीज पाईप के बाहर न गिर सके। हल के नीचे लोहे की कुश रहती है जो जमीन को चीरती रहती है। उससे एक खाई बनती रहती है, खाई को उमरा बोला जाता है। यह लगभग नौ इंच गहरी होती है। हल के आगे एक लम्बा हल जिससे दो बैल हल को खींचने हेतु बाँध दिये जाते हैं। ये हल को आगे की ओर खींचते रहते हैं।

किसान अपनी झोली में जो उसके गले में लटकती रहती है उसमें बीज को भरे रखता है, उसमें से मुठ्ठी भरकर थोड़ा-थोड़ा पाईप में डालता रहता है जो उमरे में अर्थात् खाई में गिरता रहता है। बैलों के चलने से उस खाई के दोनों किनारों के हिलने से मिट्‌टी उस बीज को ढकती रहती है। किसान उस खेत में पहले से ही पानी

देकर उसे उपजाऊ बनाता है। खेत को जोतकर उसको बीज डालने योग्य कर देता है।

कभी–कभी बैलों के इधर–उधर होने से वह बीज खाई के दोनों किनारों पर गिर जाता है। उस बीज पर मिट्टी नहीं पड़ने से और पानी की सीलन न मिलने से बीज उगता नहीं है। इसके पहले ही पक्षी उसे चुग जाते हैं या चींटियाँ उसे खा जाती हैं।

जो बीज खाई में गिरता जा रहा है, वह छः दिन से 1 5 दिन के अन्दर अंकुरित हो जाता है। उसे देखकर किसान फूला नहीं समाता, मन में खुशी मनाता है। यह है किसान के बीज के फल की उपलब्धि।

इसी प्रकार श्रीगुरुदेव हरिनाम रूपी बीज कान रूपी पाईप में अपने मुखारविंद रूपी मुठ्ठी से धीरे से उच्चारण कर के शिष्य को सुनाते हैं तो वह हृदयरूपी जमीन में जा गिरता है।

जब हृदयरूपी जमीन में हरिनाम बीज पहुँच गया तो वहाँ कुछ दिनों के बाद अंकुरित हो जायेगा। लेकिन शिष्य उस कान रूपी पाईप के द्वारा बीज को श्रवण रूपी जल उसमें डालता रहे। अर्थात् हरिनाम को उच्चारण करते हुए कान रूपी पाईप में श्रवण करता रहे।

यह श्रवण ही बीज को पानी देना होता है। श्रवण करते करते हरिनाम बीज अंकुरित हो जायेगा। उस बीज से राधाकृष्ण रूपी पौधा तैयार होकर शिष्य को दिखाई देगा। जिस प्रकार किसान को गेहूँ या बाजरे का पौधा दिखाई देता है। जिसे देखकर वह आनन्द में भर जाता है। इसी प्रकार शिष्य को जब राधा–कृष्ण हृदय में दिखाई देने लगते हैं तो शिष्य का मन वहीं पर लगने लग जाता है क्योंकि वह पौधा इतना मनमोहक है कि शिष्य का मन वहीं जमने लग जाता है।

इसके पहले मन संसारी पदार्थों में रमा था जो इस पौधे से निम्नकोटि के थे। अब उच्चकोटि का पौधा उपलब्ध हो गया तो

निम्नकोटि के पौधे से मन हटता गया। अर्थात् संसारी चर-अचर आसक्ति से मन हट गया अर्थात् वैराग्य का रूप उपलब्ध हो गया। अर्थात् अनन्त जन्मों से जो माया का परदा पड़ा हुआ था, वह पर्दा हट गया। **चेतो दर्पण मार्जनम्** हो गया (चित्तरूपी आईना स्वच्छ हो गया)। अज्ञान का अन्धेरा जाता रहा एवं ज्ञान का दीपक जल गया। जब ज्ञान का दीपक जल गया तो तमाम संशयों का तथा अन्धेरे का नाश हमेशा के लिए हो गया। अन्धेरा समाप्त हो गया।

जन्म मृत्यु के दारुण दुःख से छुटकारा मिल गया। पूरे लेख का निचोड़ यही है कि हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है, नहीं तो सुकृति के सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं होगा।

कान की आवाज भीतर के आत्मा रूपी भगवान् को जगा देगी। जब आत्मा जग जायेगी तो भगवान् की निगाह बोलने वाले की तरफ स्वतः ही चली जायेगी। जब भगवान् की निगाह जीव पर जायेगी तो मंगल विधान होने में क्या देर या कसर रहेगी ?

मंगल विधान का आशय यही है कि अष्टसात्विक विकार उदय होने लगेंगे। तो अश्रु पुलक शरीर से प्रकट हो जायेंगे। भगवान् बोलते हैं कि जो मेरे लिए रोता है, मैं उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ। अश्रुपुलक साधक के शरीर पर होने लग जाते हैं तो भगवान् के हृदय में खलबली मच जाती है तब भगवान् उसे बुद्धि योग देने लगते हैं तो हृदय में शास्त्र तथा भगवान् की गुप्त लीलाएँ प्रकट होने लग जाती हैं।

कान के द्वारा हरिनाम श्रवण किये बिना सारी जिन्दगी व्यर्थ में जाती रहती है क्योंकि नाम ध्वनि बाहर चली जाती है, कान के बाहर नाम ध्वनि जाना ही किसान द्वारा खाई के बाहर बीज पड़ने जैसा हो जाता है। वह खाई के दोनों ओर किनारों पर बीज पड़ने जैसा हो जाता है तो फिर बीज अंकुरित नहीं होता, उसे पक्षी चुग जाते हैं। इसी प्रकार कान के बाहर (किनारों पर) हरिनाम बीज पड़ने से सुकृति अर्थात् भाग्य तो बन जायेगा परन्तु, नाम बीज अंकुरित नहीं होने से राधा-कृष्ण रूपी पौधा उग नहीं सकेगा।

किसान के बीज का तथा श्रीगुरुदेव के हरिनाम बीज का तालमेल 100% सही उतरता है। यदि साधक ध्यानपूर्वक इसको सुनकर बुद्धि से विचार करे तो उसको भगवद्प्रेम प्राप्ति का संयोग अवश्यमेव मिल जायेगा। संसारी आसक्ति बिल्कुल समाप्त हो जायेगी व भगवद्चरणों में मन लग जायेगा।

एक दिन मैंने मेरे ठाकुरजी से पूछा कि, 'पिताजी! समुद्र का तथा आसमान का रंग नीला क्यों है तथा पृथ्वी सब जगह हरी हरी पेड़ पौधों से क्यों है ?' तो ठाकुर जी ने जवाब दिया, 'बेटा तुम नहीं जानते,यह सब मेरा ही वैभव है लेकिन माया के नेत्रों से यह देखा जाना असम्भव है। जिसके पास मेरी कृपा से दिव्य नेत्र हैं वह मेरा वैभव, जो अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में फैला पड़ा है उसे देखने में सक्षम है। मेरा निवास क्षीरसागर है।' मैंने बोला, मुझे अच्छी तरह से समझाओ कि ऐसा क्यों है ? तब भगवान् बोले– 'बेटा मैं नील माधव हूँ अर्थात् मेरे शरीर का रंग नीलापन लिए हुए है अतः समुद्र में मेरी ही परछाईं की आभा दिखाई देती है यह परछाईं इतनी गहरी है कि आसमान में ऊपर जाकर आकाश को नीला बना देती है। जैसे सूर्य की किरण पानी में पड़कर छत पर उसकी परछाईं (Reflaction) कर देती है।' मैंने पूछा कि, 'पिताजी यह धरती हरी ही हरी क्यों रहती है ?' तब भगवान् बोले, बेटा मैं पीताम्बर पहनता हूँ तथा मेरी आराध्य देव राधा नीलाम्बर धारण करती है तथा मेरे शरीर का रंग नीलमणि जैसा है अतः मैं नीलमाधव के नाम से जाना जाता हूँ तथा राधा के शरीर का रंग निखरे हुए सोने के जैसा है। अतः नील और पीत रंग मिलकर जब ज्योति ऊपर बिखरती है तो हरी हो जाती है। यह हरी ज्योति धरती पर फैली रहती है। अतः घास व पेड़ पौधों का रंग हरा रहता है इसलिए धरती पेड़ पौधों के रूप में हरी–हरी नजर आती है। सभी ठौर पर मैं ही मैं हूँ परन्तु मायिक नेत्रों से वास्तविकता दिखाई नहीं देती वह उन्हीं को दिखाई देती है, जो मेरे ही प्रेम मे रत रहते हैं। यह बेटा तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया अब और क्या पूछना चाहते हो ?'

मैंने बोला, 'यह माया का बखेड़ा आपने क्यों बिखेरा? इससे तो सभी दुःखी है।' भगवान् ने कहा–'बेटा सभी दुःखी तो अपने कर्मों से हैं। कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता। माया का वैभव तो मुझे भी अपनाना पड़ता है। तब ही मेरी लीलाओं का विस्तार होता है। सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से सभी जीव बंधे रहते हैं। इन्हीं से मेरी सृष्टि का विस्तार होता रहता है। जिससे मैं प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

मेरा प्रेमी माया के बंधन से बाहर रहता है। माया उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकती, उल्टा सहायक बनकर उसकी सेवा करती रहती है। जो मुझे भूलकर संसारी आसक्ति में फँसा है, उसी को माया दुःख देती है, क्योंकि माया मेरी ही शक्ति विशेष है।

इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ, जो माया से छुड़ा सकता है तथा माया के चंगुल में फँसा सकता है। यह मन का ही खेल तमाशा मेरी जीव सृष्टि में फैला हुआ है। यह मन यदि मेरे प्यारे संतों में चला जाये तो माया ही इस मन को मेरे चरणों में पहुँचा देती है। लेकिन जो जीव संत–चरणों में नहीं जाता वही माया के चक्कर में फँस जाता है तथा चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। जहाँ दुःख का समुद्र लहराता है। परन्तु जीव इसी को सुख समझकर अपना जीवन बिताता रहता है। कैसा आश्चर्य व विडम्बना का खेल है। अगर माया न हो तो मेरी सृष्टि का विस्तार ही नहीं हो सकता।'

ठाकुर जी आगे बोल रहे हैं कि, 'बेटा! मेरी लीलाओं का रहस्य कोई नहीं समझ सकता। शिव, ब्रह्मा भी मेरी लीलाओं का रहस्य समझ नहीं सकते तो अन्यों की तो बात ही क्या है!' मैंने पूछा, 'पिताजी! फिर कोई तो समझता होगा!'

ठाकुर जी ने कहाँ, 'हाँ जरूर समझता है। मेरे आराध्यदेव मेरे प्रेमी भक्तजन। अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में मेरे प्रेमी भक्तजन के अलावा कोई भी मेरे लिए पूज्य नहीं है।

भक्तों से ही मेरी सृष्टि है। भक्त ही पृथ्वी की सम्पदा हैं। सब जगह मेरी मर्जी चलती है परन्तु भक्त पर मेरी मर्जी नहीं चल

सकती। भक्त जैसा बोलता है, मुझे जबरन वही करना पड़ता है क्योंकि भक्त मेरे पूज्य हैं। भक्तों से जो बैर करता है वह मेरा खास बैरी है। वह कभी खुश नहीं रह सकता, जब तक वह मेरे भक्त को खुश न कर दे। जब भक्त खुश हो जायेगा, तो मैं भी खुश हो जाऊँगा क्योंकि भक्त की खुशी में ही मेरी खुशी है। जो मेरे सुदर्शन चक्र से नहीं मरता वह भक्त द्रोह से जलकर राख हो जाता है। वह उसी समय नहीं मरता, दुःख सागर में डूबता उतरता रहता है। तुम मेरे शिशु हो, शिशु माँ–बाप की शरण में रहता है। तो माँ–बाप उसकी हर तरह से देखभाल करते हैं। उसको सहारा है तो रोने का ही है। शिशु रोकर व हँसकर ही माँ–बाप को खुश करता रहता है। उसकी तोतली बोली तो माँ–बाप को रिझाती रहती है। शिशु की हरकत ही मेरी सेवा करना है।'

मेरे गुरुदेव बार–बार बोलते हैं कि सबको बोलो कि जैसा मैं कहूँ वैसा नित्य करते रहें। जब एकदम रात में सोने का विचार हो तो बोलो कि 'हे मेरे प्राणनाथ! जब मैं मरने लगूँ एवं मेरी अन्तिम साँस तन से निकले तो उस साँस के साथ, हे प्राणनाथ! आपका नाम संग में जाये।' ऐसा जो रोज बोलेगा उसका दुबारा जन्म नहीं होगा। वह गोलोक धाम में गमन कर जायेगा।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि अनिरुद्ध दास का तो सम्बन्ध ज्ञान एक डेढ़ साल के शिशु की उम्र का है वह भगवान् के साथ जो इसका दादा है उनसे कैसी बड़ी आयु जैसी बातें कर सकता है ? तो इसका उत्तर यह है कि, सम्बन्ध ज्ञान चिन्मय होता है। जिस प्रकार रामायण में मारीच नाम का राक्षस हिरण का रूप धारण कर सकता है, तो भगवान् का भक्त बड़ी आयु का क्यों नहीं हो सकता ? 16 साल की आयु धारण कर बात क्यों नहीं कर सकता ? अतः भगवान् बता रहे हैं कि 'सम्बन्ध ज्ञान उसी भक्त को उपलब्ध होता है जो मायिक सम्बन्ध तोड़ देते हैं तथा मेरे में तीव्रता से अपना मन फँसा लेते हैं। यह वही फँसा सकता है जिसको संसार की फँसावट

से पूर्ण वैराग्य हो। तब ही तो मैंने अर्जुन को बोला है कि हे अर्जुन! इस काम वैरी को मार। कामनाओं का दमन कर।'

ऐसा भक्त भगवान् के लिए रोता रहता है। इसको रात-दिन चैन नहीं पड़ता। न भूख की परवाह, न नींद की परवाह। क्षण-क्षण में उद्दीपन भाव जागृत रहता है। और यह न किसी को बता सकता है अतः मन ही मन व्याकुल होकर रोता रहता है। तब भगवान् ऐसी अवस्था वाले भक्त को अपना सम्बन्ध करवा देते हैं कि तू मेरा सखा है, तू मेरा पुत्र है, तू मेरी मंजरी है आदि-आदि।

भगवान् हैरानी से बोल रहे हैं कि, 'यह रहस्यमयी हृदय की चर्चा को बताकर ने मुझे बांध दिया मुझे मजबूर कर दिया। अब तो मुझे मेरे नाम में रुचि उदय करवाकर देनी पड़ेगी। तब ही अन्त समय में मेरा नाम स्वतः ही मुखारविंद से निकलेगा। नाम ही मेरे प्रेमी को संग में ले जायेगा और माया डरकर दूर खड़ी रहकर देखती रहेगी...

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 11/3/2007

भगवद्प्रेम प्रकट होने का सरलतम योग

सहारा लो हरिनाम का अमृत समझकर।
पीलो कान से मन को प्यारे सटाकर।।
आठों याम हरिनाम को जपा कर।
आनन्दमय गुजरेगा जीवन सजाकर।।
इसी जप से कभी संकट न आता।
पापों की वृत्ति जड़ से उखड़ जाता।।
इसी जप से विरह आनन्द होगा।
इसी जप से संसार असार होगा।।
यही जप माता-पिता व भाई।
क्यों न पुत्र बनकर करलो कमाई।।
अनिरुद्ध शिशु का रिश्ता बनाकर।
पाप अपराध न होगा कर अघाकर।।

श्रीगुरुदेव ही भगवान् से सम्बन्ध जोड़ते हैं। चाहे माँ-बाप का दोस्त का, दास का, भाई का, पुत्र का आदि-आदि। जब तक भगवान् से नाता नहीं जुड़ेगा तब तक भक्ति का लेशमात्र भी प्राकट्य नहीं होगा। यह होगा, केवलमात्र हरिनाम को प्यार से जपने से ही!

10 नामापराध तथा मान प्रतिष्ठा की अन्तःकरण में गंध भी न रहना परमावश्यक है। क्योंकि यही भगवद्प्रेम में मुख्य रुकावट है। अन्य दुर्गुण तो गौण रूप में रहकर विलीन हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है, मान-प्रतिष्ठा कैसे विलीन हो? यह बहुत बड़ी कठिनता है। यह तब ही नष्ट हो सकेगी जब स्वयं में अवगुण देखते रहे कि मुझसे सब अच्छे हैं और मुझमें तो दुर्गुण कूट-कूटकर भरे पड़े हैं, तब अन्तःकरण में हीन वृत्ति रहेगी, तब अहंकार नहीं होगा।

जब अहंकार मन में आ जाता है तो भगवद् शरणागति जड़ से ही चली जाती है।

सभी कहते हैं कि, अपने भजन को गुप्त रखना चाहिए। बिल्कुल ठीक कहते हैं। जानकारी होने से सभी इज्जत करने लग जाते हैं तो घमण्ड का अंकुर निकल कर अहंकार का फल प्रकट हो जाता है तो ठाकुर की कृपा से वंचित हो जाने से भजन स्तर गिरने लग जाता है। जिसका उद्देश्य दूसरों का हित करने का हो, उसे उक्त दुर्गुण नहीं आ सकेगा। शिवजी ने पार्वती को बोला है–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

जो अपना भजन अन्यों को बताता रहेगा तो उसके देखा देखी साधक भी भजन करने लगेगा। स्वयं को पश्चाताप भी होगा कि अमुक भक्त इतना भजन करता है, और मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। मुझे भी करना चाहिए। देख सुनकर भजन में उत्साह भी होगा। यदि अन्यों को बताने में भजन स्तर घटने लगे तो फिर गुप्त रखने में ही लाभ है। मैं तो जितना अन्यों को बताता हूँ, तो मेरा भजन स्तर अधिक बढ़ने लगता है।

श्रीगौरहरि ने अपना भजन सभी के सामने प्रकट किया है, इसलिए कि सभी उनकी तरह भजन करने लगें। रामानुजाचार्य ने श्रीगुरुदेव की अवज्ञा कर मंत्र को छत पर चढ़कर जोर से उच्चारण कर सभी को बताया था। फिर भी परहित भावना से गुरुदेव प्रसन्न हो गये थे।

नाम महिमा पर किसी अदृश्य शक्ति द्वारा मुझसे अनेक पत्र लिखवाए गये हैं। इसके पीछे मेरे आराध्यतम गुरुदेव का हाथ है। यह पत्र मेरे पुत्रों को व भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज को तथा भक्तों को समर्पित किये गए हैं। जब से गुरुदेव जी ने मुझे चौबीसों घंटे हरिनाम करने का आदेश दिया तब से मुझसे पत्र लिखवा रहे हैं। यह नाम महिमा लिखवाने का व्यसन भी श्रीगुरुदेव जी ने ही लगाया है।

जिस साधक का उद्देश्य भगवद् प्राप्ति करने का होगा उससे टी.वी., अखबार आदि स्वतः ही छूटने लगेंगे। वह ग्राम्य चर्चा से दूर रहने लगेगा। समय की बर्बादी का दुःख अन्तःकरण में घुसकर भजन स्तर बढ़ाने में लग जायेगा। मनुष्य जन्म दुबारा नहीं होगा, अतः शीघ्र ही भक्ति का किराया इकट्‌ठा कर लो ताकि श्रेष्ठ स्थान पर पहुँच सको। वरना पछताना हाथ में आएगा, बिना किराया पैदल जाना पड़ेगा। धूप, सर्दी, बरसात ऊपर से सहनी पड़ेगी। स्थान भी दुःखदायी मिलेगा।

यदि कोई भी साधक एक माह तक उक्त का संसारी सम्बन्ध तोड़ देगा तथा 64 माला जप करने लगेगा तो उसे अवश्य संसारी व पारमार्थिक लाभ होगा।

श्रीप्रह्लादजी अपने सहपाठियों से कहते हैं कि भगवान् को प्राप्त करना कठिन नहीं है। सत्य ही कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि, 'हे साधक तेरा मन तू मुझे दे दे। बस! मैं तुरन्त तुझसे मिल लूँगा। तूने मन माया को दे रखा है, अतः मैं तुझ पर आधिपत्य कैसे जमा सकता हूँ? यह मेरी गलती नहीं है, यह तेरी ही नासमझी है, जो तू मुझको भूल गया। तू तो मेरा अनन्त जन्मों का तथा आदि जन्म का बेटा है। मैं तेरे को बार-बार ढूँढ़-ढूँढ़ कर गया लेकिन तू ही मेरी नजर से छुपता रहता है, अतः तू दुःख पर दुःख भोग कर रहा है। अब भी मेरा नाम लेकर पुकार, मैं तुझे माया के बन्धन से छुड़ा लूँगा। तथा वैष्णवों से प्रेम कर, वैष्णव ही तुझे सर्वसिद्धि अवश्य करा देंगे। भजनगीति में लिखा है-

आश्रय लिया भजे, तारे कृष्ण नहिं तजे।

जीवों पर दया करते हुए हरिनाम स्मरण से सर्व धर्म सार की प्राप्ति होगी, रोते-रोते हरिनाम करने पर वैष्णव कृपा द्वारा ठाकुर कृपा स्वतः ही बरसेगी। वैष्णव चरण-रज शीघ्र ही मन का मैल समाप्त कर देती है। भक्तिविनोद ठाकुर जी सब को कह रहे हैं, कम से कम एक बार तो नाम रस में डूबो। वृन्दावनदास ठाकुर कह रहे हैं, सर्व महाप्रायश्चित है केवल हरि का नाम।

अविश्रान्त नामे, नाम अपराध जाय।
ताहे अपराध कभु स्थान नहि पाय।।
अमानी मानद हया कृष्ण नाम सदा लवे

अपराध व मान प्रतिष्ठा ही सबसे बड़ी रुकावट है। हरिनाम ही सबसे कीमती धन है। इसको स्मरण सहित कमाना ही जीवन का सार है।

आत्मा व परमात्मा का उदाहरण –

एक 4–5 साल का बच्चा मेले में खो गया। माता–पिता ने उसे बहुत ढूँढ़ा, परन्तु मिला ही नहीं। रो–धोकर घर पर आ गये, बच्चा इकलौता था, वह भी छोड़कर चला गया। अब वह बच्चा इधर–उधर भटक रहा है। भीख मांग–मांगकर खाता है। सड़क पर सोता है। जबकि माँ–बाप करोड़पति हैं, लेकिन दुर्भाग्य से दुःख भोग कर रहा है। धीरे–धीरे वह 15 साल का हो गया। एक दिन वहा एक गली में मकान का काम–चल रहा था वहाँ गया। उसने सोचा कि यदि यह मकान मालिक मुझे मजदूरी पर लगा ले तो मैं खा पी लूँ तथा कपड़ा पहन लूँ। उसने एक सज्जन से यह बात बोली। उस सज्जन ने जो मकान बनवा रहा था उसके पास इस बच्चे की सिफारिश की तो मकान वाले ने पूछा, 'क्या लेगा?' उसने कहा, 'रोटी, कपड़ा दे देना, चाहो तो थोड़ा खर्चा दे देना।' 'मकान मालिक बोला 'ठीक है। तुम टोकरी ढोते रहो, तुम्हारा काम देखकर कुछ कर सकता हूँ।' जब वह बच्चा 10 दिन तक टोकरी ढोता रहा तो एक दिन मकान मालिक ने उसे गौर से देखा तो उसे शक हो गया कि यह बालक मेरे बच्चे से मिलता जुलता है, इसे बुलाकर पूछूँ तो सही! तो उसने बच्चे को बुलाकर पूछा, 'तू कौन है?' उस बच्चे ने उसकी सारी जीवनी कही कि, 'मैं मेले में गुम हो गया था। मेरे माँ–बाप का पता नहीं, न घर का पता है। पुलिस ने पूछा भी लेकिन बता न सका।'

फिर मकान वाले ने देखा, मेरे बच्चे के दो अँगूठे थे, पास में एक विशेष चिह्न भी था, यही इसके है। तो मकान मालिक की पत्नि जो इस बच्चे की माँ थी, अपने बच्चे को देखकर उसके स्तन से दूध टपकने लगा। बस क्या था, उस बच्चे का व उस दम्पत्ति का भाग्य उदय हो गया।

सज्जन ही गुरु के रूप में आया है। गुरु ने भगवान् से सिफारस की तो भगवान् ने उसे अपना लिया। भगवान् (माँ) के स्तन से वात्सल्य रस (दूध) टपकने लगा। यही आत्मा-परमात्मा का मिलन है। आत्मा भूला हुआ भटक रहा है। सद्गुरु ही मिलन करा देते हैं।
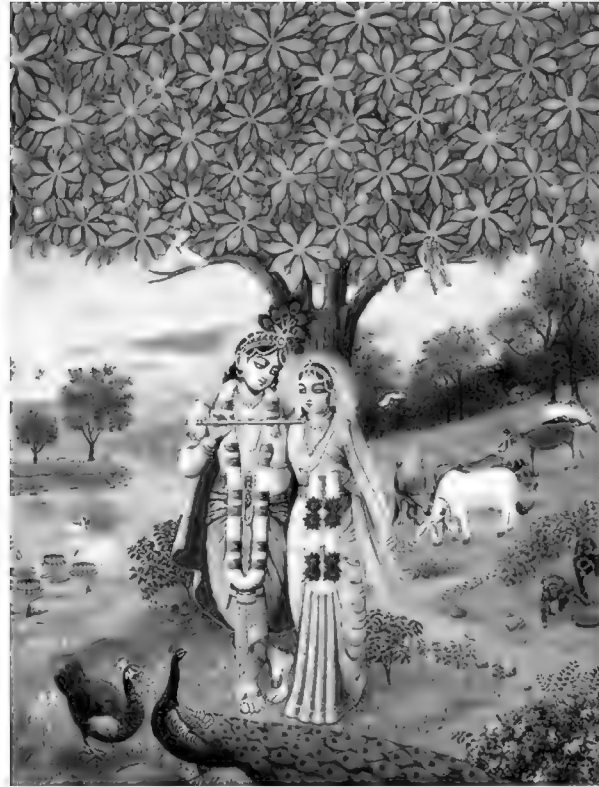
48

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 28/9/2009

श्रीगुरुदेव की महिमा

यह त्रेतायुग का समय था। समस्त संसार में दशरथ जी का साम्राज्य था, लेकिन सन्तान के बिना दशरथ जी दुःखी रहा करते थे। एक दिन दशरथ जी शीशे में अपना मुख देखकर अधिक दुःखी हो गए कि मेरा अब मरने का समय आ गया क्योंकि मेरे बाल सफेद होते जा रहे हैं, बिना संतान के मैं नरक में गिर जाऊँगा, तो गुरु वशिष्ठ जी, जो पुरोहित का काम करते थे उनसे जाकर दशरथ जी बोले कि, 'मुझे नरक से बचाओ, मुझे संतान नहीं है।'

तब वशिष्ठ जी ने कहा कि पुत्रेष्टि यज्ञ करने पर संतान हो सकती है। जब पुत्रेष्टि यज्ञ की तैयारी की गयी तब अग्निदेव चरु अर्थात् खीर लेकर यज्ञ से प्रकट हुए। तब वशिष्ठ जी ने राजा दशरथ जी को कहा कि, इस खीर को अपनी रानियों को खिला दो, तो पुत्र प्राप्त होंगे। उन्होंने खीर प्रथम बड़ी रानी कौशल्या को खाने को दी और बाकी खीर छोटी रानी कैकेयी व सुमित्रा को दे दी। कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण व शत्रुघ्न प्रकट हुए।

बचपन से राम अधिकतर कैकेयी के पास ही रहा करते थे। त्रेतायुग में यज्ञ ही भगवद्प्राप्ति का मुख्य साधन था लेकिन राक्षसगण यज्ञ करने में विघ्न डालते रहते थे अतः ऋषिगण दुःखी रहते थे।

एक दिन राम अपनी माँ कैकेयी से बोले कि 'माँ मुझे वनवास दिला दे। पिताजी मुझे वन में जाने नहीं देंगे।' तब कैकेयी बोली, 'ऐसा मत बोलो राम।' राम बोले, 'माँ मुझे राक्षसों का वध करना है।' तब कैकेयी राजी हो गयी बोली, 'ठीक है।'

तब दशरथ जी से नाराज होकर कैकेयी ने दो वरदान मांगे, राम को वनवास और भरत को अयोध्या में राजपद पर बिठाना। दशरथ जी ने बहुत समझाया कि ऐसा वरदान मत मांगो, वरना मैं मर जाऊँगा। लेकिन राम को वन में भेजने से कैकेयी मानी नहीं। तो राम को वनवास होते ही दशरथ जी राम के विरह में चल बसे। क्योंकि इनको पहले से ही शाप था। इनके द्वारा श्रवण के मरने पर श्रवण के माँ–बाप ने इनको शाप दिया था कि जैसे हम पुत्र के विरह में मर रहे हैं तुम भी इसी प्रकार शरीर छोड़ोगे।

रामजी को वनवास हो गया तब रावण की बहन शुर्पणखां रामजी के पास आकर बोली कि 'मेरे समान सुन्दर नारी इस संसार में नहीं है एवं आपके समान नर इस संसार में नहीं है अतः मुझे पुरुष की जरूरत है तथा आपको मेरी जरूरत होनी चाहिए।'

तब राम बोले, 'मेरी तो स्त्री (पत्नि) है। मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास चली जाओ।' तब शुर्पणखां लक्ष्मण के पास जाकर बोली, 'मुझे तुम्हारी स्त्री (पत्नि) बनालो।' तब लक्ष्मण ने मना कर दिया तो बार–बार लक्ष्मण के पीछे पड़ गई कि तुम कैसे पुरुष हो तुमको मुझपर दया नहीं आती ? मेरी प्रार्थना सुननी होगी। तब तो लक्ष्मण बोले, 'तुम्हारे जैसी निर्लज्ज से क्या बात करुँ ? चली जा यहाँ से।' फिर भी जब शुर्पणखां बार–बार पीछे पड़ गई तो लक्ष्मण ने उसकी नाक को अपने धनुष बाण से काट दिया।

अब तो उसने अपना विकराल शरीर प्रकट कर दिया और बोली कि 'देखना भविष्य में तुम को रोना पड़ेगा।' तब लक्ष्मण ने कहा 'भाग जा यहाँ से।' अब तो वह रोती चिल्लाती लंका में जाकर अपने भाई रावण से बोली, 'देख! मेरी क्या हालत कर दी है उन वनवासी पुरुषों ने, तू जीते जी ही मर गया क्या ?'

रावण ने बोला, 'बहन चिंता मत कर। अब तू मेरा तमाशा देख, मैं क्या करता हूँ।' रावण संन्यासी का भेष बनाकर पंचवटी पर गया जहाँ राम सीता लक्ष्मण कुटी बनाकर रहा करते थे।

इधर रावण ने मारीच को बोला कि, 'तुम सुन्दर हिरण बन कर कुटिया के पास इधर-उधर फिरते रहो, तो सीता का मन-चलायमान हो जायेगा तो तुम्हारी मृग छाल को प्राप्त करने के लिए तुम्हें मारने के लिए सीता राम को भेज देगी, तो मैं आसानी से सीता को हरण कर ले आऊँगा।' मारीच को डर की वजह से हाँ करनी पड़ी। उसने सोचा, ये रावण मुझे मार देगा, इससे तो अच्छा है कि मैं राम के हाथों मर जाऊँ। तो मेरा उद्धार तो होगा!

मारीच को हिरण के रूप में देखकर सीता ने राम को बोला कि, कितना सुन्दर हिरण है। इसकी मृग छाल पर बैठकर भजन करना चाहती हूँ, आप इसे मारकर मृग छाल ले आओ।

इधर लक्ष्मण को राम ने कहा कि, 'मैं जा रहा हूँ तुम कुटी में रहना, सीता को अकेली मत छोड़ना। क्योंकि यहाँ राक्षस फिरते रहते हैं, कहीं सीता को उठाकर न ले जायें।

वैसे तो, जो असली सीता थी वह तो अग्नि में समा गई थी। यह नकली सीता (वेदवति) ही थी। क्योंकि सीता को रामजी बोले थे कि मैं राक्षसों का वध करने जा रहा हूँ, तुम अग्नि में समा जाओ। अग्नि देवता को बड़ी खुशी हुई कि मेरा अहो भाग्य है जो सीता माता मेरे पास रहेगी।

जब राम कुटिया में से चले गये तो लक्ष्मण उस कुटी से फलादि कुछ वस्तु लाने जंगल में चले गए। पीछे से रावण संन्यासी का भेष बनाकर कुटीया पर गया और बोला, 'भिक्षां देही!'

सीता जी अन्दर से बाहर आई तो क्या देखती है कि एक संन्यासी दरवाजे पर खड़ा भिक्षा माँग रहा है, तो सीता जी अन्दर जाकर कुछ फल वगैरह ले आयी और बोली, 'महात्माजी यह भिक्षा ले लो!'

(लक्ष्मण जब वन से कुछ फलादि लाने गये तो सीताजी को कह गये थे कि मैं एक रेखा खींचकर जाता हूँ, इस रेखा से बाहर

मत निकलना। सीताजी बोली, 'देवर जी चिंता न करें, आप जाओ, मैं नहीं निकलूंगी।')

रावण ने बोला, मैं बंधी भिक्षा नहीं लिया करता हूँ, तुम भिक्षा खोलकर दे दो। खोलकर देने से रेखा के बाहर आना पड़ेगा, अतः सीता सोच विचार में पड़ गई कि, महात्मा जी बिना भिक्षा लिए द्वार से न चले जायें, अतः वह कुछ देर ठहर गई।

रावण ने बोला कि, 'भिक्षा देती हो या नहीं, वरना मैं जा रहा हूँ, देना हो तो पास में आकर दे दो।'

सीता जी सोच में पड़ गईं कि, देखा जायेगा। बिना भिक्षा लिए साधु का जाना उचित नहीं है, अतः वह रेखा से बाहर आ गईं। इसके पहले जब वह अन्दर भिक्षा लाने गई थी तो रावण दरवाजे के पास आने लगा तो पैर रखते ही रेखा से ज्वाला निकली, तो रावण डर गया कि यह ज्वाला तो मुझे जलाकर भस्म कर देगी, अतः सीता को ही बाहर आने दिया जाये अतः यही युक्ति है कि मैं उसे ऐसा बोल दूँ कि मैं बंधी भिक्षा नहीं लेता खुली भिक्षा देना हो तो दे दो, वरना मैं चला। इसी कारण से सीता जी रेखा लांघकर बाहर आ गई और जब वह भिक्षा देने लगी तो रावण उसे गोदी में उठाकर आकाश में उड़ गया।

अब तो सीताजी चिल्लाने लगी तो चिल्लाना सुनकर जटायु आ गया। तब वह क्या देखता है कि, सीता माँ को रावण आकाश मार्ग से ले जा रहा है, तो जटायु उस पर टूट पड़ा और अपने पंखों से उसे घायल कर दिया, लेकिन रावण के पास कृपाण था, उससे उसने जटायु के एक तरफ के पंख काट डाले तो जटायु आकाश में पंख कटने से पृथ्वी पर आ गिरा। वह कहने लगा, 'हा, राम! हा, राम!' राम ने सुना कि कोई व्याकुल होकर मेरा नाम ले रहा है। राम तुरन्त ही वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि जटायु की मरण जैसी अवस्था हो रही है, तब राम उसे गोदी में लेकर पूछने लगे कि, 'दादा तेरी यह बुरी दशा किसने की?' तब जटायु बोला कि माँ सीता को रावण आकाश मार्ग से ले जा रहा था मैंने अपने पंखों से

उसे घायल कर दिया तब उसने मेरे एक ओर के पंख कृपाण से काट गिराए। इतना कहते–कहते हा! राम, हा! राम कहकर जटायु की अन्तिम सांस निकल गई। अब तो राम ने बिलख–बिलखकर, रो–रोकर, आँसुओं से जटायु को नहला दिया तथा उसकी पूरी अन्तिम क्रिया अपने हाथों से की। यह वरदान जटायु ने लिया था। कथा बड़ी है।

रावण ने सीताजी को माँ समझकर लंका में अशोकवाटिका नाम का जो सर्वश्रेष्ठ स्थान था वह दे दिया और सेवा के लिए राक्षसियों का पहरा लगा दिया।

रावण जानता था कि मेरी मुक्ति जल्दी तब ही हो सकती है जब मैं राम का विरोधी बनूँ क्योंकि राम भजन करना मेरे बस की बात नहीं है।

त्रिजटा राक्षसी सीता को सांत्वना देती थी कि सीता तू चिंता क्यों करती है ? राम जल्दी ही लेने आयेंगे। सीता अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर अशोक वृक्ष से कहती थी कि तेरा नाम शोकरहित है तो मेरे शोक को क्यों नहीं हटाता ?

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहति हरिनाम।।

जब सीता वनवास से अयोध्या धाम चली आई तो राम ने सुना कि एक धोबी अपनी स्त्री को बोल रहा है कि तू इतने दिन कहाँ रही, मैं राम नहीं हूँ, जो सीता को घर में रख लिया जो कितने दिन राक्षसों के घर में रहकर आई है। यह चर्चा सुनकर लोक अपराध से राम ने सीता को वनवास दे दिया।

उस वन में साधु महात्मा वाल्मीकि ऋषि का आश्रम था। वहाँ सीता भटक रही थी तो वाल्मीकि ने उसे कहा, 'बेटी तू कहाँ से आई है ?' सब बताने पर वह सीता को बोले, 'बेटी तू इसी आश्रम में रहा कर।'

सीताजी गर्भवती थीं। वहीं पर लव का जन्म हुआ। सीता लव को नित्य ही वाल्मीकि ऋषि के पास सुलाकर ऋषि के लिए तथा भगवान् के लिए नदी से पानी लाया करती थीं।

एक दिन वाल्मीकि शौच के लिए बाहर चले गये तो सीताजी लव को भी अपने साथ ले गयीं जहाँ पानी लेने नित्य जाती थीं। वाल्मीकि जब लव के पास आये तो लव नहीं मिला, तो उन्हें चिंता हो गई कि लव को कोई जानवर उठा ले गया। मैं सीता को क्या जवाब दूँगा? अतः उसके आने से पहले ही वाल्मीकि ऋषि ने अपने कुश के आसान से एक तिनका निकाला और उसे अभिमंत्रित करके लव जैसा ही शिशु पैदा करके वहाँ पर सुला दिया।

जब सीता पानी भरकर आश्रम पर आई तो क्या देखती है कि लव के जैसा ही एक शिशु वाल्मीकि के पास लेटा हुआ है।

सीता जी ने पूछा, गुरुदेव! यह बालक कहाँ से आ गया? तो वाल्मीकि ने अपनी चिंता बताकर कहा कि अब यह पुत्र भी तुम्हारा ही शिशु है। कुशासन से पैदा होने के कारण इसका नाम होगा कुश, अतः बेटी! तेरे लव व कुश यह दो शिशु रहेंगे। यह सुनकर सीता को बड़ी खुशी हुई कि, यह गुरु प्रदत्त शिशु भी मेरा ही है। अब वाल्मीकि जी ने उन दो बेटों को धनुष–बाण चलाना सिखा दिया।

एक दिन पारिवारिक गुरुदेव वशिष्ठ जी श्रीराम को बोले कि 'राम! तुमको एक यज्ञ करना है, जिसमें विजयपत्र के हेतु एक घोड़ा छोड़ना है। इसकी तैयारी करनी होगी।'

रामजी बोले, 'बहुत खुशी की बात है, गुरुदेव! शीघ्र ही घोड़ा छोड़ा जायेगा।'

घोड़ा छोड़ दिया। उसके मस्तक पर एक विजयपत्र बांध दिया, उस पर लिखा था– **जो इस विजय पत्र को नहीं मानेगा, वह राम से लड़ेगा।**

जब घोड़ा वाल्मीकि आश्रम पर घूम रहा था तो लव–कुश धनुष विद्या सीख रहे थे, तो उन्होंने देखा कि, इस घोड़े के मस्तक पर विजय पत्र टंगा हुआ है उसपर लिखा हुआ है कि, जो इस विजय–पत्र को नहीं मानेगा, वह राम से लड़ेगा वरना यज्ञ अधूरा ही रह जायेगा। यह पढ़कर दोनों भाईयों की भुजाएँ फड़कने लगीं कि अब तो युद्ध करने का मौका हाथ लगा।

लव–कुश ने अपने गुरुजी से बोला कि, 'श्रीगुरुदेव अपने आश्रम के बाहर एक घोड़ा घूम रहा है, हम इसे पकड़कर बांधेंगे और जिसने इसे छोड़ा है उससे हम युद्ध करेंगे।'

वाल्मीकि ने कहा, 'बेटे अभी तुम छोटी उम्र के हो, बच्चे हो, कैसे युद्ध करोगे ? जिसने इसे भेजा है वह तो बहुत बड़ा शक्तिशाली होगा।' तब लव–कुश बोले कि, 'गुरुदेव! हमने सीता माँ के स्तन का दूध पिया है, क्या माँ के दूध को लज्जित करेंगे ? गुरुदेव! हम तो युद्ध करेंगे, यद्यपि घोड़ा छोड़ने वाला कितना भी बलशाली क्यों न हो।'

तब वाल्मीकि ऋषि बोले, 'ठीक है, तुमको मैं गुरुकवच पहना देता हूँ इसे कोई भी शक्ति तोड़ नहीं सकेगी।' लव–कुश ने कहा, 'गुरुदेव! जैसा भी आप उचित समझें हम को पहना दीजिए।'

गुरु कवच एक ऐसा कवच है, जिसको कोई तोड़ नहीं सकता। विष्णु कवच, नारायण कवच, राधा कवच आदि कवच तोड़े जा सकते हैं, परन्तु गुरु का कवच कोई नहीं तोड़ सकता।

शिव वचन–

कवच अभेद गुरु पद पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
जे गुरु चरण रेणु शिर धरहि। ते जन सकल विभव वस करहि।।
राखहि गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहि कोऊ जगत्राता।।
जो सठ गुरु सन ईर्शा करहि। रौरव नरक कोटि जुग परहि।।

यह गुरुमहिमा शिवजी पार्वती को सुना रहे हैं कि, 'हे पार्वती! **गुरुकवच** ऐसा अभेद कवच है, जिसको तोड़ने में भगवान् भी सक्षम नहीं हैं।'

इधर गुरु वशिष्ठ जी राम को बोले, 'राम! घोड़ा छोड़े बहुत दिन हो गए, घोड़ा आया नहीं, जरूर किसी बलशाली ने घोड़ा बाँध लिया है, अतः तलाश करो कि घोड़ा किस शक्तिशाली ने बाँधा है ?'

तब राम ने चारों ओर गुप्तचर भेज दिये तो मालूम पड़ा कि घोड़ा तो रामजी के बेटे ने ही बाँधा है। क्योंकि लव तो राम का बेटा है, लेकिन कुश का तो किसी को मालूम ही नहीं था, कुश कहाँ से आ गया ? तो किसी ने कहा कि, लव का एक और भाई है, जिसका नाम कुश है। अतः घोड़ा दोनों भाईयों ने बाँधा है। तब तो सब परिवार को आश्चर्य हो गया कि लव तो राम का बेटा है। कुश कहाँ से आ गया ? तो मालूम हुआ कि, श्रीगुरुदेव वाल्मीकि के द्वारा प्रदत्त पुत्र कुश राम का ही बेटा है।

अपने भजन करने का जो आसन था कुशासन, उसमें से तिनका निकालकर वाल्मीकि ने कुश शिशु प्रकट कर दिया। इसका एक रहस्यमय कारण है जो हमें बाद में मालूम हो जायेगा। ऐसा सोचकर गुप्तचरों से यह वार्ता सुनने के बाद राम अपने गुरुदेव वशिष्ठ जी से बोले, 'श्रीगुरुदेव! अब क्या करना चाहिए ?' तब गुरुदेव बोले कि, 'अब तो हनुमान को भेजो, वह घोड़ा छुड़ाकर ला सकता है, क्योंकि हनुमान के बराबर कोई बलशाली नहीं है।'

तब हनुमानजी को राम ने आदेश दिया कि, हनुमान तुम दोनों बालकों को समझा बुझाकर घोड़ा छुड़ाकर ले आओ। हनुमान बोले, 'बहुत अच्छा। कल ही घोड़ा अयोध्या में आ जायेगा। कोई मुश्किल नहीं है।'

हनुमान जी वाल्मीकि आश्रम में गए और वाल्मीकि को बोले, 'ऋषिवर! घोड़ा राम का है, यज्ञ करने का मुहूर्त जा रहा है। आप शीघ्र घोड़ा छुड़वा दें।'

वाल्मीकि बोले, 'हनुमान! तुम घोड़ा ले जा सकते हो, वे तो बेचारे छोटे-छोटे बालक हैं। उनके पास जाकर बोलो, वे छोड़ देंगे।'

तब हनुमान लव कुश को बोले, 'बच्चो घोड़ा तुम्हारे पिता राम का है, आप इसे छोड़ दो।' तो लव कुश बोले, 'हम राजपूत हैं। बिना युद्ध किये हम घोड़ा कैसे छोड़ दें ? क्या राम हमारे पिता हैं ? हमको अब तक मालूम ही नहीं था, क्योंकि माँ सीता ने हमको बताया ही नहीं था कि तुम राम के पुत्र हो। अब मालूम पड़ा कि हम राम के पुत्र हैं। लेकिन धर्म यह कहता है कि जब युद्ध का अवसर प्राप्त हो तो किसी का नाता नहीं देखा जाता। राजपूत होने के नाते आपसे भी लड़ना पड़ेगा, आप युद्ध करके घोड़ा ले जा सकते हो।'

हनुमान जी असमंजस में पड़ गये कि, राम के पुत्रों से मैं कैसे युद्ध करूँ ? राम तो मेरे आराध्य देव हैं, तो पुत्र भी मेरे आराध्यदेव ही हैं, इसलिए मेरा युद्ध करना उचित नहीं है, लेकिन घोड़ा छुड़ाना भी परमावश्यक है। तब हनुमानजी घोड़े के पास जाकर घोड़े की लगाम पकड़ने लगे तो लव-कुश बोले, 'सावधान! युद्ध करो, तब घोड़ा ले जाओ।'

अब तो हनुमान जी पर बड़ा संकट आ गया तो जब वह जबरदस्ती करने लगे तो लव-कुश ने उनकी पूँछ से ही उनको पेड़ से बाँध दिया, तो हनुमान जी यह बंधन तोड़ न सके। जब बहुत दिन हो गये, हनुमान जी अयोध्या में घोड़ा लेकर नहीं पहुँचे तो गुरु वशिष्ठ जी को चिन्ता हो गयी कि, क्या कारण है, जो हनुमान अब तक घोड़ा छुड़ाकर आये नहीं! अतः उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि, 'लक्ष्मण! तुम जाओ और देखो कि क्या बात है ?

लक्ष्मण भी बड़े असमंजस में पड़ गये कि, 'इन बालकों का हठ भी कैसा है! अब तो इनके गुरु वाल्मीकि से मिलना चाहिए।' लक्ष्मण वाल्मीकि ऋषि से मिले और घोड़ा छोड़ने के लिए प्रार्थना करने लगे, तो वाल्मीकि बोले कि 'लक्ष्मण! बालक हठ तथा स्त्री हठ ऐसा होता है कि वह किसी प्रार्थना से नहीं मानता, अतः युद्ध करके ही तुम्हें घोड़ा छुड़ाना पड़ेगा।'

अब तो लक्ष्मण ने भी अपना धनुषबाण उठा लिया और लव–कुश ने भी अपना धनुषबाण उठा लिया। दोनों ओर से तीर चलने लगे तो लक्ष्मण के तीर वापस आकर लक्ष्मण को ही बाँधने लगे। लव–कुश खड़े–खड़े देखने लगे कि चाचा जी बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर गये। लव–कुश ने श्रीगुरुदेव का अचूक अभेद कवच पहन रखा था अतः कवच से बाण टकराकर वापस उसी चलाने वाले को घायल करते जा रहे थे।

अब तो वशिष्ठ जी व राम दोनों को चिंता हो गयी कि लक्ष्मण भी वापस नहीं लौटा तो कोई न कोई बहुत बड़ी समस्या सामने है।

वशिष्ठ गुरु ने सबको भेजा लेकिन कोई भी वापस नहीं आया तो अन्त में राम को आदेश दिया कि, 'राम अब तुम ही जाओ, कोई न कोई बड़ी समस्या आ गयी है।'

तब तो राम गए और देखा तो, कैसे सुन्दर कोमल आकर्षक बच्चे धनुषबाण साधे खड़े हुए हैं, तब राम बोले, 'बच्चो घोड़ा छोड़ दो!' लव–कुश बोले, 'ले जाओ, हमने कब मना किया है?' राम जब घोड़े की लगाम पकड़ने लगे तो लव–कुश बोले, 'पिताजी, राजपूत का क्या धर्म है? धर्म विरुद्ध कर्म करना शास्त्र व भगवान् के विरुद्ध है। आपको हमसे युद्ध करना ही पड़ेगा।'

तब तो राम सीता के पास जाकर बोले कि, 'सीते! तुम ही बच्चों को समझाकर घोड़ा छुड़ा दो।' तब सीता बोली, 'धर्म विरुद्ध कार्य मैं कैसे कर सकती हूँ? बच्चे मेरी भी नहीं मानेंगे क्योंकि वह कहते हैं कि, हमने तो सीता माँ का दूध पिया है, तो क्या माँ का दूध पीकर लज्जित होंगे?' अतः सीता बोली, 'मैं भी घोड़ा छुड़ाने में असमर्थ हूँ।'

राम ने सोचा, क्या करना चाहिए? मैं इन कोमल बच्चों पर बाण कैसे चलाऊँ? धर्म की आड़ में मुझे लड़ना ही पड़ेगा। अब तो राम ने धनुषबाण उठाया और बच्चों पर चला दिया। वह बाण बच्चों से वापस आकर राम को पीड़ा देने लगे, तब राम समझ गये कि

यह करामात तो इनके गुरु वाल्मीकि ऋषि की है। तब राम ऋषि के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगे कि, 'ऋषिवर! इन बालकों पर आपकी कृपा होने के कारण, मैं तो इन बालकों से हार गया। मुझे यज्ञ करना बहुत जरूरी है। आप ही यज्ञ सम्पूर्ण करा सकते हैं। मुझपर कृपा करो।' तब वाल्मीकि जी बच्चों के पास जाकर बोले कि, 'लव–कुश तुम परीक्षा में पास हो गए हो, अब इनको घोड़ा दे दो। तब बच्चे बोले कि, 'पिताजी! अब आप घोड़ा ले जा सकते हैं।'

लव–कुश ने रामजी को उनके पैर छूकर प्रणाम किया और गुरु के आदेश का पालन किया। तब राम सीता से बोले कि, 'तुम्हारे बिना यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। अतः अब तुम मेरे साथ चलो।' तब पृथ्वी माता से आज्ञा लेते ही पृथ्वी फटी और सीताजी जैसे पृथ्वी से प्रकट हुई थीं वैसे ही पृथ्वी में ही समा गईं।

राम ने सोने की सीता बनवाकर यज्ञ पूरा किया। इसके बाद राम ने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन कर ग्यारह हजार वर्ष पृथ्वी पर राज्य किया। इसके बाद अपने धाम **साकेत लोक** में चले गए। ग्यारह हजार वर्ष पृथ्वी पर राज्य करने के लिए सीता की कोई आवश्यकता नहीं थी अतः जैसे पृथ्वी की गोद से लीला करने हेतु प्रकट हुई थीं वैसे ही अपने पिता जनक जी से आदेश लेकर पृथ्वी में ही समा गईं।

ध्यान देकर सभी भक्तप्रवर गुरु की महिमा सुनें जो शिवजी ने पार्वती को बताई है। रामायण न तो तुलसीदास जी ने रची है और न वाल्मीकि जी ने रची है। इसको रचने वाले शिव शंकर जी हैं, इसलिए इसका मूल नाम है **रामचरितमानस**। क्योंकि यह शिवजी के मन से प्रकट हुई है। बाद में तुलसीदास जी ने सरल भाषा में इसका अनुवाद कर दिया तथा वाल्मीकि जी ने भी इसी का अनुवाद किया है। शिवजी गुरुदेव की महिमा बोल रहे हैं कि, जो भी इसके अनुसार जीवनयापन करेगा वह भगवद्दर्शन पायेगा।

श्रीगुरु पदनख मनि गन ज्योती। सुमिरत दिव्य-दृष्टि हियँ होती।।
उघरहि विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुःख भव-रजनी के।।
सूझहिं राम-चरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

हरिनाम को गुरुचरणों में (मानसिक रूप से) बैठकर जपते हुए ऐसा ध्यान करे कि श्रीगुरुदेव जी के चरणों के नखों से बड़ी आभायुक्त ज्योति निकल रही है, तो उक्त लिखा लाभ प्राप्त हो जायेगा। इसमें रत्तीभर भी संशय नहीं करना है।

मुझे तो जो भी प्राप्त हुआ है, वह उक्त लिखे श्लोक से ही मिला है।

भक्तप्रवर आप श्रीगुरुदेव की प्रेरणात्मक आकाशवाणी को ध्यान देकर सुनें तो मैं आपकी बड़ी कृपा का भाजन बनूँगा।

इस वाणी को मैं कई बार कह भी चुका हूँ। रात में जब नींद में आँख भरने लगें तो यह बात नहीं भूलना तथा बोलना कि, 'हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आये और मेरी अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।'

इससे भगवान् को हरिनाम में रुचि देनी पड़ेगी। लेकिन यह याद रखें, भक्त अपराध न हो। नींद भी मृत्यु की बहन है, ठीक नींद जब आने लगे तो ऊपर लिखा श्लोक बोलें तथा प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में आँख खुलेगी तो यह प्रार्थना ठाकुरजी से करें।

हे मेरे प्राणनाथ! इस समय से लेकर रात को सोने तक मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझकर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।'

इन प्रार्थनाओं को नित्य करने से बीच का समय भी भजन में ही व्यतीत होता है। *हर मनुष्य की 21,600 साँसे रात-दिन

---

*'हरे कृष्ण महामन्त्र' की 200 माला नित्य जप करने से (200X108) = 21,600 महामन्त्र का उच्चारण हो जाता है।

में (24 घंटे में) निकलती हैं। ऊपर की प्रार्थना उन साँसों के साथ भगवान् के साथ जायेगी, अतः यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त प्रार्थना से तो रात दिन का भजन हो गया। भगवान् को बाँधने को कैसी मनरचित सुन्दर, आकर्षक युक्ति श्रीगुरुदेव ने सभी साधक भक्तों को बता दी है। इसे कभी भूले नहीं। इस युक्ति से बिना भजन किये ही भजन बन गया। जय गुरुदेव। हरिबोल-निताई गौर हरि बोल हरिबोल हरिबोल...

सृष्टि रचयिता श्रीब्रह्मा जी द्वारा रचित

श्रीब्रह्म-संहिता

(अध्याय-5)

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।1।।

गोविन्द के नाम से विख्यात कृष्ण ही परमेश्वर हैं। उनका सच्चिदानन्द शरीर है। वह सब के आदि हैं। उनका कोई आदि नहीं एवं वह समस्त कारणों के मूल कारण हैं।

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।29।।

मैं उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का भजन करता हूँ, जो लाखों कल्पवृक्षों से घिरे हुए चिन्तामणि समूह से निर्मित भवनों में कामधेनु गायों का पालन-पोषण करते हैं एवं जो असंख्य लक्ष्मियों द्वारा सदैव प्रगाढ़ आदर और प्रेम सहित सेवित होते रहते हैं।

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दरांगम्।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।30।।

जो वेणु बजाने में दक्ष हैं, कमल की पंखुडियों जैसे जिनके प्रफुल्ल नेत्र हैं, जिनका मस्तक मोरपंख से आभूषित है, जिनके अंग नीले बादलों जैसे सुन्दर हैं और जिनकी विशेष शोभा करोड़ों कामदेवों को भी लुभाती है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी रत्नां गदं प्रणयकेलिकलाविलासम्।
श्यामं त्रिभंगललितं नियतप्रकाशं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।31।।

जिनके गले में चन्द्रक से शोभित वनमाला झूम रही है, जिनके दोनों हाथ वंशी तथा रत्नजड़ित बाजूबन्दों से सुशोभित हैं, जो सदैव प्रेम-लीलाओं में मग्न रहते हैं, जिनका ललित त्रिभंग श्यामसुन्दर रूप नित्य प्रकाशमान है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

अंगानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।32।।

जिनका अप्राकृत श्रीविग्रह आनन्द, चिन्मयता तथा सत् से पूरित होने के कारण परमोज्ज्वल है, जिनके चिन्मय शरीर का प्रत्येक अंग अन्यान्य सभी इन्द्रियों की पूर्ण–विकसित वृत्तियों से युक्त है, चिरकाल से जो आध्यात्मिक एवं भौतिक–दोनों जगतों को देखते, पालन करते तथा प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम् आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।33।।

जो वेदों के लिए दुर्लभ हैं, किन्तु आत्मा को विशुद्ध भक्ति द्वारा सुलभ हैं, जो अद्वैत हैं, अच्युत हैं, अनादि हैं, जिनका रूप अनन्त है, जो सबके आदि हैं तथा प्राचीनतम पुरुष होते हुए भी नित्यनवयुवक हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्प्रगम्यो वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानाम्
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।34।।

चिन्मयता को प्राप्त करने के इच्छुक योगियों के प्राणायामादि वायु निरोधात्मक योग–पथ से अथवा निर्भेद ब्रह्मानुसंधान करने वाले श्रेष्ठ ज्ञानियों के भौतिक त्याग द्वारा ज्ञान–पथ से, शतकोटि वर्षों तक साधन करने पर भी जिनके चरणारविन्द के अग्रभाग की ही प्राप्ति होती है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।35।।

जो शक्ति एवं शक्तिमान में अभिन्नता होने के कारण निर्भेद एक तत्त्व हैं, जिनके द्वारा करोड़ों ब्रह्माण्डों की सृष्टि होने पर भी जिनकी शक्ति उनसे पृथक् नहीं है, जिनमें सारे ब्रह्माण्ड स्थित हैं एवं जो साथ ही साथ ब्रह्माण्डों के भीतर रहने वाले परमाणु–समूह

के भी भीतर पूर्ण रूप से अवस्थान करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव सम्प्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाः।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।36।।

भाव-भक्ति से भावित हृदय वाले मनुष्य अपने उपयुक्त रूप, महिमा, आसन, वाहन तथा आभूषणों को प्राप्त करके वेद कथित मंत्र-सूक्तों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिस् ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।37।।

जो अपने धाम गोलोक में अपनी स्वरूप शक्ति, चौंसठ कला-युक्त ह्लादिनीरूपा श्रीराधा तथा उनकी सखियों के साथ, जो कि उनके नित्य आनन्दमय चिन्मय रस से स्फूर्त एवं पूरित रहती हैं, निवास करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।38।।

जो स्वयं श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हैं, जिनके अनेकानेक अचिन्त्य गुण हैं, तथा जिनका शुद्ध भक्त प्रेम के अञ्जन से रंजित भक्ति के नेत्रों द्वारा अपने अन्तर्हृदय में दर्शन करते रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।39।।

जिन्होंने श्रीराम, नृसिंह, वामन इत्यादि विग्रहों में नियत संख्या की कला रूप से स्थित रहकर जगत् में अवतार लिए, परन्तु जो भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में स्वयं प्रकट हुए, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।40।।

जिनकी प्रभा उपनिषदों में वर्णित निर्विशेष ब्रह्म का स्रोत है, तथा करोड़ों ब्रह्माण्डों में अनन्त विभूतियों के रूप में भेद को प्राप्त होने के नाते निरवच्छिन्न, पूर्ण, अनन्त सत्य के रूप में प्रकट है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना।
सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वं विशुद्धसत्त्वं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।41।।

सत्व, रज तथा तमोरूप–त्रिगुणमयी एवं जड़–ब्रह्माण्डसम्बन्धि वेदज्ञानविस्तारिणी माया जिनकी अपरा शक्ति है, उन्हीं सत्वाश्रय रूप परत्वनिबन्ध विशुद्धसत्वरूप आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।43।।

जिन्होंने गोलोक नामक अपने सर्वोपरि धाम में रहते हुए उसके नीचे स्थित क्रमशः वैकुण्ठलोक, महेशलोक तथा देवीलोक नामक विभिन्न धामों के विभिन्न स्वामियों को यथायोग्य अधिकार प्रदान किया है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।44।।

भौतिक जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय की साधनकारिणी, चित्शक्ति की छाया–स्वरूपा माया शक्ति, जो कि सभी के द्वारा दुर्गा नाम से पूजित होती हैं, जिनकी इच्छा के अनुसार चेष्टाएँ करती हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात् सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद् गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।45।।

दूध जिस प्रकार खटाई या जामनादि के संयोग से दही में बदल जाता है, किन्तु फिर भी अपने उपादान–कारण दूध से वह न तो समान होता है और न पृथक् होता है; उसी प्रकार संहार कार्य के निमित्त जो शम्भु रूप में परिणत हो गए हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।46।।

जैसे मूल दीपक की लौ दूसरे दीपक में पहुँच कर यद्यपि दीपकों में पृथक् रूप से जलती है परन्तु गुण में एक समान होती है, उसी प्रकार जो स्वयं को विभिन्न प्रकाशों में समान रूप से प्रदर्शित करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यः कारणार्णजले भजति स्म योग-निद्रामनन्तजगदण्ड सरोमकूपः।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।47।।

जो अपनी आधारशक्ति-स्वरूप अनन्तशेष नामक श्रेष्ठमूर्ति का अवलम्बन कर अपने रोमकूपों में अनन्त ब्रह्माण्डों को समाये हुए, योगनिद्रा का आनन्द लेते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यस्यैक निश्चसितकालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।48।।

महाविष्णु के रोम छिद्रों से प्रकट ब्रह्मा एवं भौतिक ब्रह्माण्डों के अन्य स्वामीगण उनके (महाविष्णु के) एक श्वास-जितने काल तक ही जीवित रहते हैं; परन्तु वे महाविष्णु भी जिनकी एक विशिष्ट कला मात्र हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः स्वीयं कियत्प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।49।।

सूर्य जिस प्रकार सूर्यकान्तादि मणियों में अपने कुछ तेज का संचार करता है, उसी प्रकार विभिन्नांश-स्वरूप ब्रह्मा जिनसे प्राप्त शक्ति द्वारा ब्रह्माण्ड का विधान करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः।
विघ्नान विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।50।।

तीनों लोकों के समस्त विघ्नों का विनाश करने हेतु शक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से श्रीगणेश जिनके चरणकमलों को अपने

मस्तक के दोनों कुम्भों पर धारण करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

अग्निर्मही गगनमम्बु मरुद्दिशश्च कालस्तथात्ममनसीति जगत्त्रयाणि।
यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशान्ति यं च गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।51।।

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, दिशाएँ, काल, आत्मा एवं मन से युक्त तीनों लोक जिनसे उत्पन्न होते हैं, जिनमें स्थित रहते हैं और जिनमें प्रलय के समय प्रवेश कर जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।52।।

इस जगत् के नेत्ररूप सूर्य, समस्त ग्रहों के अधिपति, सारे देवताओं के प्रतीक एवं अतिशय तेजस्वी होते हुए भी जिनकी आज्ञा से कालचक्र पर चढ़कर भ्रमण करते रहते हैं उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि ब्रह्मादिकीटपतंगावधयश्च जीवाः।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।53।।

धर्म, पापसमूह, वेद, तपस्याएँ और ब्रह्मा से लेकर कीटपतंग तक समस्त जीव जिनके द्वारा प्रदत्त शक्तियों से पालित होते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति।
कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।54।।

जो एक इन्द्रगोप जैसे क्षुद्र कीड़े से लेकर देवराज इन्द्र पर्यन्त समस्त जीवों को उनके कर्मफलों के अनुरूप फलभोग कराते हैं, किन्तु जो अपने भक्तों के समस्त कर्मों को समूल नष्ट कर देते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः।
संचिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।55।।

क्रोध, काम, सहज स्नेह, भय, वात्सल्य, मोह, श्रद्धा तथा सेवा भाव से जिनका चिन्तन करके साधक उन्हीं भावों के यथायोग्य

रूपों को प्राप्त हो गए, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च।।
स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान् निमेषार्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये।।56।।

मैं उस श्वेतद्वीप नामक अप्राकृत धाम को भजता हूँ जहाँ प्रेमिका लक्ष्मियाँ अपने शुद्ध भाव से परमपुरुष कृष्ण की अपने एकमात्र प्रेमी के रूप में सेवा करती हैं, जहाँ प्रत्येक वृक्ष कल्पतरु है, जहाँ की भूमि चिन्तामणिमय है, सारा जल अमृत है, सारे शब्द गीत हैं, सारा गमन नृत्य है, वंशी ही जहाँ प्रियसखी है, जहाँ की ज्योति चिदानन्दमय एवं परम आस्वाद्य है; जहाँ अनगिनत सुरभि गौऐं चिन्मय महाक्षीरसागरों को प्रवाहित करती हैं; जहाँ चिन्मय काल का नित्य अस्तित्व है, जिसमें भूत-भविष्य नहीं होने के कारण अर्धक्षण भी नहीं बीतता, और जो इस जगत् में विरले भगवन्निष्ठ सन्तों द्वारा ही गोलोक के रूप में जाना जाता है।

अथोवाच महाविष्णुर्भगवन्तं प्रजापतिम्।
ब्रह्मन् महत्त्वविज्ञाने प्रजासर्गे च चेन्मतिः।
पञ्चश्लोकीमिमां विद्यां वत्स! दत्तां निबोध मे।।57।।

श्रीब्रह्माजी की स्तुति सुनने के बाद सर्वेश्वरेश्वर श्रीगोविन्द भगवान् ब्रह्मा के प्रति बोले-हे प्रजापते ब्रह्मा! मेरे महत्त्व-विज्ञान को विशेष भाव से जानने की तथा प्रजा सृष्टि करने की यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो हे वत्स! मेरे द्वारा उपदिष्ट इस पञ्चश्लोकी विद्या को सावधान होकर सुनो।

प्रबुद्धे ज्ञानभक्तिभ्यामात्मन्यानन्दचिन्मयी।
उदेत्यनुत्तमा भक्तिर्भगवत्प्रेमलक्षणा।।58।।

श्रीभगवान् ने कहा-मेरे तत्त्वज्ञान या विज्ञान एवं भक्ति द्वारा अन्तःकरण के जागरित होने पर-अन्तःकरण के शुद्ध होने पर मेरी प्रेमलक्षणा चिन्मयरसरूपा सर्वोत्तमा भक्ति उदित होती है।

प्रमाणैस्तत् सदाचारैस्तदभ्यासैर्निरन्तरम्।
बोधयत्यात्मनात्मानं भक्तिमप्युत्तमां लभेत्।।59।।

प्रमाण, सदाचार तथा सदाचार के अभ्यास द्वारा निरन्तर अपने को भगवदाश्रित शुद्ध-जीवरूप में अनुभव करने से ही उत्तमा-भक्ति की प्राप्ति होती है।

यस्याः श्रेयस्करं नास्ति यया निर्वृत्तिमाप्नुयात्।
या साधयति मामेव भक्तिं तामेव साधयेत्।।60।।

श्रीभगवान् ने आगे कहा-'जिससे बढ़कर और कुछ भी कल्याणकारी नहीं है, जिसके द्वारा परमानन्द सुख की प्राप्ति होती है, जो मुझे प्राप्त कराने में समर्थ है, उस मेरी भक्ति का ही साधन करना चाहिये।

धर्मानन्यान् परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन्।
यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी।।
कुर्वन्निरन्तरं कर्म लोकोऽयमनुवर्त्तते।
तेनैव कर्मणा ध्यायन् मां परां भक्तिमिच्छति।।61।।

श्रीगोविन्द ने कहा- हे ब्रह्मा! अन्यान्य जितने धर्म हैं, उनका परित्याग करके एकमात्र विश्वासपूर्वक मेरा भजन करो। जैसी-जैसी श्रद्धा उदित होती है, वैसी-वैसी सिद्धि लाभ होती है। इस जगत् के लोग निरन्तर अनेक प्रकार के कर्म करते रहते हैं। उन सब कर्मों द्वारा ही मेरा चिन्तन करते हुए वे परा-भक्ति को प्राप्त करेंगे।

अहं हि विश्वस्य चराचरस्य बीजं प्रधान प्रकृतिः पुमांश्च।
मयाहितं तेज इदं विभर्षि विधे विधेहि त्वमथो जगन्ति।।62।।

हे ब्रह्मा! मैं इस स्थावर-जंगम ब्रह्माण्ड का प्रधान बीज या मूल-तत्त्व हूँ, प्रकृति (त्रिगुणात्मिका बहिरंगा शक्ति माया) तथा उसका द्रष्टा पुरुष (कारणसागरशायी महाविष्णु) भी मैं ही हूं। तुम भी मेरे द्वारा सृजन किये गये इस तेज-शक्ति को धारण कर रहे हो। इस तेज द्वारा स्थावर-जंगमात्मक समस्त सृष्टि-वस्तुओं का सृजन करो।

गोलोक एवं श्वेतद्वीप एक ही हैं

श्रीब्रह्माजी ने ब्रह्मसंहिता के श्लोक 56 से पूर्व के 27 श्लोकों में आदिपुरुष स्वयं-भगवान् श्रीगोविन्द की अनेकविध स्वरूप-वैचित्री के साथ-साथ उनके चरणों में भजन की प्रार्थना की है। श्लोक 56 में श्रीगोविन्द के चिन्मय गोलोक-धाम के स्वरूप का उन्होंने चित्रण किया है।

श्रीगोलोक को ही 'वृन्दावन' एवं 'श्वेतद्वीप' नाम से शास्त्रों में वर्णन किया गया है। इस श्लोक में श्वेतद्वीप आख्या से श्रीवृन्दावन धाम का वर्णन किया है। श्रीवृन्दावन धाम में अशेष-विशेष चिन्मय सम्पत्ति का एक अथाह सिन्धु प्रवाहित हो रहा है।

स्वरूप-शक्ति या सन्धिनी-शक्ति अंश-प्रधान शुद्ध सत्त्वरूपा आधार शक्ति ही धामरूप में अपने पूर्णतम विलास एवं उपकरणों के साथ प्रकटित है। वैसे तो द्वारका, अयोध्या, वैकुण्ठ-परव्योमादि समस्त भगवद्धाम ही स्वरूप-शक्ति अंश प्रधान हैं, किन्तु श्रीवृन्दावन धाम में उसका जितना साहजिक सर्वोत्कृष्ट विलास एवं वैभव-सिन्धु उच्छलित हो रहा है, उतना और किसी भी भगवद्धाम में नहीं है।

श्रीगोलोक-वृन्दावन की भूमि चिन्तामणिमय है और वहाँ के समस्त वृक्ष ही कल्पवृक्ष हैं तथा वहाँ की समस्त गौएँ कामधेनु हैं- ये तीनों मनचाही वस्तु देने वाली हैं, किन्तु ब्रज-परिकरगण इतने पूर्णकाम हैं, श्रीकृष्ण-सेवा कामना से पूर्ण-हृदय हैं कि उनके मन में उसके अतिरिक्त कुछ माँगने की अपेक्षा ही नहीं है।

चिन्तामणियों को वहाँ की ब्रजरमणीगण केवल अपने चरणनूपुरों में जड़कर सजाये रहती हैं, जिससे नृत्य-गान में उनकी उस शोभा को देखकर श्रीगोविन्द आनन्द लाभ करें।

कल्पतरुओं से वे केवल श्रीगोविन्द के शृंगार के लिये पुष्पों की याचना करते हैं अथवा प्रियतम के सुख विधान करने के लिए

ब्रजसुन्दरीगण अपने श्रृंगार के लिये उनसे पत्र–पुष्प ही स्वीकार करती हैं।

इसी प्रकार कामधेनुओं से केवल वे दूध ही दूध अंगीकार करते हैं। ब्रजपरिकरों का सहज बोल–चाल ही दिव्य संगीत के समान है और सहज–गमन ही अद्‌भुत नृत्यतुल्य है। चिदानन्द ज्योति ही मूर्तिमान होकर चन्द्र–सूर्य रूप में सबका आनन्द विधान करती है। श्रीगोविन्द की कान्तागण–ब्रजगोपियाँ महा लक्ष्मी–स्वरूपा हैं, सर्व कान्तिमयी एवं सर्व सम्मोहिनी हैं। उनके गुण–रूप–पराभूत सौन्दर्य–लावण्य लक्ष्मी जी के रूप–गुण सौन्दर्यादि को हरने वाले हैं।

वहाँ प्राकृत काल की गति नहीं है। निमेष–पलक, पल–घड़ी, दिन–रात, पक्ष–मास–वर्ष–यह काल–विभाग वहाँ नहीं हैं, न वहाँ भूतकाल है न भविष्यकाल। नित्य एक चिन्मय विकार रहित काल वर्तमान है।

जब परमपुरुषकान्त जागते हैं, तब प्रभात उपस्थित होता है, जब शयन करते हैं तब रात्रि प्रकटित होती है।

जब होरी लीला की इच्छा करते हैं, तब फाल्गुन–मास और जब झूला झूलना चाहते हैं तब सावन–मास सेवा सौभाग्य लाभ करता है। प्रिया–प्रीतम की लीलाओं के अनुरूप काल अनुगमन करता है, न कि काल के अनुरूप लीलाएँ होती हैं। प्राकृतबुद्धि के अतीत परम अचिन्त्य है वहाँ का सर्वस्व।

कामधेनुओं के स्तनों से वंशी–ध्वनि के श्रवणावेश में इतना दुग्ध क्षरित होता रहता है कि चारों ओर एक समुज्ज्वल कान्तिमय क्षीरसमुद्र ही उस श्रीवृन्दावन में तरंगायित होता रहता है, जिससे श्रीगोविन्द के गोलोकधाम–या वृन्दावन–धाम का एक नाम 'श्वेतद्वीप' है। अर्थात् ऐसा द्वीप जहाँ जल के स्थान पर श्वेत या सफेद दुग्ध भरा है।

परन्तु इस नाम को अथवा इस धाम की साहजिका सम्पदा को, केवल कोई विरले महापुरुष ही अनुभव करते हैं। जो ब्रज की विशुद्ध रागात्मिका–भक्ति का अनुगमन कर उनकी सेवा–चिन्तन

परिपाटी का अनुसरण करते हैं या सर्वोत्कृष्ट रागानुगा भजन मार्ग में जिनका श्रीहरिगुरु कृपा से प्रवेश हुआ है। जिनके एकमात्र उपास्य हैं श्रीवृन्दावनाधिपति स्वयं-भगवान् श्रीगोविन्द। वही महाभाग जीव ही इस श्वेतद्वीप-धाम को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार श्रीब्रह्माजी ने "ईश्वरः परमः कृष्ण" (प्रथम श्लोक)- इत्यादि से लेकर श्रीगोविन्द की परम ईश्वरता का या स्वयं-भगवत्ता का निरूपण करते हुए जब उनकी भजन-प्रार्थना के साथ-साथ उनके सपरिकर, सोपकरणादि श्रीगोलाकधाम-श्वेतद्वीप धाम की स्तुति-महिमा का गान किया तो श्रीगोविन्द उन पर अति प्रसन्न हो उठे और उन्हें अन्त के पाँच श्लोकों में विद्या-पराभक्ति विद्या का उपदेश दिया।

(उपर्युक्त लेख 'गोलोक एवं श्वेतद्वीप एक ही हैं'-
व्रजविभूति श्रीश्यामदास जी द्वारा रचित ब्रह्मसंहिता
की श्रीजीवकृपानुगा टीका से लिया गया है।
सटीक ब्रह्मसंहिता श्रीहरिनाम प्रेस में उपलब्ध है।)

प्रकाशन-अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन-केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर-घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ-सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

(अभी कुछ समय से ये ग्रन्थ अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा था।) अतः ग्रन्थों के पूरी तरह निःशुल्क वितरण के साथ-साथ स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 9068231415

email-harinampress@gmail.com